सांस्कृतिक विरासत क्या है और समाज के विकास में यह क्या भूमिका अदा करती है? 'कम्युनिज्म और सांस्कृतिक विरासत' शीर्षक इस पुस्तक के लेखक प्रो० एलेक्ज़ार बालेर ने अन्तर्विरोधी सामाजिक संरचनाओं में सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया की अन्तर्विरोधी प्रवृति को उद्घाटित करते हुए यह दर्शाया है कि इस अन्तर्विरोध का एक नतीजा सांस्कृतिक विरासत के उपयोग की दोहरी प्रकृति है—प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी।

उनकी खोजबीन का केंद्रीय प्रश्न उस समाज के अंदर सांस्कृतिक विरासत की भूमिका से संबंधित है, जिसमें वर्गीय तथा जातीय विरोधों को मिटा दिया गया है। कम्युनिस्ट-विरोधियों की लांछनापूर्ण कपोलकथाओं का खंडन करते हुए लेखक ने ढेर सारी ठोस, तथ्यात्मक सामग्री के आधार पर यह दर्शाया है कि समाजवादी तथा कम्युनिज्म निर्माण

ए० बालेर

कम्युनिज़्म और सांस्कृतिक विरासत

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

ए० बालेर

कम्युनिज़्म और सांस्कृतिक विरासत

प्रगति प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

... हुए पूर्ण संस्कृति का निश्चय ही ग्रहण करना चाहिए और उसके आधार पर समाजवाद का निर्माण करना चाहिए। हमें उसके संपूर्ण-विज्ञान, टेक्नोलाजी, जानकारी और कला को ग्रहण करना चाहिए। इनके बगैर हम कम्युनिस्ट समाज का निर्माण नहीं कर सकेंगे।

व्ला० इ० लेनिन

भारतीय संस्करण की प्रस्तावना

अस्सीोत्तरी दशक के प्रारंभ में सोवियत संघ ने गंभीर निष्ठा के साथ अपनी स्थापना की साठवीं जयंती मनायी।

जैसा कि सभी जानते हैं, जब कोई व्यक्ति अपनी जयंती मनाता है, तो सबसे पहले वह अपनी उपलब्धियों का समाहार करता है। गुजरे हुए वर्षों पर नजर डालना एक स्वाभाविक रस्म है। जो कुछ कर लिया गया है उसकी याद करना उपयोगी होता है, इस बात की पुष्टि सुखदायी होती है कि वे वर्ष व्यर्थ नहीं गये, कि वे वर्ष उस व्यक्ति के लिए, जिसकी जयंती मनायी जा रही है, तथा उसके दोस्तों और साथियों के लिए फलदायी वर्ष थे।

जयंती की यह रस्म लोग ही नहीं, बल्कि पूरी समष्टियां तथा राष्ट्र भी अदा करते हैं।

उन वर्षों में सोवियत संघ के श्रमजीवियों ने जो महान रचनात्मक रास्ता तय किया उसका मुख्य परिणाम क्या है?

मुख्य परिणाम यह है कि उन वर्षों के दौरान सोवियत जनगण ने सर्वाधिक विकट लड़ाइयों में महान समाजवादी क्रांति की उपलब्धियों की रक्षा की, अपने वीरतापूर्ण प्रयासों से विकसित समाजवादी समाज की वास्तविक समाजवाद के समाज की रचना की, उस "अतत विजयी और सुस्थापित समाजवाद" का निर्माण किया जिसमें, लेनिन के शब्दों में, कम्युनिज्म की ओर संक्रमण होता है। दूसरे शब्दों में आज हमारा समाज विकास की उस आवश्यक व तर्कसम्मत अवस्था में प्रविष्ट हो गया है, जहां से समाजवाद शनैः शनैः कम्युनिज्म में विकसित हो जाता है। इस अवस्था में विकसित समाजवादी समाज

ो अधिकाधिक परिपूर्ण बनाने तथा कम्युनिस्ट निर्माण के कामो
ाभिन्न रूप से एक साथ पूरा किया जा रहा है।

इस पुस्तक का उद्देश्य उस मार्ग की केवल एक मंजिल के बा
सोवियत सत्ताकाल के दौरान संस्कृति के क्षेत्र में प्राप्त सफल
बारे में बतलाना है, यह स्पष्ट करना है कि समाजवाद ने श्रमजी
गो के लिए ज्ञान को, आत्मिक संस्कृति की संपदा को किस प्रका
अधिकतम संभव सीमा तक सुलभ बना दिया।

महान भारतीय लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने, जो तीसोत्तरी दश
प्रारंभ में सोवियत संघ गये थे, महान अक्तूबर समाजवादी क्रां
ारा सोवियत जनता के आत्मिक जीवन में लाये गये परिवर्तनों के
ारे में उसी समय सराहना करते हुए लिखा था कि उन्होंने जो कुछ
ा वह विस्मयजनक था। आठ वर्ष की शिक्षा ने सारी जनता के
आत्मिक जीवन को बदल दिया है। गूंगे लोग बोलने लगे हैं, आवरण
ा दिया गया है और जिन लोगों ने युगयुगों से प्रकाश के दर्शन नहीं
ये थे उनकी आत्माएं पुनः दृश्य हो गयी हैं, बलहीनों ने फिर से
त्मिक बल प्राप्त कर लिया है, जिनसे घृणा की जाती थी वे तल
ऊपर उठे और समान सामाजिक स्थिति का अधिकार पा गये।
कल्पना करना कठिन है कि इतने अधिक लोग और ऐसे द्रुत परिवर्तन!
देखकर आत्मा प्रफुल्लित हो जाती है कि वह सरिता जो सूखी
सूखती जा रही थी शिक्षा के प्रभाव से किस प्रकार फिर गहरी हो
ी है। हर जगह जीवन हिलोरें ले रहा है। नयी आशाओं का आलोक
े जीवनों को आलोकित कर रहा है।

तब से अब तक आधी सदी बीत चुकी है। आज हम देखते हैं
उस महान भारतीय विचारक ने जिन प्रक्रियाओं के बारे में लिखा
उनके अभूतपूर्व परिणाम हुए हैं। क्रांति द्वारा जोती हुई धरती पर
[illegible] बोये [illegible] उन्होंने अद्भुत फसल प्रदान की है। आज, जैसा
[illegible] में सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की ६०वीं जयंती
[illegible] के प्रस्ताव में [illegible] कहा है "बहुराष्ट्रीय [illegible]
[illegible] के बहुमुखी [illegible] के आधार पर समाजवादी
[illegible] बन चुकी है।"

[illegible] संघ के ६० वर्ष [illegible]

आइये, यूरी अद्रोपोव के इन शब्दो पर ध्यान दे. "प्रगतिशील परपराओ . के आधार पर"। सोवियत सघ मे सफलतापूर्वक विकासमान नये, समाजवादी समाज की सस्कृति मनुष्यजाति द्वारा युगो के दौरान सचित प्रगतिशील सास्कृतिक विरासत के बगैर असभव होती।

कम्युनिस्टो के विचार में भविष्य का मनुष्य उच्च बौद्धिक क्षमताओ वाला ऐसा पूर्ण विकसित व्यक्ति होगा जो शताब्दियो मे रचे गये सारे भौतिक और आत्मिक मूल्यो का स्वामी होगा तथा जिसने समस्त पूर्ववर्ती पीढ़ियो की आत्मिक सस्कृति मे घनीभूत रचनात्मकता को आत्मसात कर लिया हो।

मनुष्यो की अनेकानेक पीढ़ियो के सपूर्ण जीवनो के दौरान आत्मिक सस्कृति के मूल्यो मे घनीभूत और पुस्तको, कलाकृतियो, वैज्ञानिक खोजो तथा वस्तुओ के उत्पादन मे साकार रचनात्मक कार्य मनुष्यजाति की सबसे बडी निधि है, ऐसी निधि जो हजारो वर्षों की अवधि मे सचित हुई है। सास्कृतिक मूल्यो मे प्रत्यक्षीकृत गुजरे हुए युगो के रचनात्मक कार्य को आत्मसात करके, उसे सर्वाधिक कुशलता से इस्तेमाल करके तथा और अधिक विकसित करके मनुष्य चिरतनता के अनमोल खजाने मे अपना योगदान करता है।

इस प्रकार वद व्यक्तियो के बजाय प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अतीत के सास्कृतिक मूल्यो का स्वांगीकरण आत्मिक सस्कृति के अमूल्य उत्पाद प्रस्तुत करने, एक सामजस्यपूर्ण मनुष्य को ढालने तथा कम्युनिस्ट सस्कृति का निर्माण करने की एक आवश्यक और महत्वपूर्ण शर्त के रूप मे स्पष्ट सामने आ जाता है।

रचनात्मक कार्य को "अप्रत्यक्षीकृत" करके और गुजरे हुए युगो की आत्मिक सस्कृति से मानव चिंतन और श्रम की घनीभूत रचनात्मक शक्ति को प्राप्त करके मनुष्य उससे लाभ उठा सकता है और, जो और भी महत्वपूर्ण है, भविष्य मे नयी प्रगति करने के लिए उसका कारगर प्रयोग कर सकता है।

इस कारण से कम्युनिज्म का निर्माण करनेवाले समाज मे सास्कृतिक विरासत की समस्या अत्यत व्यावहारिक और सगत समस्या ही नही बल्कि यह नये मनुष्य का निर्माण करने में एक केंद्रीय समस्या भी

इसके साथ ही, आज सारी दुनिया के अनेक देशो द्वारा समाजवाद
अधिकाधिक दिलचस्पी लेने के कारण तथा विश्व समाजवादी समुदाय
बन जाने तथा साम्राज्यवादी उपनिवेशी प्रणाली के बर्बाद हो जाने
बाद की दशाओ मे कम्युनिस्ट समाज के अन्दर सास्कृतिक विरासत
प्रति रवैये की समस्या विशेष महत्व की समस्या बन गयी है।

समाजवादोन्मुख देशो की सख्या मे बढती के साथ ही सास्कृतिक
रासत के प्रति रवैये की समस्या का महत्व और भी बढ जाता है।
न सामने आता है कि विश्व सास्कृतिक निधि से कौन सी विरासत
जानी चाहिए और लोग दूर तथा निकटवर्ती ऐतिहासिक अतीत
निर्मित और आज के पूजीवादी समाज द्वारा उत्पन्न सास्कृतिक मूल्यो
किस तरह का उपयोग कर सकते है।

पहला अध्याय

सांस्कृतिक व ऐतिहासिक प्रक्रिया और सांस्कृतिक विरासत

(अध्ययन-पद्धति संबंधी पक्ष)

9316

१. सामाजिक प्रकृति और ऐतिहासिक सातत्य

यह दावा करना शायद ही अतिशयोक्ति होगा कि सामाजिक ाति की नियमों से सनियमित प्रकृति सामाजिक जीवन के उन रंभिक नियमों की कोटि है जिन्हें दार्शनिकों और समाज-वैज्ञानिकों ने तेहासिक भौतिकवाद के उद्भव से बहुत पहले खोज निकाला था। कृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया के वस्तुगत नियमों की एक संपूर्ण प्रणाली के स्तित्व से बेखबर और सामाजिक विकास की प्रेरक शक्तियों से जान मार्क्स-पूर्व दर्शन के सर्वाधिक असाधारण विद्वानों ने, समाज प्रगतिशील विचारों के वर्गों का प्रतीक बनकर सामाजिक जीवन वैज्ञानिक अध्ययन किया। उन्होंने अपनी सामाजिक हैसियत की ा के अंदर मानव इतिहास के उपलब्ध तथ्यों के अनुभवात्मक प्रेक्षण (सामान्यीकरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रगति ाजिक विकास की सामान्य प्रवृत्ति है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि ंनिकों और समाज-वैज्ञानिकों ने ऐतिहासिक सातत्य को सामाजिक ते का एक गुण मानते हुए इस निष्कर्ष को हमेशा सातत्य की प्राकृतिक ते की अपनी धारणा में जोड़ा।

उल्लेखनीय बात है कि प्राचीन रोम के दार्शनिक लुक्रेशियस कारस ापनी पुस्तक 'वस्तुओं की प्रकृति' में दुनिया के प्रगतिशील विकास वर्णन किया है और मानव-समाज के प्रगतिशील विकास के बारे ई अत्यंत दिलचस्प अटकलें लगायी हैं। उन्होंने लिखा

Thus navigation, agriculture arms,
Laws, buildings, high-ways, drapery, all esteemed,
Useful to life, or to the bosom dear,
Song painting, sculpture—their perpetual need,
And long existence fashioned and refined.

So growing time points ceaseless something new,
And human skill evolves it into day:
And art, harmonious, ever aiding art,
All reach, at length, perfection's topmost point.

स्पष्ट है कि लुक्रेशियस वास्तव सामाजिक जीवन की पूर्णता के विचार को ऐतिहासिक सातत्य का तद्रूप मानते हैं। उनकी अगली उक्ति इस निष्कर्ष की पूर्ण पुष्टि कर देता है।

...That which
is old driven out by that which is new, adways retires,
and it is indispensable to repair one thing out of another...
The matter, of which thou art made, is wanted by nature
that succeeding generations may grow up from it.

ऐतिहासिक सातत्य के साथ समाज के प्रगतिशील विकास की एकता के विचार को तुर्गो, हर्डर और कोंदोरसे जैसे तत्कालीन बुर्जुआ विचारको द्वारा प्रारंभिक बुर्जुआ क्रांतियो की अवधि मे सुव्यक्त रूप से पेश कर दिया गया था (बेशक उनके अपने गुण के ढांचे मे)। अपनी पुस्तक *A Sketch of Historical Picture of Human Spirit* मे कोंदोरसे ने लिखा कि ऐतिहासिक प्रगति "उस विकास का परिणाम है, जो समाज मे एकीकृत व्यक्तियो की एक विशाल संख्या द्वारा एक साथ किया जाता है। लेकिन एक विशेष क्षण मे प्रस्तुत होनेवाला परिणाम उन परिणामो पर निर्भर होता है जो पहले के क्षणो मे उपलब्ध हुए थे और वह खुद बाद के परिणामो को प्रभावित करता है।"

हमे ऐतिहासिक प्रगति और इस प्रगति मे ऐतिहासिक सातत्य की भूमिका की द्वन्द्वात्मकता पर दिलचस्प और गहन विचार हेगेल मे भी मिल सकते हैं। उन्होंने अपनी रचना 'तर्कशास्त्र' मे दावा किया है कि "विश्व इतिहास स्वतंत्रता की चेतना की प्रगति है, एक ऐसी प्रगति जिसे हमे उसकी आवश्यकता मे जानना ही पडता है।" निरपेक्ष प्रत्यय के घटक प्रवर्गों के सातत्य मे उसके ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया को वस्तुगत प्रत्ययवाद की स्थितियो से देखने पर ". [मार्क्स] अपने पूर्ववर्तियो की अन्तर्वस्तु के संपूर्ण द्रव्यमान को सकल्प की प्रत्येक अगली अवस्था को उठाता है और अपनी द्वंद्वात्मक प्रगति मे न तो कुछ

गवाता है न पीछे कुछ छोडता है, बल्कि अपने साथ उस सबको भी ले जाता है जिसका उसने अभिग्रहण किया है और जिससे वह अपने को समृद्ध बनाता है, अपने मे अपने को सकेद्रित करता है।"*

सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के नियमो पर और समाज के प्रगतिशील विकास मे सातत्य की भूमिका पर उन मौलिक सिद्धातो को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए जिन्हे क्लासिकी रूसी भौतिकवादी दर्शन ने पेश किया है।

विस्सारिओन बेलीस्की समाज के विकास को अग्रगति के रूप मे और, फलत, सुधार, सफलता और प्रगति के रूप मे देखते थे, और इससे भी अधिक, उन्होने वर्तुल विकास की द्वद्वात्मक सकल्पना को स्पष्टत परिभाषित किया था। उन्होने लिखा था कि मानवजाति न तो सीधी रेखा मे आगे बढती है, न टेढी-मेढी रेखा मे, बल्कि वह वर्तुल मे विकसित होती है। इस पूर्वाधार की बुनियाद पर इस महान रूसी आलोचक ने निष्कर्ष निकाला कि वर्तमान समाज मनुष्यजाति के विगत व भविष्य दोनो ही के साथ सातत्य से सबधित है। इससे वे एक अत्यत महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुचे कि महान ऐतिहासिक घटनाए सहसा या परिवर्तन द्वारा स्वय अपने आप विकसित नही होती, या (जो वही बात है) शून्य से प्रकट नही होती, तथापि वे हमेशा पूर्ववर्ती घटनाक्रम के फलस्वरूप प्रत्यक्ष होती है।

अलेक्सान्द्र हर्ज़ेन भी बेलीन्स्की के द्वद्वात्मक विचारो मे सहमत थे। उन्होने लिखा कि जिस विगत के बिना वर्तमान असभ्य होता उसकी ऐसी उपेक्षा करने से ज्यादा असगत और कोई चीज नही हो सकती कि मानो यह विरासत कोई बाहरी रुकावट हो। हर्ज़ेन की रचनाए पढके हम यह निष्कर्ष निकाले बिना नही रह सकते कि उन्होने समाज मे क्रातिकारी उथलपुथल के प्रति आशकित धीमे क्रमविकासवाद को तथा सस्कृति के विकास मे सातत्य की भूमिका को ठुकरा दिया था।

सुप्रसिद्ध रूसी लेखक और क्रातिकारी जनवादी निकोलाई चेर्निशेव्स्की ने कुछ पिछडे हुए राष्ट्रो की त्वरित प्रगति की सभाव्यता के बारे मे जो बुद्धिमत्तापूर्ण विचार व्यक्त किये है वे भी इस निष्कर्ष

---

*व्ला० इ० लेनिन से उद्धृत। देखें 'दार्शनिक टिप्पणियां' १९१४-१९१५।

पर आधारित है कि सामान्य सामाजिक जीवन के समस्त पक्षों के विकास मे एक विराट भूमिका अदा करता है। चेर्निशेव्स्की रूसी क्रांतिकारी दर्शन के किसी भी अन्य प्रतिनिधि की तुलना मे इतिहास की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सकल्पना के निकटतम पहुंचे थे। उन्होंने लिखा: "हम इस समस्या को हल करने की कोशिश कर रहे है कि एक सामाजिक घटना प्रत्येक समाज के वास्तविक विकास के सारे तार्किक क्षणो से होकर अनिवार्य रूप से विकसित होती है, या यह अनुकूल दशाओं मे विकास की पहली अथवा दूसरी अवस्था से छलाग लगाकर, बीच की अवस्थाओ को छोडते हुए, पाचवी या छठी अवस्था मे पहुच सकती है।" इस प्रश्न के उत्तर मे चेर्निशेव्स्की ने दावा किया "जब एक विशेष राष्ट्र मे एक विशेष सामाजिक घटना विकास की उच्च अवस्था मे पहुच जाती है, तो कोई दूसरा पिछडा हुआ राष्ट्र उस उन्नत राष्ट्र के मुकाबले कही अधिक तेजी से उसी अवस्था पर पहुंच सकता है।"

यद्यपि रूसी भौतिकवादी दर्शन के सस्थापकों के ये निष्कर्ष सगत वैज्ञानिक समाजशास्त्र के पूर्वाग्रहरहित विचार नही माने जा सकते, तथापि वे महान रूसी क्रातिकारी जनवादियो के विश्वदृष्टिकोण मे ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की द्वद्वात्मक-भौतिकवादी सकल्पना के अनेकानेक तत्वो के अस्तित्व को प्रमाणित करते है। यह सत्य है कि हर्जेन, जो "ऐतिहासिक भौतिकवाद के सामने आकर रुक गये थे", * की आलोचना करते हुए तथा १६वी सदी के प्रसिद्ध रूसी क्रातिकारी जनवादियो की अनेक यूटोपियाई आकाक्षाओ की असगता को उद्घाटित करते हुए, मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सस्थापको ने क्रातिकारी सिद्धात और व्यवहार की निधि मे उनके महान योगदान को कभी भी कम करके नही आका।

जब तक पूजीवाद उत्थान पर था, तब तक पश्चिमी बुर्जुआ समाजशास्त्री मानव समाज के प्रगतिशील विकास पर बढ-बढकर जोर देते थे। वे आत्मिक सस्कृति के विकास की प्रगतिशील प्रकृति की घोषणा करते और उसके सतत श्रमविकास पर विश्वास करते थे। १८वी सदी के फ्रासीसी दार्शनिक व प्रबोधक कोदोरसे के अलावा, १६वी सदी के प्रारभ के कई अन्य बुर्जुआ विचारक भी इस पूर्वाधार को लेकर

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'हर्जेन की स्मृति मे', १६१२।

मानते थे कि संस्कृति में, मुख्यतः विज्ञान और कला में, विकास की असीमित संभावनाएं हैं।

लेकिन जिस युग में पूंजीवाद के विकास का रुख पतन की ओर पलटने लगा उसमें बुर्जुआ समाजशास्त्रियों के सामाजिक प्रगति से संबंधित विचारों में आमूल परिवर्तन हो गया। फ्रांसीसी श्रमिक पार्टी के एक संस्थापक पाल लफार्ग ने लिखा कि १९वीं सदी के प्रारंभ में जब बुर्जुआ वर्ग अपनी आर्थिक अमीरी में ही था तब प्रगति और क्रमविकास के विचारों को असाधारण सफलता मिली थी। उसकी राजनीतिक विजय तथा आश्चर्यजनक वृद्धि से प्रफुल्लित दार्शनिकों, इतिहासज्ञों, नीतिशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों और कवियों ने अपनी-अपनी कृतियों तथा लेखों, आदि को प्रगतिशील विकास की चटनी से चटपटा बनाया। परंतु शताब्दी के मध्य तक पहुंचते-पहुंचते उन्हें अपने उच्छृंखल उत्साह को लगाम लगानी पड़ी। इंग्लैंड और फ्रांस के राजनीतिक मंच पर सर्वहारा के प्रवेश से बुर्जुआ वर्ग को अपने सामाजिक प्रभुत्व के शाश्वत टिकाऊपन की चिंता होने लगी और प्रगति का आकर्षण लुप्त हो गया।

१९वीं सदी के एक फ्रांसीसी दार्शनिक तथा बुर्जुआ समाजशास्त्र के एक संस्थापक ओगुस्त कोन्त ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने समाज के अपरिमीय प्रगतिशील विकास के विचार तथा सामाजिक सामंजस्य और स्थायी व्यवस्था की संकल्पना को साथ-साथ जोड़ा था। बुर्जुआ समाजशास्त्र १८वीं सदी के प्रबोधकों से विरासत में प्राप्त सामाजिक प्रगति के विचार से जैसे ही अलग हुआ, वैसे ही उसने सतत अग्रगामी गति के साथ ही साथ अपनी अनिर्धारित अपेक्षाएं भी गवा दीं।

परंतु १९वीं सदी के अंत तक (२०वीं के प्रारंभ में भी) बुर्जुआ समाजशास्त्री इस तथ्य से बेखबर थे कि पूंजीवादी प्रणाली का जिसे वे समाजिक प्रगति की आखिरी मंजिल समझते थे, धीरे-धीरे ह्रास होता जा रहा है। रूस में समाजवादी क्रांति तथा कई यूरोपीय व एशियाई देशों में संपन्न समाजवादी क्रांतियों से बुर्जुआ समाजशास्त्री उन समस्याओं पर पुनर्विचार करने के लिए विवश हो गये जिन्हें पहले वे बिल्कुल स्पष्ट मानते थे। सत्तासीन सर्वहारा के व्यवहार से

प्रगतिशील विकास की सभावनाओ का समर्थन करते थे। सामयिक बुर्जुआ समाजशास्त्रियो ने वस्तुत. सामाजिक प्रगति के विचार का ही परित्याग कर दिया है। उनमे से कई को चक्रावर्तन के आधुनिकीकृत सिद्धातो तथा सामाजिक अवनति की सकल्पनाओं को अपनाना पड रहा है।

बुर्जुआ समाजशास्त्रियो द्वारा पूजीवाद के सकट को मानवजाति के सकट के रूप मे और पूजीवादी सभ्यता के पतन को सपूर्ण सभ्यता के पतन के रूप में देखने का फल यह हुआ है कि वे एक अधी गली मे जा फसे हैं। आज के महान क्रातिकारी घटनाक्रम के महत्व को समाज के ऐतिहासिक विकास की अपरिहार्य प्रगतिशील अवस्था के रूप मे देख पाने मे अक्षम बुर्जुआ समाजशास्त्रियों को कम्युनिज्म-विरोधी विचारो के साथ अपने आपको समजित करना पड़ा। इसका मतलब यह है कि सामाजिक विकास के सिद्धात ने अपनी शृखला की मुख्य कड़ी से नाता तोड़ दिया, फलत ऐतिहासिक प्रक्रिया की सारी शृखला चरमरा रही है और उसमें अतर्निहित प्रगतिशील अवस्थाए लुप्त हो रही है। चकल तर्क के मुताबिक जो 'क' कहता है उसे 'ख' कहना पड़ता है, इसी तरह जो वर्तमान और भविष्य मे मानव इतिहास की प्रगतिशील प्रकृति से इनकार करता है, उसे अतीत मे प्रगतिशील विकास के स्थान का भी परित्याग करना पडता है।

पूर्णत: विचार करने पर हम देखते है कि आर्नोल्ड जे० टॉयनबी की कृति *A Study of History* (इतिहास का एक अध्ययन) इस दृष्टिकोण के सर्वोत्तम उदाहरण का काम दे सकती है। अपने बहु-खडीय ग्रथ में २०वीं सदी के यह ब्रिटिश इतिहासज्ञ तथा समाजशास्त्री मानवजाति के विकास की हर सामान्य प्रगतिशील प्रवृत्ति के हर अवलोकन की उपेक्षा करते हुए तथा समाज और विश्व साहित्य के सपूर्ण इतिहास का विविध सभ्यताओं के [illegible] समाहार में परिवर्तन करते हुए, मानवजाति के इतिहास का अध्ययन करते है और उनके अध्ययन में उनके बीच एक दूसरे के साथ कोई सबध नहीं है। प्रारभ में (हम यहां [illegible]) टॉयनबी समाज के इतिहास को २१ पृथक् [illegible], ६ [illegible] [illegible] और ९ [illegible] सभ्यताओं के योग के [illegible] है। बाद में [illegible] टॉयनबी का अपनी [illegible] [illegible] में [illegible]

करना पड़ता है, अब यहा २८ पूर्ण विकसित और ६ कम विकसित सम्यताए हो जाती है। उन्हे कुछ और बदलाव भी करने पडते है, पर इनके बावजूद उनकी सकल्पना का मूल सार पूर्ववत बना रहता है सारी की सारी सम्यताओ के बीच कोई सबध नही होता है।

विश्व इतिहास को एक दूसरे से असबद्ध सम्यताओ का योग समझते हुए और विश्व सस्कृति के विकास मे असतता का निरपेक्षीकरण करते हुए उसके इतिहास को अलग-अलग सम्यताओ के इतिहास की शक्ल मे पेश करके टोयनबी वस्तुत: विश्व सस्कृति की एकता ही के विचार का परित्याग कर देते है।

दूसरी तरफ, विश्व सस्कृति की एकता के विचार का परित्याग करने तथा सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया की असतता को निरपेक्ष बनाने के बाद टोयनबी, अतत, ऐतिहासिक सातत्य के सिद्धात को ही ठुकरा देते हैं।

इससे तार्किक चक्र पूरा हो जाता है सामाजिक प्रगति के विचार का परित्याग अनिवार्यत विश्व सस्कृति के विकास मे सातत्य की छान-बीन की आवश्यकता की अस्वीकृति तक पहुचा देता है।

सामाजिक प्रगति के विचार को ही तर्कत अर्थहीन बताकर तथा इस आधार को विश्व सस्कृति के विकास मे ऐतिहासिक सातत्य के सामान्य नियमो को अस्वीकार करने के लिए इस्तेमाल करते हुए आज के बुर्जुआ समाजशास्त्री, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, पूर्णत निश्चित तथा दुनिया के लिए साफ जाहिर वर्गीय लक्ष्य का अनुसरण कर रहे है।

इतिहास के प्रति केवल भौतिकवादी दृष्टिकोण ही समाज के प्रगतिशील विकास के वस्तुगत नियमो के वास्तविक सार को समझना और इस ऐतिहासिक प्रक्रिया मे सातत्य की भूमिका तथा महत्व को उद्घाटित करना सभव बनाता है।

भौतिक उत्पादन सामाजिक विकास की प्रगतिशील प्रवृत्ति की वस्तुगत बुनियाद का काम करता है। एगेल्स ने 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन' मे लिखा, "श्रमिक के निर्वाह की लागत के अलावा श्रम के उत्पाद का एक अधिशेष तथा इस अधिशेष मे एक सामाजिक उत्पादन व आरक्षित निधि की रचना और विस्तार सारी सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रगति का आधार था और है।" ऐतिहासिक भौ-

तिकवाद भौतिक उत्पादक शक्तियों के प्रगतिशील विकास तथा
उत्पादन-सबधों में ही समाज के विकास के और, फलत, विश्व
के विकास के प्रधान उद्दीपन को खोजता है और उसी में पाता

तथापि उत्पादक शक्तियों का विकास और उत्पादन-सबधों
सुधार, दोनों ही, ऐतिहासिक सातत्य के बिना असभव हैं।

उत्पादक शक्तियों के विकास में ऐतिहासिक सातत्य की
स्पष्ट है उत्पादन की प्रक्रिया को सुधारने में लोग सबसे पहले
श्रम के औज़ारों को और अपनी जानकारी को सुधारते हैं। परन्तु
भी औज़ार या जानकारी में कोई भी सुधार करना तब तक
है जब तक कि वह पहले के सचित अनुभव पर आधारित न
'जर्मन विचारधारा' में मार्क्स और एगेल्स ने लिखा, "इ
ऐसी अलग-अलग पीढ़ियों के अनुक्रम के सिवा और कुछ नहीं है,
मे प्रत्येक अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ियों द्वारा हस्तातरित सामग्री, पूजी
उत्पादक शक्तियों का उपयोग करती है और इस प्रकार एक
तो पूर्णत परिवर्तित परिस्थितियों में पारपरिक क्रियाकलाप जारी
है और दूसरी तरफ पूर्णत परिवर्तित क्रियाकलाप से पुरानी प
तियों को परिवर्तित करती है।" पुरानी पीढ़ी द्वारा सचित उत्
अनुभव तथा उत्पादक शक्तियों के अन्य अवयवों के इस "हस्तात
के बगैर सामाजिक श्रम की कुशलता में कोई भी वृद्धि और, फ
सपूर्ण सामाजिक प्रगति अकल्पनीय होती।

उत्पादन-सबधों के क्षेत्र में सातत्य और भी बड़ी कठिनाइया
करता है।

अतर्विरोधी सामाजिक सरचनाओं के उत्पादन-सबधों तथा
सामुदायिक प्रणाली के बीच बाहरी तौर पर कोई सातत्य दिखायी
देता। इसी तरह, कम्युनिस्ट समाज तथा वर्ग-समाज के उत्पा
सबधों के बीच भी प्रकटत कोई सातत्य नज़र नहीं आ सकता

पर फिर भी, पहले उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वा
पर आधारित कम्युनिस्ट समाज तथा आदिम सामुदायिक प्रणा
या जैसा कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों ने अक्सर कहा
"आदिम कम्युनिज़्म" के बीच सबध बिल्कुल स्पष्ट है।

दूसरे, निजी संपत्ति तीन सामाजिक सरचनाओं – दास-स्वा

ी, सामती और पूजीवादी – के उत्पादन-सबधो के बीच सबध इनकार करना असभव है।

तीसरे, यद्यपि वर्गहीन और वर्ग-समाजो के उत्पादन-सबधो के व सबध कम स्पष्ट है, तथापि वह होता है। यह किस रूप मे प्रकट ता है? यदि हम केवल सपत्ति के सबधो पर (प्रसगत सबध की धारा को भी नजरअदाज नही करना चाहिए, क्योकि दास-स्वामित्व की सामाजिक सरचना की प्रारभिक अवस्थाओ पर निजी सपत्ति घनीभूत होने की प्रक्रिया मे सामाजिक सपति का अस्तित्व समाप्त ही होता और समाजवादी क्राति की विजय के बाद सामाजिक सपदा सघनीकरण के दौरान निजी सपत्ति विद्यमान रहती है) ही नही, ल्कि सबधो के संपूर्ण समुच्चय पर गौर करे, तो यह सातत्य, सर्वो-रि रूप से, उत्पादको के बीच बनते हुए उत्पादन-सबधो के विविध पो मे प्रकट होता है।

अतर्विरोधी सामाजिक सरचनाओ के उत्पादन-सबध मात्र सपत्ति के सबधो तथा सपत्तिवान वर्गों व समूहो के बीच सहवर्ती सबधो तक ी सीमित नही होते। अतर्विरोधी सरचनाओ के उत्पादन-सबधो मे भुता और अधीनता को जन्म देनेवाले इन सबधो के अलावा निम्ना-कित उत्पादन-सबध भी शामिल होते है १ वर्गों के तथा स्वामियो के समूहो के अदर सबध और २ शोषित वर्गों और समूहो के अदर सबध। जहा पहले सबधो का अस्तित्व निजी सपत्ति के अनुकूल रूपो, जो इसे अस्थिर प्रकृति का बना देते है, की उत्पत्ति से अभिन्न है, वहा दूसरे सबधो का अस्तित्व उत्पादन की प्रक्रिया के साथ गुथा हुआ है। वह मुख्य रूप से सामाजिक श्रम विभाजन के विभिन्न ठोस रूपो मे प्रकट होता है।

अतर्विरोधी सामाजिक सरचनाओ के आर्थिक आधार की "दोहरी प्रकृति"* होती है, यानी प्रभुत्व और अधीनता के सबधो के अलावा स्वयं उत्पादकों के बीच संबंध भी शामिल होते है, यह ऐसा तथ्य है जो भौतिक उत्पादन के विकास की प्रक्रिया मे ऐतिहासिक सामान्य के सामान्य नियम का सुराग देता है। ऐतिहासिक विकास की विशिष्ट

---

* कार्ल मार्क्स 'दर्शन की दरिद्रता', १८८७।

अवस्थाओं में निजी संपत्ति के विभिन्न रूप और उन्हीं के साथ सहवर्ती संबंध – राजनीतिक और वैचारिक संबंध – उत्पन्न व होते हैं। परन्तु श्रमिक, जो उत्पादन-प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः शामिल होते हैं, विश्व इतिहास की सारी अवस्थाओं में अपने ही उत्पादन संबंधों का निर्माण और विकास करते हैं। उनके क्रियाकलाप सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में भौतिक और आत्मिक दोनों ही के उत्पादन के सातत्य के वास्ते स्थिर आर्थिक आधार की रचना हैं। यही कारण है कि एक सामाजिक-आर्थिक संरचना में दूसरे में संक्रमण के दौरान उत्पादन-संबंधों के ऐतिहासिक प्रकारों का परिवर्तन, के रूपों में सहवर्ती परिवर्तनों के बावजूद स्वयं उत्पादकों के उत्पादन संबंधों की विभिन्न संरचनाओं के बीच सातत्य को खत्म करने के बजाय उसे और भी ज्यादा दृढ़ बना देता है, क्योंकि उत्पादन-संबंधों का हर नया प्रकार अधिक प्रगतिशील होता है और संबंधित ऐतिहासिक अवधियों में, नये स्तर और उत्पादक शक्तियों की प्रकृति के अनुरूप चलने की अपनी क्षमता के अनुसार भौतिक उत्पादन के विकास की इष्टतम दर को सुनिश्चित बनाता है।

एक वर्ग-समाज में भौतिक उत्पादन की प्रगतिशील ढंग से विकसित होने की वस्तुगत प्रवृत्ति के अनुक्रम में अनिवार्यतः प्रत्यक्ष उत्पादकों की दशाओं में एक क्रमिक परिवर्तन होता है तथा लक्ष्यों का जटिलीकरण, रूपों में सुधार और वर्ग संघर्ष के क्षेत्र में फैलाव और, फलतः अंतर्विरोधी सामाजिक संरचनाओं में मजदूरों के राजनीतिक व कानूनी अवसरों में परिवर्तन तथा समाजवादी क्रांति और उसकी जीत के बाद समाज की सामाजिक संरचना में आमूल रूपांतरण होते हैं।

समाज के आर्थिक और राजनीतिक जीवन में होनेवाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मानवजाति के आत्मिक जीवन में परिवर्तन होते हैं जो जनता की रचनात्मकता के प्रदर्शन में, सामाजिक चेतना के नये रूपों के उद्भव और विकास में, समाज के आत्मिक जीवन में मानवीय सिद्धांतों की बढ़ती हुई भूमिका और महत्व में, विज्ञान व टेक्नोलाजी, कला और शिक्षा, आदि की उपलब्धि में साकार होता है।

परन्तु आत्मिक संस्कृति की प्रगति तब तक साकार नहीं हो सकती जब तक उसके पीछे भौतिक उत्पादन के प्रगतिशील विकास का सबल

न हो और, जो सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है, इसके लिए पूर्ववर्ती पीढ़ियों द्वारा संचित सांस्कृतिक मूल्यों का सक्रिय उपयोग जरूरी है। १७वीं शताब्दी के फ्रांसीसी दार्शनिक रेनें देकार्त ने अपने *Discours de la Méthode et Essais* विज्ञान के विकासार्थ सातत्य के विराट महत्व के बारे में कहा है "जो लोग विज्ञान में कदम ब कदम सत्य की खोज करते हैं, वे उन लोगों से मिलते-जुलते है जो अधिक अमीर हो जाने पर अधिक बड़ी संपदाओं की प्राप्ति को उस अतीत की छोटी संपदाओं के अभिग्रहण से अधिक सरल पाते है जब वे गरीब थे। उनकी तुलना उन जनरलों से भी की जा सकती है जिनकी फौजी शक्तियां उनकी जीतों के अनुपात में बढ़ती हैं।"

हम रचनात्मकता के तरीकों के सुधार, उनके अनुप्रयोग और मनुष्य द्वारा सर्जित सांस्कृतिक मूल्यों के संप्रेषण के इतिहास के अध्ययन में भी सातत्य को आसानी से खोज सकते हैं रचनात्मकता की विधियां, शिक्षा के साधन व पद्धतियां और लालन-पालन, संस्कृति के रूपांतरण के अभिकरण व साधन (स्कूल, थियेटर और बाद में प्रेस, सिनेमा, रेडियो व टेलिविजन, आदि)।

भौतिक और आत्मिक संस्कृति के प्रगतिशील विकास में भाषा को एक महत्वपूर्ण भूमिका दी जाती है। यह मनुष्य के सज्ञान के परिणामों को ही अभिलिखित नहीं करती, बल्कि यह लोगों को पारस्परिक विचार-विनिमय में समर्थ बनाती है और एक पीढ़ी से दूसरी को ज्ञान के संक्रमण को सुनिश्चित बनाती है। इस प्रकार भाषा विभिन्न युगों के बीच आत्मिक सातत्य को सुनिश्चित बनाती है। भाषा के सामाजिक कार्य के महत्व का मूल्यांकन करते हुए एक महान रूसी शिक्षक कोन्स्तान्तीन उशीन्स्की ने लिखा कि प्रत्येक पीढ़ी अपनी मातृभाषा की निधि को अपने गहरे भावनात्मक आवेग, अपनी ऐतिहासिक घटनाओं के परिणाम, अपना विश्वास, अपना दृष्टिकोण, अपने उल्लास और दुख के हर चिह्न प्रदान करती है, जिसका तात्पर्य यह है—लोग अपनी भाषा में अपने आत्मिक जीवन के हर चिह्न को सावधानी से सजोकर रखते है। भाषा विगत, वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों को एक महान ऐतिहासिक समष्टि में एका

करती है।

के प्रतिबिम्ब समाज के आत्मिक जीवन में भी पाये जा सकते हैं। कभी-कभी संस्कृति का विकास भी भटककर अंधी गली में जा सकता है और कुछ समय के लिए बंद हो सकता है। मिसाल के लिए, यूनानी-रोमन संस्कृति के साथ यही हुआ। ईसवी सवत् के प्रारंभ तक यूनानी-रोमन संस्कृति अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंच गयी थी और दास-स्वामित्व की उत्पादन-प्रणाली के गहन संकट से अप्रभावित नहीं रह सकती थी। इस संकट के फलस्वरूप शुरू में उसकी तीव्र अवनति हुई और अंततः रोमन साम्राज्य की अंतिम शताब्दियों में उसका पतन हो गया। ईसाई धर्म ने मूर्तिपूजा के खिलाफ संघर्ष में "मूर्तिपूजकों के दर्शन" तथा प्राचीन जगत् के "मूर्तिपूजा विज्ञान" पर एक के बाद एक प्रहार करते हुए अपनी शक्ति को सुदृढ़ बनाया।

यही बाधा पश्चिम यूरोपीय संस्कृति के इतिहास में भी आयी और लगभग सारे सांस्कृतिक क्षेत्र इसकी चपेट में आ गये। एंगेल्स ने लिखा, "मध्य युग पूर्णतः नये सिरे से विकसित हुए। उन्होंने फिर से प्रारंभ करने के लिए पुरानी सभ्यता, पुराने दर्शन, राजनीति और विधि-विज्ञान का सफाया कर दिया। उन्होंने पुरानी दुनिया का जो कुछ भी सलामत रहने दिया वह था ईसाई मत और हर तरह की सभ्यता से वंचित आधे उजड़े हुए चंद शहर। इसके फलस्वरूप, जैसा कि विकास की हर आदिम अवस्था में होता है, बौद्धिक शिक्षा की इजारेदारी धर्मशास्त्रियों के हाथों में आ गयी और शिक्षा स्वयं मूलतः धार्मिक बन गयी।"*

परंतु उस अवधि में पश्चिम यूरोपीय देशों में आत्मिक संस्कृति की दीर्घकालिक अवनति के बावजूद प्राचीन संस्कृति का पूर्ण उच्छेदन नहीं हुआ।

इसके अलावा, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रगति की वस्तुगत प्रवृत्ति अत्यन्त प्रमुख रूप से प्रभावी हो जाती है। शुरू में वह इक्का-दुक्का रूप में प्रारंभ करती हुई मध्यम गति से बनती है और धीरे-धीरे उस घटना के रूप में विकसित हो जाती है जो कालान्तर में पुनर्जागरण के नाम से विख्यात हुई।

---

* मेरिंग फ्रेंज जर्मनी के इतिहास पृ० १९१०।

उपरोक्त कथन के पूरक रूप में यह नोट किया जाना चाहिए कि सभ्यता तथा विश्व संस्कृति दोनों ही के इतिहासों में "पतन छलांग" निरपवाद रूप से न सिर्फ अन्तर्क्षेत्रिक, बल्कि स्थानीय प्रकृति की भी थी। मिसाल के लिए पश्चिमी यूरोप (पश्चिमी रोमन साम्राज्य) से भिन्न बाइजैंटियम (पूर्वी रोमन साम्राज्य) की शिक्षा व संस्कृति में अवनति नहीं हुई और वहां प्राचीन अध्येताओं का अध्ययन कभी नहीं रुका (उनमें से कई को पुनर्जागरण काल के दौरान बाइजैंटियम के जरिये और प्राचीन फ़ारसी, अरबी और जार्जियाई लोगों की सहायता से फिर से खोजना पड़ा था)।

चूंकि बाइजैंटियम चर्च पर कम निर्भर था, इसलिए वहां धार्मिक स्कूलों के अलावा धर्म-निरपेक्ष स्कूल भी थे। प्रमुख बाइजैंटियाई नगरों, मुख्यतः उसके पूर्वी प्रांतों में, की उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रसिद्ध दार्शनिकों, विधिवेत्ताओं, भाषाविदों, व्याकरण-शास्त्रियों, डाक्टरों, आदि को प्रशिक्षण मिला था। बाइजैंटियाई विश्वविद्यालयों के समृद्ध पुस्तकालयों में पाण्डुलिपियां न केवल संग्रहीत ही थीं, बल्कि उनके पुनर्लेखन का काम भी होता था।

इस तरह बाइजैंटियम की कृपा से प्राचीन जगत् की अनेक उपलब्धियां नष्ट होने से बच गयीं। इस मामले में उन बाइजैंटियाई वकीलों का प्रमुख योगदान है जिन्होंने रोम की कानूनी विरासत को सिलसिलेवार संहिताबद्ध किया था। प्राचीन जगत् की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने में बाइजैंटियाई दार्शनिक माइकेल प्सेलस तथा जान सिफिलिन ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की। विशेष उल्लेखनीय माइकेल प्सेलस (११वीं शताब्दी) का व्यक्तित्व है। वे अत्यंत विद्वान चिंतक थे। वे केवल दर्शन (मुख्यतः अफलातून और नव-अफलातूनवादियों) का ही ज्ञान नहीं रखते थे, बल्कि प्राकृतिक विज्ञानों, इतिहास, भाषाविज्ञान और कविता में भी दिलचस्पी रखते थे। उनके अनुयायी जान इतालस ने अरस्तू की दार्शनिक विरासत का व्यापक अध्ययन किया था। मध्य युग में बाइजैंटियम ने यूनानी और रोमन संस्कृति से निकट-संबंधित कला के विकास पर बहुत ध्यान दिया। बाइजैंटियम की संस्कृति पर यूनानी परम्पराओं का विशेष प्रभाव पड़ा, जो प्राचीन कला और की, रूमी, जार्जियाई और आर्मीनियाई कला के

इससे स्पष्ट है कि पश्चिम यूरोपीय देशो मे आत्मिक सस्कृति की अवनति की अवधि मे बाइज़ैटियम ने प्राचीन सास्कृतिक विरासत के कुछ पक्षो को सुरक्षित रखा तथा उन्हे विकसित किया। इसके साथ ही हमे इस तथ्य से भी आखे नही मूदनी चाहिए कि पश्चिम यूरोपीय देशो की सास्कृतिक अवनति की अवधि मे (ईसा की ७वी सदी के प्रारभ मे) अरबी सस्कृति का तेज़ी से विकास हुआ। यह सस्कृति ८वी से ११वी सदी तक की अवधि मे फली फूली थी। इसके अलावा पूर्वी देशो, जैसे भारत, चीन, आदि, का सास्कृतिक विकास हुआ।

बाइज़ैटियम और अरबी पूर्वी देशो के द्वारा प्राचीन परपराओ के सरक्षण तथा सप्रेषण ने प्रधान रूप से पुनर्जागरण के युग का मार्ग प्रशस्त किया। पुनर्जागरण के दौरान जब चर्च तथा सामतवाद के खिलाफ सघर्ष के फलस्वरूप ऐसी "महानतम प्रगतिशील क्राति हुई जैसी मानवजाति ने पहले कभी देखी नही थी", "अरबो से गृहीत और नये सिरे से खोजे हुए यूनानी दर्शन से पोषित मुक्त चिन्तन की उल्लासमय भावना अधिकाधिक गहरी जड जमाती गयी और उसने १८वी सदी के भौतिकवाद का मार्ग प्रशस्त किया।"*

जैसा कि सोवियत इतिहासज्ञो के हाल के अध्ययन से सिद्ध हुआ है, यह उल्लेखनीय है कि पुनर्जागरण एक ऐसी घटना था जो यूरोपीय देशो की सीमा से कही दूर तक विस्तृत थी। यदि हम यह मान ले कि पुनर्जागरण एक ऐसी ऐतिहासिक अवधि था जिसकी विशेषता, कमोवेश दीर्घ अतराल के बाद, पुरातन तथा प्राचीन इतिहास मे उन जातियो की दिलचस्पी का फिर से जागना थी जो चर्च और सामती अधिपतियो के खिलाफ सघर्ष कर रही थी और जिनका सास्कृतिक इतिहास नये युग की शुरूआत से बहुत समय पहले ही पल्लवित हो गया था, तो एक विज्ञान के रूप मे इतिहास नितात सगत रूप से यह विवाद उठा सकता है कि पुनर्जागरण का महत्व केवल इटालवी, स्पेनी, फ्रासीसी, जर्मन तथा यूरोपीय जनगण के ही नही, बल्कि चीन (८वी-१२वी सदियो का 'तऊाग पुनर्जागरण'), मध्य पूर्व (६वी-१२वी

के लिए भी था। पुनर्जागरण का विचार सोवियत पूर्व के जनगण के लिए भी फलदायी हुआ। श० नुत्सुबीद्ज़े तथा ई० द्ज़ावाख़ीश्वीली की रचनाओ मे इस समस्या पर जार्जिया के सदर्भ में विचार किया गया है। हाल के वर्षों मे व० चलोयान ने इस विचार के स्पष्टीकरण के लिए ढेर सारी दिलचस्प सामग्री इस्तेमाल की है। अपनी पुस्तक 'पूरब – पश्चिम' मे उन्होंने यह थीसिस पेश की है कि पुनर्जागरण पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति के साथ-साथ नही चला, बल्कि उसने इस पद्धति के आगमन का पूर्वसकेत दिया। उन्होंने पुनर्जागरण को बस पश्चिम यूरोपीय देशो तक सीमित रखने की कामना की आलोचना की और यह साबित किया कि कई अन्य पूर्वी तथा पश्चिमी देशो के तुलनीय ऐतिहासिक व सास्कृतिक युग उसके साथ सहसबधित थे। बाइज़ैटियम और काकेशिया को पूर्व व पश्चिम सहित सारी सभ्य दुनिया का अखड भाग मानते हुए चलोयान ने यह सिद्ध किया कि पूर्व व पश्चिम मे पुनर्जागरण की सस्कृति विभिन्न जातियो मे अपनी किसी भी नियति के और पूर्व मे अपनी सारी विशेषताओ के बावजूद मूलत एक ही ढग से विकसित हुई (यद्यपि पूर्व मे यह पश्चिम के मुकाबले पहले शुरू हुई तथापि अपने विकास मे यह पश्चिम के पुनर्जागरण की संस्कृति के स्तर तक कभी नही पहुंची)।

पुनर्जागरण के विषय के प्रति नये दृष्टिकोण का महत्व विशुद्ध ऐतिहासिक अध्ययनो तक ही सीमित नही है और विभिन्न देशो के "पुनर्जागरण युगों" की आपसी निकटता की उन समाजशास्त्रियो द्वारा अनदेखी नहीं की जा सकती जो इतिहास और सस्कृति के सिद्धान्त मे दिलचस्पी रखते हैं, क्योकि यह कई सामान्य निष्कर्ष निकालने में सहायक है।

इनमें से एक निष्कर्ष, जो शायद सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है, यह है कि समाज के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया कुछ सास्कृतिक घटनाओ को अविराम या सविराम प्रकृति का बना सकती है। पहले मामले मे, अतीत के सास्कृतिक मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी मे सक्रमण करते हुए प्रत्येक ऐतिहासिक युग की सस्कृति के विशद तत्वों के रूप मे सतत रूप से मानवजाति की सास्कृतिक उपलब्धियां बने रहेंगे। दूसरे मामले में, पूर्ववर्ती सास्कृतिक मूल्य एक निश्चित अवधि तक सस्कृति

गुप्त हो जाते हैं और विकास की आगे की अवस्था में फिर प्र
ट हो जाते हैं। मिसाल के लिए प्रकृति परमाणु के बारे में प्राच
न अध्ययन प्राचीन यूनान में हुए थे तथापि मध्य युग के समाज
संस्कृति में परमाणु धारणा हो गया और फिर पूर्णत पुनर्जीवित
र विकसित आधुनिक काल में ही हुआ।

इसके साथ ही ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध करते हैं कि संस्कृति के वि
स में सातत्य प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी।

'पुनर्जागरण युगों' को महत्वपूर्ण रूप समझ पर इसी आ सकता
कि जो घटना 'पुनर्जागरण' से मिलती है वह अपेक्षाकृत यथा
ृति वाली जातियों की सार्वत्रिक होती है। उसमें एकमात्र मूल
र यह होता है कि उन्हें उत्तराधिकार में विरासती प्राचीनता
न थी। इससे यह नतीजा निकलता है कि विभिन्न "पुनर्जागरण
ों" तथाकथित स्वाधीन और प्रतिबिंबित घटनाओं के
च अंतर करना जरूरी है। दीर्घ तथा सतत विकासमान इतिहास
ली प्राचीन जातियों का 'पुनर्जागरण' इन देशों में उद्घाटित होन-
ली ऐतिहासिक प्रक्रिया के नियमों के कारण होता है। अपेक्षाकृत
तथा विस्तृत 'प्राचीन' पृष्ठभूमि से हीन और अन्य राष्ट्रों की
ना में महान ऐतिहासिक विकास के पथ पर बाद में कदम रखनेवाली
तियों के "पुनर्जागरण" की घटना प्राचीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
ली पड़ोसी जातियों की जिन्दगी में होनेवाली प्रमुख घटनाओं के
उनकी अपनी अनुक्रिया होती है।

ज़ाहिर है कि सामाजिक विकास में होनेवाली दीर्घकालिक रुकावटों
"पुनर्जागरण युगों" को संपूर्ण सामाजिक प्रगति की सार्विक प्रक्रि-
ाओं के साथ घनिष्ठता से जोड़ा जाना चाहिए। इसका यह अर्थ
कि प्रगतिशील विकास की एक अपरिहार्य पूर्वशर्त के रूप में ऐतिहा-
सातत्य भी सामाजिक प्रगति के अंतर्विरोधों से प्रभावित होता
जो स्वयं अनुकूलनीय ऐतिहासिक संरचनाओं के सांस्कृतिक विकास
व्यक्त होता है।

विभिन्न अंतर्विरोधी समाजों में सामाजिक प्रगति के अंतर्विरोधों
कारण सांस्कृतिक विकास जिन "टेढ़े-मेढ़े" रास्तों से होता है उनकी
घटनाओं का चित्रण उनके भिन्न-भिन्न विस्तार-क्षेत्रों, परिमाण,

प्रगति और पतन में दिखा जा सकता है।

मे सेनगल काल (यह दर्शन वर्षों से सेकड़ शताब्दियों तथा सहस्रा-ब्दियों तक) की अत्यन्त भिन्न-भिन्न अवधियों में ही नहीं देखे होते है बल्कि जातियों की बड़ी या छोटी संख्या भी उनकी लपेट मे आ सकती है। मिसाल के लिए येविसोल द्वारा नूबिया राज्य पर अधिकार कर लेने की वजह से अरब प्रायद्वीप की इस प्राचीन जाति का सांस्कृतिक विकास काफी लंबे समय तक अवरुद्ध हो गया; पुर्तगाली, स्पेनी, हालैंडी तथा अंग्रेज उपनिवेशवादियों की बर्बरतापूर्ण नीतियों के फलस्वरूप पश्चिम अफ्रीकी राष्ट्रों के एक पूरे समूह की और खास तौर से बेनिन की आश्चर्यजनक और वस्तुत अद्वितीय संस्कृति को अवनति के गर्त मे धकेल दिया गया।

इस "टेढ़े-मेढ़े" विकास-पथ मे संस्कृति के तत्वों का बृहतर या लघुतर विस्तार-क्षेत्र शामिल हो सकता है। मसलन, चीन में लिखित भाषा का विकास अवरुद्ध हो गया और मध्य युग के प्रारंभिक काल मे यूरोपीय लोग सिर्फ पढ़ना और लिखना ही नही भूले, बल्कि उन्होंने कुछ समय के लिए प्राचीन संस्कृति की कला, विज्ञान और दर्शन समेत, सारी उपलब्धियो को भी विस्मृति के अंधेरे मे दफना दिया।

अत मे, ये "टेढ़े-मेढ़े" विकास-पथ भिन्न-भिन्न प्रकृति के हो सकते है। खास तौर से, संस्कृति के विकास में लंबे अंतराल का परिणाम पहले के उपलब्ध परिणामो का विनाश या विस्मृति ही नही होता बल्कि वह समयांतर भी होता है जो सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया मे संपन्न सैद्धान्तिक उपलब्धियो और उनके व्यावहारिक अनुप्रयोग के बीच पैदा हो जाता है। यद्यपि आर्कीमिदीस के सिद्धांत (जिसके बिना आधुनिक जहाज़-निर्माण अकल्पनीय है) की खोज ईसापूर्व पहली सदी मे हो गयी थी, तथापि जहाज़-निर्माण मे इसका पहला व्यावहारिक अनुप्रयोग उन्नीस शताब्दियों के बाद, १८६६ मे ही हुआ। उन्नीस शताब्दियों तक लोग बेड़ो, नावो तथा पालदार जलयानो का निर्माण करते रहे, पर उस सारी अवधि मे इस बारे मे बेखबर रहे कि जल मे तिरते-उतरते कैसे है.

इस दृष्टि से ऐतिहासिक सातत्य के प्रभाव का विश्लेषण प्रगतिशील सामाजिक विकास के टेढ़े-मेढ़े [illegible]िक रास्तो औ

ऐतिहासिक मानव्य की विभिन्न रकावटों के बीच मपर्को का निर्धारण करके हम इन मपर्को को निश्चय ही केवल सामाजिक-आर्थिक कारणो तक सीमित नही रख सकते है, क्योकि वे अद्वितीय नहीं है। सांस्कृतिक विकास की, खास तौर से, उसकी सविराम प्रकृति की पडताल करते समय हमें विशिष्ट ज्ञानमीमांसीय लक्षणो, मज्ञान-प्रक्रिया की द्वद्वात्मकता, निषेध का निषेध करनेवाले उस नियम पर विचार करना चाहि जो प्रकृति व समाज का ही नही, बल्कि चिंतन के विकास का भ निर्धारण करता है। यदि मध्ययुगीय यूरोप मे होनेवाली सामाजि प्रक्रियाओ और उस अवधि की यूरोपीय सस्कृति के विकास की प्रक्रियाअ के बीच एक घनिष्ठ सबध है, तो हम उस अन्य सबध पर भी गौ किये बिना रह सकते जो स्वय विचारो के विकास मे साकार हु और जिन्होने, मिसाल के लिए १५वी-१८वी शताब्दियो के भौतिक वादियो द्वारा प्राचीन भौतिकवादियो की द्वद्वात्मक उपलब्धियो अस्वीकरण की अपेक्षा की थी।

परतु विश्व सस्कृति के विकास मे गत्यवरोध, "टेढे-मेढे" रास्त और "पश्च छलाग" की अवधिया कितनी ही लबी क्यो न हो, अतत मह और सारा समाज सारी पिछडी हुई पश्चगामी प्रवृत्तियो पर का पा लेता है।* जैसा कि हम पहले ही गौर कर चुके है सामाजि पश्चगति की प्रकृति अल्पकालिक और स्थानीय होती है। दीर्घावि मे सामाजिक प्रगति के नियम सशक्त हो जाते है और अल्पकालिक स से बाधित विकास फिर चालू हो जाता है और "पश्च छलाग" जगह "अग्र छलाग" ले लेती है।

तदनुसार, विश्व सस्कृति सारी पश्चगतियो पर काबू पाव प्रगतिशील ढग से विकसित होती चलती है। विकास के दौरान स टेढे-मेढे रास्तो तथा विपत्तियो के बावजूद समाजिक प्रगति के वस्तु

---

* "प्रगति और पश्चगति' की धारणाओ को सापेक्ष मानना चाहिए। यद हम पश्चगति को १५वी-१८वी सदी के भौतिकवादियो द्वारा द्वद्वात्मकता की अस्वीकृ... कहते है, तथापि हमें ध्यान रखना चाहिए कि उस अवधि मे अधिभूतवाद का प्रभुत्व 'ऐतिहासिक दृष्टि से उचित था (एगेल्स), क्योकि यह वैज्ञानिक ज्ञान के प्रगतिशील विकास की विशिष्ट अवस्था के तथा स्वय भौतिकवाद के प्रगतिशील विकास की गुणात्मक दृष्टि से नयी अवस्था के साथ जुडा था।

नियम निरपवाद रूप से विजयी होते हैं। यहा तक कि सपूर्ण सभ्यता के विनाश की स्थिति मे भी उसकी सास्कृतिक उपलब्धिया अन्य जातियों के लिए कभी भी अपूरणीय रूप से नष्ट नही होती हैं। इसके विपरीत वे सस्कृति की विश्व निधि मे शामिल होकर उसके विकास की गति को बढा देती हैं।*

सामाजिक प्रगति के एक प्रमुख पूर्वाधार के रूप मे आत्मिक उत्पादन के क्षेत्र का सातत्य भौतिक सस्कृति के क्षेत्र के ऐतिहासिक सातत्य से मूलत भिन्न होता है।

चूकि भौतिक उत्पादन का विकास सपूर्ण सामाजिक प्रगति का आधार होता है, इसलिए समाज की भौतिक सस्कृति "पश्च ढलाव" की स्थिति मे भी अपने सर्वाधिक मूल तत्वो के मामले मे अपरिवर्ती रहती है और राजनीति तथा आत्मिक सस्कृति के विकास मे अस्थायी गत्यवरोधो के बावजूद विकसित होती रहती है। इतिहास से सिद्ध होता है कि जब समाज के राजनीतिक जीवन मे प्रतिगामी बदलाव आता है और आत्मिक सस्कृति का विकास विभिन्न कारणो से दीर्घकाल तक के लिए मद या अवरुद्ध हो जाता है, जब आत्मिक मूल्य कई पीढ़ियों के जीवन मे लबे समय के लिए लुप्त हो जाते हैं तो उन घटनापूर्ण अवधियों मे भी भौतिक सस्कृति का विकास, नियमत, मदतर गति मे होने के बावजूद, अविराम जारी रहता है। यह बात बोधगम्य है, क्योंकि उत्पादन की सतत प्रक्रिया के बगैर समाज का अस्तित्व असभव है – भौतिक उत्पादन के पूर्ण विनाश से समाज भी नष्ट हो जायेगा।

आत्मिक सस्कृति की स्थिति इससे भिन्न है। अपनी आतरिक विशेषताओं के कारण कई आत्मिक मूल्यों, खास तौर पर, कला और

---

* यह ध्यान रखना [illegible] है कि जिस स्थिति में सांस्कृतिक विकास [illegible] [illegible] होती है तथा सांस्कृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का [illegible] [illegible] विकास का [illegible] उस स्थिति में भी [illegible] [illegible] ऐतिहासिक [illegible] है। [illegible] सांस्कृतिक विकास का [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] है। [illegible] विश्व संस्कृति के विकास के [illegible] [illegible] है [illegible] विकास की दिशा [illegible] विशाल ऐतिहासिक [illegible] है [illegible] है।

साहित्य की कृतियो को हमेशा के लिए जब्त किया जा सकता है और इसके विकास की रुकावटे दीर्घतर, अधिक हानिकर हो सकती है और कुछ मामलो मे विनाशकारी प्रभाव डाल सकती है। आत्मिक उत्पादन की यह विशेषता भौतिक और आत्मिक संस्कृति के असमान विकास को काफी हद तक स्पष्ट कर देती है।

समाज के आर्थिक विकास मे सातत्य वस्तुगत भौतिक दशाओ पर आधारित है और लोग इसमे अपना योगदान करते हैं तथा कभी-कभी अवचेतन रूप से करते हैं, पर आत्मिक संस्कृति के विकास मे सातत्य की विशेषता इस तथ्य मे निहित है कि इसमे योगदान करनेवाले हर व्यक्ति को सामाजिक जीवन के पूर्ण चित्र तथा उसमे अपनी भूमिका की समझ से पहले के सारे आत्मिक मूल्यो का बोध तथा आलोचनात्मक मूल्याकन करना होता है।

बेशक, इसका यह तात्पर्य नही है कि आत्मिक संस्कृति के सामान्य नियमो मे वस्तुगतता नही होती। जब कभी एक वैज्ञानिक, कलाकार, आदि बीते हुए युगो की सास्कृतिक विरासत के प्रति अपने रवैये का निर्धारण करता है, तो उसका सरोकार उन सास्कृतिक मूल्यो से होता है जो पहले से ही सर्जित हैं और वह उनकी अतर्वस्तु को प्रभावित करने मे असमर्थ होता है। इसके अलावा, यद्यपि इन मूल्यो का उसका मूल्याकन तथा अपनी रचनात्मक प्रक्रिया मे उन्हे प्रयुक्त करने का उसका तरीका किन्ही भी कारको से सीमित नही है, तथापि वह पूर्णत अपनी आत्मगत इच्छाओ और रुझानो से निर्देशित नही होता, बल्कि सामाजिक सत्व के विकास के वस्तुगत नियमो से, उस विशेष ऐतिहासिक युग के लक्ष्यो से तथा उन सामाजिक शक्तियो की आवश्यकताओ से प्रारभ करता है जिनके हित मे वह सचेत या अचेत रूप से काम करता है। जो भी हो, आत्मिक संस्कृति के क्षेत्र की कोई भी कार्यवाही, अतत, विशेष आर्थिक कारणो से निर्धारित होती है और इसीलिए मनुष्य विरासत मे प्राप्त आत्मिक मूल्यो के महत्व को समझे बिना और उनके प्रति अपने व्यक्तिगत रवैये को उद्घाटित किये बिना उसमे लिप्त नही हो सकता है।

उपरोक्त कथन विचारधारा के विकास मे सातत्य के सबध मे खास तौर से सगत है।

इसी कारण से आत्मिक उत्पादन के विकास में सातत्य की ए
अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता सामने आती है. यहां दो प्रकार के सात
है प्रगतिशील और प्रतिगामी, जो एक वर्ग-समाज में आत्मिक संस्कृ
की वर्ग-प्रकृति से उत्पन्न होते हैं।

भौतिक संस्कृति के विपरीत आत्मिक संस्कृति के विकास में सात
की प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए सबसे ज्यादा जरूरी यह तथ्य है कि
आत्मिक संस्कृति के क्षेत्र में उपयोग से संबंधित सांस्कृतिक मूल्यों क
विनाश या उपभोग-मूल्य के रूप में उनका विलोपन नहीं होता है
इसके विपरीत वही सांस्कृतिक मूल्य सदियों तक मानवजाति की सेव
सेवा ही नहीं कर सकते, बल्कि, जो और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है
उपभोग (स्वांगीकरण) की प्रक्रिया में सांस्कृतिक मूल्यों में उन
के द्वारा उत्पन्न नयी सारवस्तुओं के अर्जन का रुझान पैदा हो जा
है, उनके नये उपयोग (अनुप्रयोग) निकल आते हैं और इसके फलस्
रूप उनका महत्व बढ़ जाता है।

२. संस्कृति के विकास में सातत्य के प्रत्ययवादी तथा थोथे समाजवैज्ञानिक विचारों की आलोचना

भौतिक उत्पादन को सामाजिक प्रगति की आधारशिला बतलाते हुए ऐतिहासिक भौतिकवाद के तर्क हमें इस बुद्धिसंगत निष्कर्ष पर पहुंचाते हैं कि लोग इतिहास में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद ने इतिहास के वस्तुगत नियमों और जनगण के सचेत क्रियाकलापों के सहसंबंध की समस्या का वैज्ञानिक समाधान पेश करके **सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के विषयी के रूप में मनुष्य की वास्तविक भूमिका को उद्घाटित किया।** इस तरह से इसने मनुष्यजाति की आत्मिक संस्कृति के विकास में सातत्य की भूमिका तथा स्थान का निर्धारण किया।

आत्मिक संस्कृति के विकास में सातत्य अपनी भौतिक बुनियाद से निर्धारित होता है तथापि यह उन सभी आत्मिक मूल्यों पर पूर्णत आश्रित होता है जिन्हें जनगण द्वारा रचा जा रहा है। ऐसा रवैया सातत्य के विभिन्न प्रत्ययवादी तथा थोथे समाजवैज्ञानिक विचारों के खिलाफ

अनिवार्यत सैद्धांतिक विवाद खडा कर देता है।

आत्मिक सस्कृति की **सापेक्ष** स्वाधीनता पर बल देते हुए मार्क्सवाद-लेनिनवाद सस्कृति की भौतिकवादी सकल्पना तथा सस्कृति की विभिन्न **प्रत्ययवादी** व्याख्याओ के, जो उसकी **पूर्ण** स्वाधीनता की बात करते है, बीच भेद करता है। आत्मिक सस्कृति की सापेक्ष **स्वाधीनता** का अभिनिश्चय करके मार्क्सवाद-लेनिनवाद आत्मिक सस्कृति के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण को उन विभिन्न अधिभूतवादी सिद्धातो के मुकाबले मे रखता है, जो उसके विकास मे स्वाधीनता के **किसी भी चिह्न को** उपस्थिति को किसी न किसी तरह से अस्वीकार करते हैं।

यदि आत्मिक सस्कृति के भौतिक आधारो की अवहेलना कर दी जाये तो इसके विकास मे सातत्य मात्र विचारो के स्व-विकास तक ही सीमित रह जायेगा।

सस्कृति के प्रति विभिन्न प्रत्ययवादी सकल्पनाओ की ये सभी धारणाए विभिन्न ज्ञानमीमासीय कारणो से उत्पन्न हुईं और अतत वे विचारो तथा चेतना के क्रियाकलाप की भूमिका को अत्यधिक बढाते-चढाने का परिणाम होती है। मार्क्स और एगेल्स ने 'जर्मन विचारधारा' मे लिखा कि भौतिक व आत्मिक श्रम के विभाजन का तात्पर्य यह है कि "चेतना स्वय को सचमुच ही इस भ्रम मे डाल सकती है कि वह मौजूदा व्यवहार की चेतना के बजाय कुछ और है, कि वह किसी वास्तविक वस्तु का प्रतिरूपण किये बिना ही किसी वस्तु को सचमुच प्रतिरूपित करती है, इस क्षण से चेतना स्वय को विश्व से मुक्त करने तथा विशुद्ध सिद्धात, धर्मशास्त्र दर्शन, नैतिकता, आदि की विरचना करने की स्थिति मे हो जाती है।" दूसरे शब्दो मे **विशिष्ट दशाओ के अंतर्गत आत्मिक संस्कृति की वास्तविक रूप से अस्तित्वमान सापेक्ष स्वाधीनता उसकी पूर्ण स्वाधीनता का भ्रम पैदा कर सकती है।**

चेतना के सक्रिय पक्ष की भूमिका की एकपक्षीय अत्युक्ति से तथा मनुष्य के व्यावहारिक क्रियाकलाप मे उसके अलगाव के कारण वास्तविक जगत् व उसमे मनुष्य की भूमिका तथा मनुष्य व उन्नतर (प्राकृतिक और सामाजिक) जगत् की अन्तर्निर्भरता की तस्वीर की झूठी व्याख्या, विरूपण तथा रहस्यीकरण होना अवश्यभावी है।

सस्कृति के दर्शन के इतिहास मे यह विरूपण दो प्रकार से प्रकट

की दशा, श्रम और पूंजी की अतर्निर्भरता, आदि को परखने के लिए विचारधारा का उपयोग करना . अपना विशेषाधिकार मानता हू")। इसके फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि सामाजिक विकास का "प्रारंभिक बिंदु" "धार्मिकता को माना जाना" चाहिए। कारसाविन ने जोर देकर कहा कि सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया की अंतर्वस्तु धार्मिकता ही होती है क्योकि इसने "संस्कृति की मुख्य समस्या" का समाधान पेश किया। उन्होने दावा किया कि "संस्कृति की समस्या" काल और विस्मृति को, विगत और वर्तमान को, मृत्यु को पराभूत करनेवाली है। और "भौतिकवादी समाजवाद" के विकास के कारण जो पश्चिमी संस्कृति मर रही है, कारसाविन के ख्याल से, उसकी मुक्ति का एकमात्र तरीका रूसी संस्कृति की मुख्य विषयवस्तु तथा बुनियाद की शक्ल मे उसमे अतर्निहित धार्मिकता की मुक्ति ही है। "आर्थोडाक्स या रूसी संस्कृति सार्विक भी है और जातीय भी। इस संस्कृति मे तकाजा है कि वह ८वीं सदी से सरक्षित क्षमताओ को उद्घाटित व प्रत्यक्ष करे, तथापि वे पश्चिमी संस्कृति मे प्रत्यक्षीकृत को अंगीकार करके (यूरोपीयकरण के अर्थ में) और अपने साधनो मे अंगीकृत की खामी को पूरा करके ही उद्घाटित की जानी चाहिए।"

कारसाविन ने अपनी बात को अत्यत ईमानदारी तथा अध्यवसाय के साथ, विस्तारपूर्वक स्पष्ट बस्पष्ट समझाया है। प्रत्ययवादी एकत्ववाद के दृष्टिकोण से उन्होने आत्मिक संस्कृति की अतर्वस्तु का निर्धारण किया ("धार्मिकता का विचार"), ऐतिहासिक मानव्य के विचार को उसके क्रमविकास मे निर्धारित किया ("८वीं सदी मे सरक्षित" आर्थोडाक्स विचारधारा की "क्षमताओं" को उद्घाटित करना) और इस विशिष्ट रूप मे राष्ट्रीय तथा अपने महत्व मे अंतर्राष्ट्रीय समस्या के समाधानार्थ "विदेशी संस्कृति की उपलब्धियों" की वस्तुनिष्ठता का प्रश्न भी उठाया ("पश्चिमी संस्कृति में प्रत्यक्षीकृत को अंगीकार करना और अपने साधनो से अंगीकृत की खामी को पूरा करना")।

धार्मिक दृष्टिकोण के समसामयिक अनुयायी भी अपने विचारों के विश्लेषण में इतने ही स्पष्टवादी हैं। वर्तमान समाजशास्त्री [illegible] इवानोव लिखते हैं 'संस्कृति सभी आत्मिक [illegible] के विकास [illegible]

पूर्णता का एक प्रयास है; यह आत्मा का उच्चतम पथ है, यह हम मे निहित ईश्वर की सेवा है।" धर्म को सास्कृतिक विकास का आधार बताते हुए डेमॉल माग करते है कि मनुष्य की सारी रचनात्मक क्षमताए धार्मिक नैतिकता की कसौटी के अनुरूप होनी चाहिए।

सस्कृति को "ईश्वरकृत" और "ईश्वरीय सूझ" सिद्ध करने का प्रयत्न करते तथा आत्मिक सस्कृति की सारी उपलब्धियो को धर्म से व्युत्पन्न मानते हुए आज के धर्मशास्त्री मनुष्यजाति के सास्कृतिक विकास मे होनेवाली सारी प्रक्रियाओ को प्राथमिक दैवी स्रोत के साथ जोडने का प्रयास करते है।

मिसाल के लिए, नवथोमसवादी विचारक यह दावा करते हैं कि सास्कृतिक प्रगति की सीढी पर कदम ब कदम ऊपर चढते हुए लोग सृष्टिकर्ता की बुद्धिमता तथा सर्वोच्च सत्व की इच्छा की समझ के निकटतर पहुचते हैं। कैथोलिक समाजवैज्ञानिक ई० विटर अपनी पुस्तक "ईसाई मत तथा सभ्यता' मे धार्मिक चिन्तन को सस्कृति के सपूर्ण इतिहास मे प्रमुख कारक के रूप मे पेश करते हैं। मध्ययुगीय मताग्रहो तथा थोमस एक्विनस के प्रेत को पुनर्जीवित करते हुए कैथोलिक दर्शन के ये चारण मानवजाति की सास्कृतिक प्रगति को नवथोमसवाद की सफलता पर आश्रित कर देते है। जेक्स मारिटेन ने लिखा था कि आज के लोगो को सस्कृति मे उनकी (यानी थोमस एक्विनस की – सं०) बुद्धिमता के आगमन की तैयारी करने का कार्य सौपा गया है।

इस प्रकार, प्रत्ययवाद आत्मिक सस्कृति की निरपेक्ष स्वाधीनता को और उसके अलावा इस ख्याल को अगीकार करने की स्थिति पर पहुचता है कि मनुष्य के वस्तुगत क्रियाकलाप के समस्त रूप मनुष्य के आत्मिक क्रियाकलाप से व्युत्पन्न होते है।

बुर्जुआ सभ्रान्तता के विभिन्न सिद्धात सस्कृति के प्रत्ययवादी दृष्टिकोण से सहमत है। सामाजिक भेदभाव को अतर्जात क्षमताओ से निगमित करते अथवा उसे किसी अलौकिक कारक से जोडते हुए सभ्रान्तता सिद्धात के अनुयायी सामाजिक असमानता को चिरस्थायी बनाने की कोशिश करते है। सारत मामले का मूलतत्व कुछ लोगो के शासन के लिए और कुछ के आज्ञा-पालन के लिए पैदा होने के, यानी "को-

मोसोमों मे विद्यमान अटल आनुवंशिकता" के कारणों के स्पष्टीकरण मे, या सभ्रांतता की किसी एक किस्म के साथ सबद्ध प्रत्ययवाद पूर्वनिर्धारण मे निहित नही है। वे एक दूसरे से कितने ही भिन्न क्यों न हो, कुल मिलाकर उनका सार एक ही होता है: सामाजिक भेदभाव को आनुवंशिकता या "ईश्वरेच्छा" से "स्पष्ट करते" समय बुर्जुआ समाजशास्त्री पूजीवाद के अंतर्गत आर्थिक और राजनीतिक असमानता की वास्तविक बुनियादो को जानबूझकर छुपा देते हैं।

इस सिलसिले मे, प्रसिद्ध अंग्रेज कवि थोमस एलियट रचित *Notes Towards the Definition of Culture* (संस्कृति की परिभाषा से संबंधित टिप्पणिया) एक बहुत अच्छा उदाहरण है।

उनके अनुसार, संस्कृति चिंतन, अनुभूति तथा व्यवहार का व्यक्तियो अथवा सामाजिक समूहो मे निहित एक मौलिक तरीका है। एलियट इस तथ्य को प्रासंगिक नही मानते हैं कि विभिन्न जनगण और सामाजिक समूह भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तरो पर होते हैं। यह भेद इतिहास द्वारा पूर्वनिर्धारित होता है, जो इसे अपरिहार्य बना देता है। एलियट आगे कहते हैं कि जहां तक ऐसा है, इस विश्वास के लिए सभी कारण विद्यमान हैं कि संस्कृति केवल सर्वोत्तम परिवारो के सर्वोत्तम प्रतिनिधियों मे ही निहित हो सकती है और, एलियट दावा करते हैं, वे ही ऐसे लोग हैं जो संस्कृति को भविष्य मे सुरक्षित रखेंगे और नयी पीढ़ियों में उसे विकसित करेंगे।

इस तरह, एलियट अंतर्विरोधी संरचनाओं मे विद्यमान सांस्कृतिक असमानता के विभिन्न रूपो को सिर्फ उचित ही नही ठहराते, बल्कि यह साबित करने की कोशिश भी करते हैं कि चूकि समाज के विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों का भेद अनंतकाल तक के लिए अपरिवर्तित रहनेवाला है, इसलिए वास्तविक श्रेष्ठ और सचेत संस्कृति "चयनित" परिवारो के सीमित समूहों का क्षेत्र बनी रहेगी। इसके साथ ही वे, स्वभावत, इस तथ्य से बेखबर रहते हैं कि ये विशेष "चयनित" परिवार अब तक अन्य लोगो की कीमत पर रहते आये हैं और, जैसा कि जाहिर हो जाता है, भविष्य मे भी अन्य की कीमत पर रहते रहेंगे।

तर्क की यह धारा किस निष्कर्ष पर पहुंचाती है? यद्यपि अपनी पुस्तक के प्रारंभ मे थोमस एलियट ने पाठकों को यह यकीन दिलाने

की कोशिश की है कि उन्हे किसी भी राजनीतिक दर्शन से कुछ लेना-देना नही है, तथापि पुस्तक के अत मे पाठक को इस बात पर कोई सदेह नही रह जाता है कि 'सस्कृति की परिभाषा से सबधित टिप्पणिया' का लेखक पूर्णत सुनिश्चित सामाजिक-दार्शनिक दृष्टिकोण पर चलता है· "चयनित" परिवारो, "चयनित" वर्गो, आदि के बारे मे उसके दावे सास्कृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया के बारे मे सभ्रात-वर्गीय सकल्पना की ऐसी एक किस्म के सिवा और कुछ नही है, जो सामयिक पूजीवादी समाज के शासक वर्गो के प्रभुत्व को अनतकाल तक बरकरार रखने की उनकी आकाक्षाओ को स्पष्टत दर्शाती है।

मार्क्स और एगेल्स ने ऐतिहासिक प्रत्ययवाद के स्थान पर ऐतिहासिक भौतिकवाद को प्रतिष्ठित किया। उन्होने इतिहास की सतह पर दिखायी पडनेवाले सयोगो के पीछे निहित कालोचितता तथा नियमितता को पहचाना। समाज के इतिहास के प्रति भाग्यवादी दृष्टिकोण को घोर अवैज्ञानिक मानकर अस्वीकार करते हुए उन्होने सकल्पवाद की पूर्ण अनुपयुक्तता को साबित किया। यह कहे बिना भी सुस्पष्ट है कि समाज लोगो से निर्मित है जिनमे चेतना होती है और जो विशिष्ट लक्ष्यो पर पहुचने का प्रयास करते है, परतु इसका यह मतलब नही है कि सामाजिक विकास नियमविहीन है।

अपने आत्मगत इरादो के बावजूद लोगो के लिए उत्पादन करना आवश्यक है, यानी, उन्हे प्रकृति के प्रति एक निश्चित रवैया अपनाना पडता है और उस पर विजय प्राप्त करने के लिए एक दूसरे के साथ मेलजोल करना पडता है। उत्पादन की समाप्ति का अर्थ होगा समाज के इतिहास की समाप्ति। इसका तात्पर्य यह है कि प्रकृति के विकास की ही तरह समाज का विकास भी वस्तुगत नियमो के अनुसार होता है और यह प्राकृतिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया है।

फलत, विभिन्न लोगो के, चाहे वे कैसी ही मशहूर शख्सियतें क्यो न हो, रचनात्मक कार्यों की छानबीन करते समय उनकी सचेतन व अचेतन आकाक्षाओ के पीछे निहित आर्थिक युक्तियुक्तता तथा नियमो की क्रिया को हमेशा अलग से पहचानना जरूरी है। ये नियम जनता के बडे समुदायो, वर्गों और राष्ट्रो को क्रियाशील बनाते है।

चूकि वर्गों की उत्पत्ति और विकास आर्थिक कारणो से निर्धारित

होता है। इसलिए राजनीतिक और वैचारिक वर्ग-संघर्ष भी अंततः आर्थिक उद्देश्यों से ही प्रेरित होता है। इसका मतलब यह है कि राजनीतिक और विधिक संगठन वर्गीय संगठन हैं, यानी ऐसे संगठन हैं जो विशिष्ट वर्गों के आर्थिक हितों की सेवा और रक्षा करते हैं। और इस तथ्य से इस स्थिति में कोई बदलाव नहीं होता कि देश की बागडोर संभालनेवाला वर्ग राजनीतिक और विधिक मूल्यों तथा संस्थाओं को "वर्गेतर" तथा "संपूर्ण समाज के हित में" कार्यरत घोषित करके उनके वास्तविक सार को छुपाकर विविध प्रकार की तिकड़में कर सकता है।

आर्थिक आधार के साथ तथा उत्पादन-संबंधों की प्रकृति के साथ यह रिश्ता विचारधारा में और भी ज्यादा भ्रांतिजनक है। परंतु आर्थिक आधार से अत्यंत दूर नजर आनेवाले सामाजिक चेतना के धर्म और दर्शन जैसे रूपों की छानबीन में भी हम इस तथ्य की अवहेलना नहीं कर सकते कि "जिन व्यक्तियों के दिमागों में यह चिंतन प्रक्रिया चलती है उनकी भौतिक जीवन दशाएं ही अंततः इस प्रक्रिया का निर्धारण करती हैं।"*

यह बहुत पहले सिद्ध किया जा चुका है कि मनुष्य को जंतु-जगत् से पृथक करनेवाली चीज श्रम है। परंतु श्रम मात्र आत्मिक क्रिया नहीं है। पहली और मुख्य शर्त या श्रम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयव औजारों का विनिर्माण और अनुप्रयोग था। मनुष्य को जानवरों से पृथक करनेवाली चीज यह है कि वह श्रम के औजारों का विनिर्माण कर सकता है और प्रकृति पर नियंत्रण पाने के लिए उनका उपयोग कर सकता है। कोई भी संकल्प और कोई भी लक्ष्य अपने भौतिक आधार के बिना अकल्पनीय है और वे श्रम के औजारों के विनिर्माण तथा इनके सुधार की प्रक्रिया में उपजे। इस सिलसिले में "संस्कृति" शब्द की व्युत्पत्ति एक सबल प्रमाण है। यह शब्द मनुष्य की श्रम क्रिया से व्युत्पन्न होता है।

चूंकि समाज के भौतिक और आत्मिक पक्ष उसकी विशिष्टता हैं,

---

* फ्रेडरिक एंगेल्स, 'लुडविग फायरबाख और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अंत', १८८८।

इसलिए यही दो पक्ष मानवीय क्रियाकलाप तथा सस्कृति मे भी सबधित है। भौतिक सस्कृति की धारणा मे प्रकृति को रूपातरित करने के ध्येय से मनुष्य के सारे श्रम-सबधी क्रियाकलाप (और इन क्रियाकलापो के परिणाम – भौतिक मूल्य) शामिल है, अत, मार्क्सवादी आत्मिक सास्कृतिक मूल्यों को मनुष्य के उन क्रियाकलाप के रूप मे देखते है जिनका लक्ष्य आत्मिक मूल्यो (कला, विज्ञान, नैतिकता, दर्शन, इत्यादि) की रचना करना होता है तथा जिनमे उन मूल्यो की रचना-विधि तथा उनके अनुप्रयोग और सप्रेषण के साधन भी शामिल होते हैं।

सपूर्ण सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया का सार, यानी उसकी "जीवित आत्मा" मनुष्य की रचनात्मकता ही है। हम आत्मिक सस्कृति जैसी जटिल और बहुपक्षीय घटना के विशिष्ट सामान्य नियमो को केवल तभी उद्घाटित कर सकते है जब हमारा विश्लेषण उन विशेष परिवर्तनो के अन्वेषण पर आधारित हो जो मनुष्य के रचनात्मक क्रियाकलाप की प्रक्रिया मे समाज के द्वारा आत्मिक मूल्यो के उत्पादन, वितरण, विनिमय तथा उपभोग के सबधो मे हो रहे हैं, बशर्ते कि हम इस तथ्य को हमेशा ध्यान मे रखे कि आत्मिक उत्पादन स्वय भौतिक उत्पादन पर आधारित होता है, यद्यपि उसके कुछ अपने ही विशिष्ट सामान्य नियम होते हैं। आत्मिक क्रिया के सारे सबधो, मानव-समाज मे उसके सगठन की पद्धतियो और रूपो का निर्धारण अतत समाज के आर्थिक स्तर से होता है।

मार्क्स ने लिखा, "भौतिक जीवन की उत्पादन-पद्धति सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन की सामान्य प्रक्रिया को दशानुकूलित करती है।"* इसका मतलब यह है कि लोग अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए जिस पद्धति का उपयोग करते है वह किसी एक प्रकार की सामाजिक या राजकीय प्रणाली तथा उसकी सहवर्ती सस्कृति के उद्भव व विकास के भौतिक आधार का काम करती है।

इन स्थितियो की बुनियादो पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सस्थापको ने सस्कृति के प्रत्ययवादी सिद्धातो के खिलाफ सघर्ष चलाया। ये प्रत्ययवादी सिद्धात आत्मिक सस्कृति को उसके भौतिक आधार से, उत्पादक शक्तियो

* कार्ल मार्क्स, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास', १८५९।

के स्तर व प्रकृति से, उत्पादन-संबंधों के ठोस ऐतिहासिक रूपों से, वर्ग-संघर्ष से और जन-समुदायों की ऐतिहासिक उपलब्धियों से विलग कर देते थे। आत्मिक संस्कृति के भौतिक आधार से उसका यह प्रत्ययवादी पृथक्कीकरण आत्मिक संस्कृति की निरपेक्ष स्वाधीनता के दावे तथा प्रत्ययों के स्वत:स्फूर्त क्रमविकास के सहवर्ती सिद्धांतों के लिए अध्ययन-विधिक आधार प्रदान करता है।

प्राकृतिक विज्ञान व तकनीकी विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान, सभी में आत्मिक संस्कृति के विकास में सातत्य के प्रति प्रत्ययवादी दृष्टिकोण की विभिन्न अभिव्यक्तियां देखी जा सकती हैं। यह ध्यान देने लायक बात है कि आत्मिक संस्कृति के प्रत्ययवादी बोध तथा उसके विकास में सातत्य के निरपेक्षीकरण के बीच संबंध के दो प्रकार होते हैं।

एक तरफ, यह निरपेक्षीकरण संस्कृति के ऐतिहासिक विकास के प्रति प्रत्ययवादी दृष्टिकोण का परिणाम हो सकता है: आत्मिक संस्कृति के विकास की संपूर्ण प्रक्रिया के "विशुद्ध" स्व-विकास के रूप में विश्लेषण के फलस्वरूप इस प्रक्रिया की ऐतिहासिक सातत्य जैसी ठोस अभिव्यक्ति को प्रत्ययवादी दृष्टि से देखा जाने लगता है।

दूसरी तरफ, आत्मिक संस्कृति के किसी अंश के, मसलन, सामाजिक चेतना के किसी एक रूप के, विकास में सातत्य के निरपेक्षीकरण के फलस्वरूप आत्मिक संस्कृति के संपूर्ण विकास को प्रत्ययवादी दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में सातत्य का निरपेक्षीकरण ही आत्मिक संस्कृति की प्रत्ययवादी संकल्पना के लिए एक ज्ञानमीमांसीय कारण बन सकता है।

संस्कृति के इतिहास की प्रत्ययवादी संकल्पना की आलोचना करने के बाद मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों ने यह सिद्ध किया कि इसके विकास में सातत्य, जैसा कि विचारों के अनुक्रमण सिद्धांत के अनुयायियों का दावा था, "स्व-विकास" का परिणाम नहीं होता है। कुछ विचारों को अन्य से निर्गमित करने और केवल "आत्मिक संस्कृति के विकास के अन्तर्जात नियमों" को ध्यान में रखने तथा [illegible] के [illegible] पर उनकी पूर्ण निर्भरता को न देख पाने पर [illegible] [illegible] के [illegible] रूप को समझना असंभव होगा। आत्मिक संस्कृति

का स्तर लगभग पूर्णतः "सस्कृति के भौतिक आधार"* से निर्धारित होता है, यानी अंततः भौतिक मूल्यो की उत्पादन-पद्धति से। इसी वजह से ऐतिहासिक सातत्य को समझने की कुजी न तो खुद विचारो मे पायी जा सकती है और न मानव चिंतन मे—वह समाज के भौतिक जीवन मे निहित होती है।

आत्मिक सस्कृति विशिष्ट वस्तुगत नियमो के अनुसार, मानव सकल्प, आकाक्षाओ या अनिच्छा से स्वतत्र रूप मे विकसित होती है। चूकि " सचेत तत्व सभ्यता के विकास मे ऐसी अधीनस्थ भूमिका अदा करता है", इसलिए इसकी छानबीन, "जिसका विषय सभ्यता है, चेतना के किसी भी रूप अथवा किसी भी परिणाम को अपना आधार नही बना सकती है। कहने का तात्पर्य है विचार नही, बल्कि बाहरी, वस्तुगत घटना ही इसके प्रारंभिक स्थल का काम दे सकती है।"**

मानव-समाज के विकासार्थ ऐसा बाहरी और वस्तुगत कारक, सर्वोपरि रूप से, प्रकृति है। प्रकृति को प्रभावित करते, उस पर विजय प्राप्त करते और उससे लाभ उठाते हुए मनुष्य अपने विकास की हर अवस्था मे पहले से ही निर्मित श्रम के औजारो को इस्तेमाल करने की, पूर्व-सचित अनुभव पर भरोसा करने, आदि की जरूरत को यानी उन उत्पादक शक्तियो के सरक्षण और विकास की जरूरत को महसूस करता है जिन्हे उसने बीते हुए ऐतिहासिक युगो से विरासत मे पाया है।

परतु मानवजाति की भौतिक सस्कृति मे होनेवाली प्रक्रियाओ का निर्धारण करनेवाली उत्पादक शक्तियो मे परिवर्तन आत्मिक सस्कृति से सबधित समस्त प्रक्रियाओ के साथ प्रत्यक्षतः सबद्ध नही हो सकते हैं (हमे केवल प्राकृतिक व तकनीकी विज्ञानो को अलग करना होगा, जिनका विकास इस या उस तरीके से हमेशा समाज की उत्पादक शक्तियो के विकास से जुडा होता है)।

अत, आत्मिक सस्कृति के इतिहास के, जिसमे उसके क्रमविकास का सातत्य भी शामिल है, बाहरी और वस्तुगत आधार के रूप मे

---

* व्ला० इ० लेनिन, '"जनता के मित्र" क्या है और वे सामाजिक जनवादियो के विरुद्ध कैसे लडते है?', १८९४।

** वही।

उत्पादन-संबंध सामने आते हैं, जो समाज में व्यक्तियों के बीच अन्य संबंधों, जिनमें आत्मिक संबंध भी शामिल हैं, के समन्वय के निर्धारण का काम करते हैं।

परंतु वर्ग-समाज में उत्पादन-संबंधों की प्रकृति "सरल व समरस नहीं, बल्कि दोहरी होती है।"* एक ओर तो, ये उत्पादन-संबंध उस ढांचे का निर्माण करते हैं जिसके अंतर्गत भौतिक मूल्यों का उत्पादन होता है, यानी वे संबंध जो मजदूरों के, स्वयं उत्पादकों के बीच बनते हैं। दूसरी ओर, उत्पादन के ये संबंध निजी संपत्ति के, उस संपत्ति के उत्पाद होते हैं जो शोषक वर्गों के स्वामित्व में होती है।

यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि सारी मानवजाति के लिए, यानी, ऐतिहासिक विकास की सारी अवस्थाओं में, जिसमें कम्युनिज्म भी शामिल है, निर्णायक भूमिका ऐसे उत्पादन-संबंधों द्वारा अदा की जाती है, जिनके बगैर न तो उत्पादन हो सकता है न स्वयं समाज, अर्थात् वे संबंध जो उत्पादन-प्रक्रिया के प्रत्यक्ष सहभागियों के रूप में मजदूरों के बीच होते हैं। यही वह स्थल है जहां भौतिक और आत्मिक संस्कृति के भी विकास में सातत्य के वस्तुगत ठोस आधार को ढूंढा जाना चाहिए। एक सामान्य समाजवैज्ञानिक घटना के रूप में ऐतिहासिक सातत्य उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया के इसी पक्ष के साथ संबंधित है।

इससे इस तथ्य का (यह भी वस्तुगत है) संकेत मिलता है कि ऐतिहासिक विकास की कुछ विशेष अवस्थाओं में, अर्थात् अंतर्विरोधी संरचनाओं में, आत्मिक संस्कृति के क्षेत्र में ऐतिहासिक सातत्य उत्पादन की प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः सम्मिलित वर्गों एवं मालिक वर्गों के बीच उत्पादन-संबंधों पर आधारित है और, इसलिए, वर्ग-संघर्ष पर भी आधारित है। इस तथ्य का तार्किक परिणाम, खास तौर से, ऐतिहासिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर दो संस्कृतियों की अनिवार्य रचना (जिनमें से एक प्रमुख होती है) और एक सामाजिक-आर्थिक संरचना से दूसरी में संक्रमण के दौरान इन संस्कृतियों के संबंधित पक्षों के बीच ऐतिहासिक सातत्य भी होना है।

---

* कार्ल मार्क्स, 'दर्शन की दरिद्रता', १८४७।

इसके अलावा, आत्मिक संस्कृति के क्षेत्र मे ऐतिहासिक सातत्य विचाराधीन उत्पादन-पद्धति मे अतर्निहित वस्तुगत नियमितताओ के प्रभाव से ही नही, बल्कि विकास के उन वस्तुगत नियमो से भी सबद्ध होता है जो सामाजिक-ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित स्वय मनुष्य की सज्ञानात्मक क्रिया के लाक्षणिक नियम होते हैं।

विचारो के स्व-विकास को विभिन्न ऐतिहासिक अवस्थाओ मे अलग-अलग धारणाओ के, मसलन बुराई और भलाई, न्याय व अन्याय, सगत व विसगत, प्रगति व प्रतिक्रिया के, उद्भव और प्रभुत्व का स्पष्टीकरण देने के लिए इस्तेमाल मे नही लाया जा सकता है। इसी प्रकार, कुछ राजनीतिक तथा कानूनी कसौटियो से अन्य के प्रतिस्थापन, अथवा किसी एक ऐतिहासिक युग मे उनके उत्थान तथा दूसरे मे पतन के कारणो को स्पष्ट करना भी असभव है। इन सब बातो से आत्मिक संस्कृति के क्षेत्र मे होनेवाली प्रक्रियाओ की प्रत्ययवादी सकल्पना की मुख्य कमजोरी साफ जाहिर हो जाती है। प्रत्ययवाद न तो आत्मिक मूल्यो की उत्पत्ति का कोई स्पष्टीकरण देता है न मानवजाति के ऐतिहासिक विकास मे उनकी भूमिका का।

समाज के भौतिक जीवन मे होनेवाली प्रक्रियाओ पर आत्मिक संस्कृति की निर्भरता का विश्लेषण करते हुए तथा आत्मिक संस्कृति के भौतिकवादी व प्रत्ययवादी दृष्टिकोणो को एक दूसरे के सन्निकट रखते हुए मार्क्सवाद के सस्थापको ने **संस्कृति के प्रति** विभिन्न **अधि-भूतवादी, थोथे समाजवैज्ञानिक दृष्टिकोणों** की तीक्ष्ण आलोचना की है। उन्होने साबित किया कि संस्कृति एक ऐसी ऐतिहासिक घटना है जिसका **क्रमविकास** समाज के क्रमविकास से अभिन्न है, उन्होने आत्मिक और भौतिक संस्कृतियो की **द्वद्वात्मक अतर्क्रिया** को, संस्कृति के समस्त **अवयवो के अंतर्संबंध तथा पारस्परिक प्रभाव** को उद्घाटित किया, उन्होने स्वय आत्मिक संस्कृति मे अतर्निहित नियमो का गहन विश्लेषण किया। दूसरे शब्दो मे, वे ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने उस घटना का सागोपाग विश्लेषण किया जिसे आज हम संस्कृति की सापेक्ष स्वाधीनता कहते हैं और जो ऐतिहासिक सातत्य के रूप मे प्रकट होती है।

चूकि मार्क्स और एगेल्स ने, जिन्होंने इतिहास की भौतिकवादी सकल्पना को निरूपित किया था, १९वी सदी के मध्य तक समाज-

विज्ञान पर हावी संस्कृति से संबंधित विभिन्न प्रत्ययवादी संकल्पनाओं के साथ विवाद में कई वर्ष बिताये, इसलिए स्वाभाविक था कि उन्होंने इस तथ्य (जिसे उन्होंने खुद खोजा था) को सिद्ध करने पर ध्यान केंद्रित किया कि समाज के विकास में आर्थिक कारण निर्णायक होते हैं और कि इतिहास का क्रम एक प्राकृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया से मिलता-जुलता होता है। समाज के विकास में भौतिक कारकों की भूमिका को ऐसी स्पष्टता से पेश करना, प्रत्ययवाद के विपरीत इतिहास के भौतिकवादी दृष्टिकोण का ऐसा सोद्देश्य विस्तारण और मामले के आर्थिक पक्ष पर ऐसा जोर देना इतिहास के नियमों का पूर्ण अनुपालन है। जो० ब्लाख को लिखित एक पत्र में एंगेल्स ने अपने और मार्क्स के बारे में लिखा, "हमें अपने विरोधियों के, जो इससे इनकार करते थे, सम्मुख मुख्य उसूल पर जोर देना पड़ा था और हमें इस अन्तर्क्रिया में सम्मिलित अन्य कारकों को उनका उचित स्थान देने के लिए समय, स्थान अथवा अवसर हमेशा नहीं मिल पाया।"*

परन्तु १९वीं सदी के अंतिम दशक में तथाकथित "आर्थिक भौतिकवाद" के प्रकट होने पर एंगेल्स को (बाद में लेनिन को) ऐतिहासिक भौतिकवाद के उस थोथे विरूपण के साथ विवाद करना पड़ा जिसने आत्मिक संस्कृति के विकास में स्वाधीनता की हर अभिव्यक्ति से चाहे वह कितनी ही सापेक्ष क्यों न हो, इनकार करते हुए संपूर्ण ऐतिहासिक विकासक्रम को महज एक आर्थिक प्रक्रिया में परिणत कर दिया और इस प्रकार उसके सक्रिय सामाजिक कार्य को निराकृत कर दिया।

"भौतिकवाद को अत्यधिक थोथा बनाने"** का एक [illegible]

---

* [illegible] २१ (२२) सितम्बर १८९० [illegible]

** [illegible]

उदाहरण लेनिन की रचनाओ मे चर्चित व० गुल्यातिकोव की कृति "पश्चिम यूरोपीय दर्शन मे पूजीवाद का औचित्य समर्थन" है।

आत्मिक सस्कृति की सपूर्ण अतर्वस्तु को (सबसे पहले मनुष्य-जाति के दार्शनिक विकास को) सीधे-सीधे विभिन्न वर्गों, के आर्थिक हितो मे निगमित करते हुए गुल्यातिकोव इस निष्कर्ष पर पहुचे कि "इसके (दर्शन के – ले०) द्वारा प्रयुक्त सारे दार्शनिक पद व सूत्र निरपवाद रूप से . सामाजिक वर्गों, समूहो, हिस्सो तथा उनके आपसी सबधो को दर्शाने का काम करते हैं। इस या उस बुर्जुआ विचारक की दार्शनिक प्रणाली का अध्ययन करते समय हम समाज की वर्ग-सरचना की ऐसी तस्वीर का अध्ययन करते है जो पारपरिक प्रतीको मे चित्रित तथा किसी एक निश्चित बुर्जुआ समूह की सामाजिक आस्था को व्यक्त करती है।"*

दर्शन के प्रति इस प्रकार का रवैया ऐसा सकेत देता है कि केवल दर्शन ही नही, बल्कि सामाजिक चेतना के सारे रूप और सारी आत्मिक सस्कृति भी ऐसे पारपरिक पदो और प्रवर्गों का महज जोड है जो एक विशिष्ट, अर्थात् शासक वर्गों की सामाजिक व्यवस्था को न्यूनाधिक सफलता के साथ छुपाने का काम देते है, अत, एक अध्येता का लक्ष्य इन "पारपरिक प्रतीको" को तदनुरूप आर्थिक समतुल्यो के साथ समायोजित करने तक ही सीमित होता है।

मूल रूप से यह रवैया सिद्धाततः सामाजिक चेतना के विविध रूपो के अस्तित्व की वैधता पर सदेह करता है। चूकि दर्शनशास्त्र को भी प्रत्यक्षत वर्ग-हित मे परिणत किया जा सकता है, इसलिए उन अन्य वैचारिक रूपो के मामले मे तो ऐसा और भी अधिक होगा जो आर्थिक आधार से अपेक्षाकृत कम दूरी पर होते हैं। ऐसा लगता है कि सामाजिक चेतना के सारे रूप वास्तव में एक दूसरे से उतने ही भिन्न हैं जितने कि सबधित शासक वर्ग द्वारा अपने वर्ग-हित को छुपाने के लिए इस्तेमाल किये जानेवाले सभव तरीके। शासक वर्गों द्वारा अपने हितो को छुपाने के लिए प्रयुक्त सारी विधियो का पर्दाफाश करके हम सामाजिक चेतना के सारे रूपो को एक सर्वनिष्ठ रूप मे परिणत कर सकते हैं तथा उनकी

---

* वही।

सब कुछ है, अंतिम लक्ष्य कुछ नहीं है।"

१९वीं सदी के अंतिम दशक मे लिखे गये अपने पत्रों मे एंगेल्स ने "आर्थिक भौतिकवाद" की बखिया उधेड़ दी और विचारधारा की सापेक्ष स्वाधीनता तथा सामाजिक विकास मे विचारों की भूमिका का गहन विश्लेषण पेश किया।* परंतु जब २०वीं सदी के प्रारंभ मे पूंजीवाद के साम्राज्यवाद मे प्रविष्ट होने से सर्वहारा क्रांति की समस्या प्रत्यक्ष व्यावहारिक महत्व के सवाल की शक्ल मे सामने आयी, तो "आर्थिक भौतिकवाद" के विरुद्ध संघर्ष विशेष महत्व का हो गया।

इतिहास की भौतिकवादी संकल्पना के अनुसार वास्तविक जीवन का उत्पादन और पुनरुत्पादन ऐतिहासिक प्रक्रिया को केवल अंततः ही निर्धारित करता है, और इस निर्भरता के दायरे में आत्मिक संस्कृति का विकास अपने ही विशेष अंतर्निहित नियमों के अनुरूप जारी रहता है। यद्यपि आत्मिक संस्कृति द्वितीयक और निगमित होती है, तथापि वह एक तरह की स्वाधीनता के साथ विकसित होती है।

आत्मिक संस्कृति की यह सापेक्ष स्वाधीनता सर्वोपरि रूप से इस तथ्य मे व्यक्त होती है कि आत्मिक संस्कृति की संविरचना करनेवाले सामाजिक चेतना के समस्त रूपों की स्वाधीनता, मुख्यतः वास्तविकता के उनके प्रतिबिंबन में होती है, क्योंकि वे, सबसे पहले वस्तुगत जगत् के विभिन्न पक्षों को प्रतिबिंबित करते हैं और, दूसरे, इसलिए कि वे यथार्थता को भिन्न-भिन्न ढंग से प्रतिबिंबित करते हैं, प्रत्येक रूप अपने ही ढंग से और अपनी विशिष्ट प्रकृति के अनुसार यथार्थता को प्रतिबिंबित करता है। इसमें परावर्तन की वस्तुगत प्रकृति होती है और उसे सामाजिक विकास के आर्थिक नियमों से सीधे-सीधे निगमित नहीं किया जा सकता है। जो सामान्य समाजवैज्ञानिक नियम सामाजिक चेतना के समस्त रूपों के विकास निर्धारित करते हैं वे प्रत्येक रूप मे निहित विशिष्ट आतरिक नियमों को अपवर्जित नहीं करते हैं। इसके विपरीत वे इन्हीं विशेषताओं के जरिये तथा उन्हीं के अनुसार कार्य करते हैं।

---

* देखें 'जो० ब्लाख को एंगेल्स', २१(-२२) सितंबर, १८९०, 'कों० श्मिट को एंगेल्स', २७ अक्तूबर, १८९०, 'डब्ल्यू० बोर्गियस को एंगेल्स', २५ जनवरी, १८९४ 'फ्रांज मेहरिंग को एंगेल्स', १४ जुलाई, १८९३।

आगे, आत्मिक संस्कृति की सापेक्ष स्वाधीनता इस तथ्य में प्रकट होती है कि उसके कुछ अवयव, जो पहले किन्हीं विशेष आर्थिक दशाओं से उत्पन्न हुए थे, परिवर्तित आर्थिक आधार से बहुत पीछे हो सकते है। इस स्थिति मे वे पुराने विचार व पुरानी सस्थाएं हैं जो नये समाज के विकास को रोकते हैं और सामाजिक प्रगति मे बाधा डालते है। मसलन, ऐसी भूमिका पूजीवाद (तथा पूजीवाद-पूर्व की सरचनाओ) के अवशेषो ने समाजवादी समाज मे अदा की थी, जिसमे उसके विकास की प्रारंभिक अवस्थाओ मे उस सामाजिक व्यवस्था के "जन्म-जात चिह्न" बने रहते हैं, जिसके गर्भ से वह उत्पन्न हुआ था।

इसके साथ ही सामाजिक चेतना के स्व-विकास के कारण आत्मिक सस्कृति के कुछ तत्वो का स्वाधीन अस्तित्व बरकरार ही नही रहता, बल्कि वे जनगण के व्यावहारिक क्रियाकलाप की अपेक्षा भी कर सकते है। जनगण को विकास की अस्पष्ट प्रवृत्तियो को उद्घाटित करते तथा दृश्य घटना के बाह्यावरण को भेदकर मामले के अतर मे पैठते हुए वैज्ञानिक पूर्वानुमान लगाने की शक्ति प्राप्त है। इसमे ज़रा भी संदेह नहीं है कि ये विचार ऐतिहासिक प्रगति की गति को तेज़ करते हैं। इस सिलसिले मे आधुनिक मानवजाति के इतिहास के लिए क्रांतिकारी मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण है।

आत्मिक सस्कृति की सापेक्ष स्वाधीनता इस तथ्य मे भी अभिव्यक्त होती है कि उसके समस्त घटको की अतर्वस्तु एक विशेष युग की आर्थिक प्रणाली द्वारा पूर्णतः और प्रत्यक्षतः निर्धारित नहीं होती। आत्मिक सस्कृति के सारे ही घटक आर्थिक आधार से समान दूरी पर नही होते है, फलत इसका उन पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पडता है। आत्मिक सस्कृति के राजनीतिक और कानूनी घटक समाज की आर्थिक प्रणाली को प्रत्यक्षतः प्रतिबिंबित करते है, जबकि, मिसाल के लिए, दर्शन और कला आर्थिक विकास के दौरान होनेवाले परिवर्तनो को सिर्फ अप्रत्यक्ष ढग से प्रतिबिंबित करते हैं।

आत्मिक सस्कृति के विकास के लिए उसके अवयवों – सामाजिक . . और दर्शन, कला व नैतिकता, राजनीति व कानूनी विचार- . . आदि – के बीच अतर्क्रिया अत्यावश्यक है। यह ज्ञात है कि सामा- . . चेतना के समस्त रूपों के बीच घनिष्ठ अतर्क्रिया होती रहती है।

जो सबधित सामाजिक सस्थाओ तथा शिक्षा व लालन-पालन की सपूर्ण प्रक्रिया के सगठन मे होनेवाले परिवर्तनो मे अनिवार्य रूप से उद्घाटित होते हैं। पर इसके बावजूद, इसका अर्थ है कि आत्मिक सस्कृति समाज के भौतिक जीवन के विकास से सिर्फ निर्धारित ही नही होती, बल्कि इस विकास पर एक अत्यत सक्रिय विलोम प्रभाव भी डालती है।

अत मे, आत्मिक सस्कृति की सापेक्ष स्वाधीनता उन जटिल सबधो मे भी उद्घाटित होती है जो **विभिन्न जातियों की संस्कृतियों के पारस्परिक प्रभाव** की प्रक्रिया मे प्रकट होते हैं। जातीय और विशिष्ट लक्षणो के एक प्रतिबिंब के रूप मे प्रत्येक जाति की सस्कृति सिर्फ वर्तमान काल मे ही नही, बल्कि विगत मे भी अपने साथ लाखो बधनो से जुडी अन्य जातियो की सस्कृतियो के प्रभावाधीन भी होती है, अर्थात् हर प्रकार से विचार करने के बाद, यह मानवीय सार के एक सघनीकृत रूप में सामने आती है। इसकी वजह से प्रत्येक जातीय सस्कृति मे कोई ऐसी चीज होती है जो अन्य सभी सस्कृतियो मे सर्वनिष्ठ होती है, यानी उसकी सामान्य मानवीय अतर्वस्तु।

इस प्रकार, सारी मानवजाति के लिए सर्वनिष्ठ, प्रत्येक जाति की आत्मिक सस्कृति के विकास के नियम "जातीय मास-मज्जा" यानी एक विशिष्ट जातीय रूप ग्रहण कर लेते हैं, जबकि अपने ऐतिहासिक विकास मे समस्त जातीय सस्कृतियो का जटिल पाश उसके सार का निर्माण करता है जिसे हम विश्व सस्कृति का इतिहास कहते हैं। विभिन्न जातियो द्वारा रचित सस्कृतियो की अतर्क्रिया से उनकी समृद्धि बढती है तथा विकास तीव्रतर हो जाता है, जो सास्कृतिक मूल्यो का विनिमय करनेवाली जातियो के भौतिक उत्पादन के सबधित पक्षो को एक बार फिर प्रभावित करते है।

आत्मिक सस्कृति के विकास मे सापेक्ष स्वाधीनता को ऐतिहासिक प्रक्रिया का वस्तुगत नियम मानने मे हमे इस तथ्य को नजरअदाज नही करना चाहिए कि आत्मिक सस्कृति के क्षेत्र मे आत्मगत कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

निस्सदेह, अपनी रचनात्मकता मे प्रत्येक वैज्ञानिक, लेखक, कलाकार या सगीतकार को जीवन द्वारा प्रस्तुत प्रश्नो का उत्तर देना होता है, और इसके बावजूद वह उन प्रश्नो का **कैसे** और **कब** उत्तर देता है,

यह बात उसकी प्रतिभा तथा वर्तमान को अन्य लोगों से जल्दी अ अच्छी तरह से समझने तथा भविष्य का पूर्वानुमान लगाने की उस योग्यता से निर्धारित होता है। एक विचारक, सार्वजनिक कार्यकर्ता, कलाकार, वैज्ञानिक, आदि की व्यष्टिकता आत्मिक संस्कृति के विकास में होनेवाली प्रक्रियाओं पर असर डालती है, क्योंकि एक ही तर की खोजे भिन्न-भिन्न समयों और तरीकों से की जा सकती हैं। यदि हमने आत्मिक संस्कृति के विकास के इस महत्वपूर्ण लक्षण को छोड़ दिया होता तो इतिहास की प्रकृति रहस्यमय बन जाती।

ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से देखने पर आत्मिक संस्कृति की सापेक्ष स्वाधीनता की समस्या ही सातत्य की समस्या है। अपने युग के आर्थिक विकास द्वारा मुख्य रूप से दशानुकूलित होने की वजह से आत्मिक संस्कृति मनुष्यजाति की आत्मिक संस्कृति के उपलब्ध स्तर, गुजरे हुए युगो की बौद्धिक तथा अन्य सामग्री पर पूर्णतः *निर्भर* होती है। "हम अपने इतिहास का निर्माण स्वयं करते हैं," एंगेल्स ने लिखा, "लेकिन . सुनिश्चित पूर्वागो तथा शर्तों पर। इनमे आर्थिक *शर्तें अतत निर्णायक होती है। लेकिन राजनीतिक शर्तें, आदि तथा मानव मस्तिष्क मे छानेवाली परपराए भी अपनी भूमिका अदा करती है*, यद्यपि यह निर्णायक नही होती।" *

यही कारण है कि किसी एक ऐतिहासिक युग की आत्मिक संस्कृति मे हमेशा ऐसी अतर्वस्तु विद्यमान होती है जिसके बारे मे यह नही कहा जा सकता है कि उनका प्रत्यक्ष कारण आर्थिक रहा होगा। समाज के आर्थिक और आत्मिक विकास की गैर-समरूपता इस विशेष कारण पर आश्रित है : जहा तक समाज का आत्मिक जीवन, जो कुल मिलाकर सामान्य आर्थिक प्रगति के अधीन होता है, कई गैर-आर्थिक कारकों के अतिरिक्त परिणामो के असर मे होता है, वहा तक धर्मशास्त्र, विचारधारा तथा अर्थशास्त्र के विकास मे अनुकूल निर्भरता नही हो सकती है।

ये अध्ययन-विधिक आरभिक स्थल "*सास्कृतिक विरासत*" की की वैज्ञानिक परिभाषा के निरूपण के लिए आधार प्रदान

* 'प्रो० ब्लाख को एंगेल्स', २१ (-२२) सितबर, १८९०।

करते है। यह सकल्पना सस्कृति के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सि
का एक अत्यत महत्वपूर्ण प्रवर्ग है।

३. "सांस्कृतिक विरासत" की धारणा

"सास्कृतिक विरासत" की धारणा, जो सस्कृति के सिद्धा
सबधित कई अन्य प्रवर्गों (सास्कृतिक मूल्यो, परपराओ, नवे
तथा अन्य) से अभिन्न है, का अपना ही आयाम, अतर्वस्तु और
है।

"विरासत" की सकल्पना सस्कृति के क्षेत्र मे "सातत्य" के
से, कम से कम, दो मामलो मे भिन्न है।

१ सातत्य एक सामान्य दार्शनिक प्रवर्ग है, अत, इसका नि
रूप से सभी विज्ञानो, सामाजिक तथा प्राकृतिक, के लिए अ
विधिक महत्व है। परतु "सास्कृतिक विरासत" का प्रवर्ग केवल
के क्षेत्र मे और, मुख्यत:, आत्मिक सस्कृति के क्षेत्र मे होनेवाली
माओ तक ही सीमित है।

२ सातत्य की धारणा घटनाओ के वस्तुगत सबध को व्यक्त
है, जबकि विरासत की धारणा सातत्य की नियमितता के सै
प्रत्यक्षीकरण और पूर्ववर्ती पीढ़ियो से विरासत मे हासिल सा
मूल्यो के आलोचनात्मक मूल्यन तथा उनके रचनात्मक उप
रूप मे सचेत कार्यवाही, दोनो ही का सकेत देती है।

मूलत, सातत्य और विरासत एक दूसरे से पूर्णत मेल नहीं
जिसका पहला और सर्वोपरि कारण आत्मिक सस्कृति की स
प्रकृति है।*

जैसा कि हम पहले गौर कर चुके है, आत्मिक सस्कृ
की विभिन्न पीढ़ियो के आत्मिक क्रियाकलाप के ऐतिहासिक
का योग अथवा इन या उन सास्कृतिक मूल्यो का जोड़ मात्र न
है। सस्कृति की असली अन्तर्वस्तु स्वयं रचनात्मकता होती है,
प्रक्रिया मे इन आत्मिक मूल्यो की रचना होती है।

परतु, आत्मिक उत्पादन की विशिष्टता उसमें अतर्निहित सबधो की विविधता है, यही इस बात का स्पष्टीकरण है कि हर नयी सरचना की संस्कृति मे आत्मिक उत्पादन, वितरण, विनिमय तथा उपभोग के उन सबधो के सपूर्ण समुच्चय के साथ आवश्यक सातत्य क्यो होता है जो उससे पहले उत्पन्न हुए थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है आत्मिक सस्कृति का विकास पहले के बने हुए आत्मिक उत्पादन-सबधो पर भी निर्भर होता है तथा सास्कृतिक मूल्यो के एक निश्चित परिमाण के रूप में विद्यमान पूर्ववर्ती आत्मिक क्रियाकलाप के पहले ही उपलब्ध परिणामो पर भी। इसके अलावा, आत्मिक उत्पादन के सबध सापेक्षतः स्वाधीन भी होते हैं, जिसका विशेष अर्थ यह है कि आत्मिक सबधो की पुरानी सरचना के अवशेष तथा विभिन्न सास्कृतिक मूल्यो के रूप मे विद्यमान तथा विशिष्ट ऐतिहासिक दशाओ द्वारा उत्पन्न संस्कृति के अलग-अलग अवयव परिवर्तित आर्थिक आधार या राजनीतिक अधि-रचना से या तो बहुत पीछे रह जाते हैं या बिल्कुल बेमेल हो जाते हैं।

फलत, एक ऐतिहासिक युग से दूसरे मे सक्रमण के दौरान समा के आत्मिक जीवन मे नयी पीढ़ियो के लिए लाभदायक आत्मिक उत्पा तथा आत्मिक मूल्य ही नहीं होंगे, बल्कि इस क्षेत्र के सबध भी हैं जो कुछ समय तक सरक्षित रहेंगे (जैसे राष्ट्र और व्यक्ति के बी सबध, मानसिक व शारीरिक श्रम शिक्षा व लालन-पालन की प्रणा तथा विभिन्न जनसचार माध्यमों के क्रियाकलाप आदि) और उन के साथ पुराने वैचारिक रूपों के अवशेष भी विद्यमान होंगे जो न व्यवस्था के अनुरूप काम करने मे ही विफल नहीं रहेंगे बल्कि उन नये युग की आवश्यकताओ के प्रति वैरभाव की प्रवृत्ति भी होगी

ऐसी स्थिति मे विरासत के स्थान पर पुरानी व्यवस्था के उ अवशेषों के साथ सघर्ष प्रतिस्थापित हो जाता है जो ऐतिहासिक मानव के अवरुद्ध अभिव्यक्तियों के रूप मे सामने आते है। दुर्भाग्य विरास मे पाने का मतलब विरासत मे प्राप्त सारे मूल्यो की स्वीकृति ही नहीं है। सास्कृतिक विरासत को प्रत्यक्ष सबधित सामाजिक समूहों (वर्ग जातियो, आदि) द्वारा, सपूर्ण पीढ़ियो द्वारा और इसके भी आगे

विरासत को प्राप्त करने की प्रक्रिया मे कुछ मूल्यो को पूर्णत सर
व प्रयुक्त किया जाता है, कुछ अन्य के मूल्यो को अशत बदला ज
है, उन पर पुनर्विचार किया जाता है या पूर्णत. त्याग दिया जाता

सातत्य और विरासत की विसगतियो के कारणो को आत्मिक मू
की ज्ञानमीमांसीय प्रकृति मे भी पाया जा सकता है।

प्रत्येक ऐतिहासिक युग मे सचित ज्ञान के परिमाण तथा लाक्षणि
को परपरागत रूप से तीन असमान भागो मे बाटा जा सकता

(क) निरपेक्षत प्राधिकारिक,
(ख) सापेक्षत प्राधिकारिक,
(ग) निरपेक्षत असत्य।

मानव सज्ञान के प्रगतिशील विकास की प्रक्रिया मे निरपेक्ष
धीरे-धीरे इस आशय मे घनीभूत हो रहा है कि प्रत्येक पीढी
विरासत मे प्राप्त विज्ञान, विश्व दृष्टि, नैतिकता, आदि के
तिक मूल्यो मे कुछ ऐसी चीज हमेशा होती है जिसका निरपेक्ष
चिरस्थायी महत्व होता है। सस्कृति अपने विकास मे किन्ह
परिवर्तनों से होकर क्यो न गुजरे, मनुष्यजाति प्राप्त परिणाम
परित्याग कभी नही करती, क्योकि उनके उपयोग के बिना
और कोई भी प्रगति अकल्पनीय होगी।

इसके साथ ही, सज्ञान की प्रक्रिया की हर नयी मजिल
हासिक दृष्टि से हमेशा अस्थायी सिद्ध होती है और मनुष्यजाति
सचित ज्ञान हमेशा सापेक्ष सत्य सिद्ध होता है। लेनिन ने लिखा,
त्मक भौतिकवाद भूतद्रव्य की सरचना तथा उसके गुणो के प्रत्येक
निक सिद्धात की समीपवर्ती तथा सापेक्ष प्रकृति पर", "म
प्रगतिमान विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान की प्रकृति की सारी
की अस्थायी, सापेक्ष समीपवर्ती प्रकृति पर ज़ोर देता है।" *

जब तक ऐसा है, तब तक सस्कृति के विकास मे सातत्य के
मे हमे मानवीय क्रियाकलापो के पहले और बाद मे हासिल
के बीच चिरस्थायी और टिकाऊ सपर्क से ही नही, बल्कि प्रद

---

* ब्ला० इ० लेनिन, 'भौतिकवाद और आनुभविक मीमासा,' फरवरी

और प्रदत्त निरपेक्ष सत्य के बीच तथा विभिन्न सापेक्ष सत्यो व उनके अवयवो के बीच सघर्ष से भी सामना पड़ेगा। ये सघर्ष निरपेक्ष सत्य के महत्त्व को प्राप्त वैज्ञानिक ज्ञान और उन अवैज्ञानिक पूर्वकल्पनाओं के बीच अत्यत विरोधाभासी ढग से प्रकट होते है जिन्हे सस्कृति के प्रगतिशील विकास के दौरान बिल्कुल विगत मानकर पूरी तरह से त्याग दिया गया है।

इस प्रकार, सापेक्ष सत्य के विभिन्न अवयवो के बीच सपर्कों की प्रकृति दोहरी हो सकती है।

विरासत को पाने की प्रक्रिया मे सकारात्मक सपर्कों का अर्थ स्पष्ट है। इन सपर्कों का समुच्चय सपूर्ण विश्व सस्कृति की सरचना के दायरे की, आज के सपूर्ण दार्शनिक और वैज्ञानिक ज्ञान के आधार की रचना करता होता है और यह कला तथा आत्मिक उत्पादन के अन्य क्षेत्रो के सपूर्ण विकास मे अतर्निहित होता है।

भौतिकवादी प्राचीन काल मे ही इस निष्कर्ष पर पहुच गये थे कि विश्व की रचना ईश्वर या मनुष्य ने नही की है, कि यह अनत-काल से अस्तित्व मे है और लगातार परिवर्तित हो रहा है। अनेक शताब्दिया बीती और आधुनिक भौतिकवाद प्राचीन भौतिकवादियो के मुकाबले कही अधिक बडे पैमाने पर नयी से नयी वैज्ञानिक उपलब्धियो, यानी भूतद्रव्य तथा उसके गुणो एव उसकी अभिन्न विशेषता के रूप मे गति, आदि के ज्ञान का इस्तेमाल करने लगा है और साथ ही इस पूर्वकल्पना को अभी भी सतत रूप से सही मानता है कि शाश्वत रूप से परिवर्तनशील भौतिक जगत् किसी दैवी क्रिया से नही बना तथा इसका उच्छेदन नही किया जा सकता है।

ऐसा सातत्य कला के क्षेत्र मे भी पाया जा सकता है, जहां यह अपने विकास की यथार्थवादी परपराओ से सबद्ध होता है। मसलन, रूसी साहित्य के लिए पुश्किन की रचनात्मकता के महत्व के बारे में गोन्चारोव के मूल्याकन को याद करे। उन्होंने लिखा कि पुश्किन ठीक उसी से तरह से रूसी कला के जनक और पूर्वज हैं जैसे कि लोमोनोसोव रूस मे विज्ञान के पुरखे हैं। पुश्किन में वे बीज व आधार अतर्निहित हैं जो रूस के हर कलाकार मे अपने आप को अभिव्यक्त करनेवाले सभी कल्पनीय कला-रूपो मे प्रस्फुटित हुए हैं।

यह कहना गलत होगा कि संस्कृति के विकास में सातत्य केवल र्ववर्ती पीढ़ियों द्वारा सर्जित आत्मिक मूल्यों की सकारात्मक अंतर्वस्तु ने आलोचनात्मक उपयोग के रूप में सुलभ उपलब्धियों में सुदक्षता ाप्त करने से ही साकार होता है।

विचारधारा की सापेक्ष स्वाधीनता पर मार्क्सवाद के संस्थापकों द्वारा प्रस्तुत विचारों को विकसित करते हुए ग० प्लेखानोव ने उचित ही ज़ोर दिया है कि किसी भी प्रदत्त युग के "'मस्तिष्कों की अवस्था' को उससे पहले के युग के मस्तिष्कों की अवस्था के संदर्भ में ही समझा जा सकता है," उन्होंने आगे लिखा, "हर विशिष्ट युग की विचार-धाराएं हमेशा – **चाहे सकारात्मक ढंग से हो या नकारात्मक** – पहले के युग की विचारधाराओं के साथ घनिष्ठता से जुड़ी होती हैं"* (ज़ोर लेखक का है)।

प्लेखानोव की यह टिप्पणी उसूल का मामला है। आत्मिक संस्कृति के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए हमें पूर्ववर्ती युगों के, जिन्होंने विश्व संस्कृति के विकास को प्रोत्साहित किया, सकारात्मक संपर्कों व उपलब्धियों को भी ध्यान रखना होता है तथा नकारात्मक संपर्कों को भी। यह दावा करने के लिए सभी आधार हैं कि इनमें से पश्चोक्त, अपने महत्व के कारण, अकसर सकारात्मक संपर्कों के बजाय विश्व संस्कृति की प्रगति के लिए अधिक उत्पादक साबित होते हैं और सिर्फ़ इसलिए भी कि सज्ञान के कंटकमय पथ पर अनेकानेक ग़लतियों और भ्रमों को दूर किये बग़ैर सकारात्मक ज्ञान का महज़ संचय भी असंभव होता है।

विश्व संस्कृति के इतिहास को ऐसे अनेक तथ्यों की जानकारी है जब ज्ञान के शताब्दियों तक स्वयंसिद्ध माने जानेवाले किन्हीं अंशों को विश्व संस्कृति के विकास के आगे के चरणों में सहसा, पूर्णतः नकार दिया गया। टोलेमी के पृथ्वी-केंद्रिक प्रणाली के साथ ऐसा ही हुआ था।

क्या हम यह दावा कर सकते हैं कि ज्ञान के विकास में जिन प्राक्कल्पनाओं का परित्याग कर दिया गया, उन्होंने आत्मिक संस्कृति के

---

* ग० प्लेखानोव, 'इतिहास के अद्वैतवादी दृष्टिकोण का विकास', १८६५।

विकास में कोई भूमिका अदा नहीं की? जाहिर है, ऐसा दावा करना गलत होगा।

उदाहरण के लिए, उष्माजनक के सिद्धात पर गौर कीजिये। जैसा कि ज्ञात है, कालांतर में विज्ञान ने इसे ठुकरा दिया था। परंतु यह सिद्धात चाहे कितना ही गलत क्यों न रहा हो, इसने सकारात्मक ज्ञान के विकास मे निश्चित भूमिका अदा की। उष्माजनक के सिद्धात को सत्यापित करने के लिए जो अनेकानेक कैलोरीमीट्रिक प्रयोग किये गये (जिनकी वजह से वैज्ञानिकों ने अंततः इस सिद्धात का परित्याग कर दिया) उनसे सादी कार्नो उस निष्कर्ष पर पहुंचे थे जो ताप-गतिकी के प्रथम नियम की आधारशिला बन गया था। दूसरी तरफ, उष्माजनक के सिद्धात के विरुद्ध जानेवाले प्रायोगिक परिणामों से भौतिकीविदों को ऐसे विचार सूझे जिनसे अतत ऊर्जा की अविनाशिता तथा रूपातरण के नियम की खोज हुई।

हम कोपेर्निकस की सौर-केंद्रिक प्रणाली तथा टोलेमी की पृथ्वी-केंद्रिक प्रणाली के बीच, सामयिक रसायन व मध्ययुगीन कीमियागरी के बीच और सामाजिक विज्ञानों में इतिहास की प्रत्ययवादी तथा भौतिकवादी संकल्पनाओं के बीच भी एक निश्चित सातत्य की बात कह सकते हैं।

इसीलिए विश्व संस्कृति के विकास में ऐतिहासिक सामान्य की समस्या के अध्ययन में और इसके सामान्य नियमों तथा ठोस अभिव्यक्तियों के विश्लेषण में हम सामान्य के विभिन्न सकारात्मक पक्षों जैसे कि विकास की प्रक्रिया में क्या चीज संरक्षित होती है, पूर्ववर्ती पीढ़ियों द्वारा संचित मूल्यों का आकलन कैसे किया जाये, समाज के प्रगतिशील विकास के लिए इस विरासत का क्या महत्व है, आदि, तक ही सीमित नहीं रहते हैं।

मानव मस्तिष्क द्वारा भौतिक जगत् के प्रतिबिंबन की प्रक्रिया में हमेशा यथार्थता से पलायन करने की, उसका विकसित चित्रण करने की ज्ञानमीमांसीय संभावना और, फलतः ऐसे निष्कर्षों पर पहुंचने की संभावना होती है, जो आगे चल कर पूर्णतः अवैज्ञानिक या निराधार अर्थ में विरूपित ही सिद्ध हो सकते हैं। जैसा कि हम जानते हैं, वर्ग समाज में जगत् का विकृत चित्र पेश करने की इस ज्ञानमीमांसीय

· · भावना यथार्थता को कुछ वर्ग-हितो के माफिक बनाने
से कुछ सामाजिक कारण और इस सभावना को मूर्त बनानेवाली
सामाजिक शक्तिया भी हमेशा मौजूद होती हैं।

सका अर्थ यह है कि भौतिक जगत् मे निषेध के, जो पूर्ण और
नही हो सकता है और जिसमे अवश्यभावी रूप से सातत्य
अश सम्मिलित होता है, विपरीत चेतना के विकास की किसी
कल्पना अथवा सामान्यीकरण मे किसी सकारात्मक घटक को
की कोई जरूरत नही है, क्योकि प्राक्कल्पना पूर्णत असगत तथा ज्ञान
सारा क्षेत्र अवैज्ञानिक, मिथ्या-वैज्ञानिक सिद्ध हो सकता है।
या इसका यह तात्पर्य है कि निरपेक्ष सत्य के "अश" से रहित
प्राक्कल्पनाओ तथा "नियमो" की मानव चेतना के विकास
भूमिका नही है?

क ऐसा नही है, क्योकि पहले तो विभिन्न विचारो की छान-
ने तथा, अतत, व्यवहार मे उनकी विसगति का पता लगाने
ताओ को नये तथ्य प्राप्त हो जाते हैं, जिन्हे आगे की अन्य
खोजो के आधार के रूप मे इस्तेमाल किया जा सकता है।
बात केवल उष्माजनक के सिद्धात पर ही लागू नही होती।
के लिए, अनेकानेक खोजे उन आविष्कारको ने की है, जिन्होने
चालक" के पूर्णत अवैज्ञानिक सिद्धात को व्यावहारिक
के लिए व्यर्थ प्रयत्न किये थे। दूसरे, अपनी सारी तर्कहीनता
द एक सिद्धात के महज उद्भव का तथ्य ही वैज्ञानिक ज्ञान
म को नयी प्रेरणा दे सकता है। माल्थस के "नियम" से
ले प्रतिगामी निष्कर्षों को झूठा सिद्ध करने के लिए मार्क्स
की उत्पादक शक्ति की छानबीन की और जैसा कि एगेल्स
है, उन्होने माल्थस के सिद्धात से "सामाजिक रूपातरण के
र्वाधिक सशक्त आर्थिक तर्कों" को निगमित किया।*

और भी ढेरो उदाहरण दिये जा सकते है। मानवजाति की
सस्कृति का सपूर्ण इतिहास भौतिकवाद बनाम प्रत्ययवाद
का, विज्ञान बनाम धर्म के सघर्ष का इतिहास है, जिसने

---

* एगेल्स, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास', १८४४।

भौतिकवाद को प्रत्ययवाद की आलोचना के लिए और विज्ञान की
विश्व के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण की आलोचना के लिए नये तर्क प्रदान
किये।

इससे हम सातत्य के एक विशेष रूप की चर्चा पर पहुंच जाते
है, जो पिछली पीढ़ियों द्वारा सचित मात्र सकारात्मक उपलब्धियो का आलो-
चनात्मक परिष्करण व उपयोग ही नहीं होता है, बल्कि आत्मिक सस्कृति
के विकास मे पहले के प्राप्त परिणामो का पूर्ण व निरपेक्ष निषेध
भी होता है। हम आत्मिक सस्कृति के विकास में पुराने और नये
के बीच ऐसे सपर्क की बात उस स्थिति मे कह सकते हैं, जब नया
पुराने का पूर्ण परित्याग कर देता है और उसकी अंतर्वस्तु से कुछ भी
ग्रहण नहीं करता है। ऐसा सातत्य सामाजिक चेतना के किसी भी
रूप के विकास मे, ऐतिहासिक युग से निरपेक्षत, अपरिहार्य होता
है, परतु इसके बावजूद यह क्रातिकारी वर्गों की राजनीतिक विचारधारा
की प्रगति मे सबसे ज्यादा स्पष्ट होता है, जो सामाजिक प्रगति की
समस्याओ को हल करने मे उनकी वस्तुगत भूमिका के पूर्णत अनुरूप
होती है।

सातत्य के सकारात्मक रूप (पिछली पीढियो द्वारा संचित सका-
रात्मक परिणामो का सरक्षण और विकास) के विपरीत सातत्य के
ऐसे रूप को उस सीमा तक निषेधात्मक कहा जा सकता है, जिस सीमा
तक यह अनिवार्यत. ऐसे नये परिणाम हासिल करता है जो पहले के
निष्कर्षों को चुनौती देगे और उनके विरोधी होंगे। स्पष्ट है कि यह
निषेधात्मक सातत्य "विरासत" की धारणा से कोसो दूर है।

इससे एक अन्य संकल्पना के विश्लेषण की जरूरत पैदा हो जाती
है जो "सास्कृतिक विरासत" के आधार मे निहित होती है और
वह है "परपरा" की सकल्पना।

इस मौलिक सकल्पना के अध्ययन में जो चीज सबसे पहले नजर
आती है वह यह है कि परपरा को मूलत एक पीढ़ी से दूसरी को
हस्तातरित होनेवाले और विशिष्ट सामाजिक सबधो द्वारा उत्पन्न
जनगण के विचारो तथा सवेदनो को साकार रूप देनेवाले क्रियाकलाप
की प्रणाली के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है।

परन्तु परपरा के विश्लेषण की प्रक्रिया मे उसके ऐसे लक्षणों पर

जैसे (१) विशिष्ट सामाजिक सबधो के क्रियान्वियन के लिए अपरिहार्य विचारो एव सवेदनो को आवेष्टित करनेवाली एक समष्टि के कार्य-कलाप की अनिवार्यता, (२) इन क्रियाकलाप को भौतिक रूप से घनीभूत बनाने की जरूरत और (३) भौतिक रूप से घनीभूत इन क्रियाकलाप का अन्य आयुवर्गो अथवा विशिष्ट सामाजिक सबधो को कायम करनेवाली अन्य पीढियो की परिसपदा मे रूपातरण पर जोर देकर परपरा के केवल इन्ही पक्षो तक सीमित रहना उचित नही होगा, क्योकि वे "परपरा" और "रीतिरिवाज" की धारणाओ के बीच सुस्पष्ट भेद करने मे सहायक नही होते।

रीतिरिवाज परपराओ की एक अभिव्यक्ति है, परतु यह मानना गलत होगा कि सभी परपराए महज रीतिरिवाज है। "परपरा" की धारणा "रीतिरिवाज" की धारणा से कही अधिक व्यापक अर्थ रखती है, परपरा की व्याख्या सामाजिक जीवन के समस्त क्षेत्रो मे मानवीय व्यवहार के इतिहास द्वारा प्रतिष्ठित समुच्चय के रूप मे की जाती है, जबकि रीतिरिवाज पद हमारे दैनिक सबधो के क्षेत्र से परे किसी वस्तु से यदाकदा ही सबधित होते है। एक राष्ट्र की क्रातिकारी और देशभक्ति की परपराओ पर विचार करते समय इस पद का उपयोग बिल्कुल गलत होगा।

इसके बावजूद अपने पहले स्थूल आकलन मे हमने परपराओ की जो परिभाषा दी, वह भी अनुपयुक्त है, क्योकि उसमे कई बहुत महत्व-पूर्ण लक्षणो को नजरअदाज कर दिया गया है, खास तौर से सापेक्ष स्वाधीनता और गत्यात्मकता के साथ मिलेजुले स्थायित्व को एक निश्चित परिमाण मे उपार्जित करने तथा उसे प्रतिधारित करने की परपरा की क्षमता को।

इससे भी अधिक, चूकि परपराओ की यह परिभाषा सार्विकता का आभास देती है (और किसी भी प्रवर्ग की दार्शनिक परिभाषा हर हालत मे सार्विक होती है), इसलिए हम यह विश्वास करते है कि इसमे सभी प्रकार की, वैचारिक सहित, परपराए शामिल होनी चाहिए। परतु वैचारिक परपराए काल और देश मे विचारो के एक सुस्थापित, पुनरावर्ती, आनुक्रमिक और स्थायी सपर्क को उद्घाटित करती है (सहअस्तित्वमान प्रणालियो की अतर्निर्भरता)। परपरा के

प्रवर्ग की जो परिभाषा इस अनिवार्य पक्ष को छोड़ देती है उसे दार्शनिक परिभाषा नही माना जा सकता है।

एक तरफ, ऐतिहासिक प्रगति के वस्तुगत रूप में परपराओ का एक वस्तुगत आधार होता है और वे सामाजिक-आर्थिक कारको के एक पूरे समुच्चय का परिणाम होती हैं, पर दूसरी तरफ, उनमे विकास का अपना ही विशिष्ट "आतरिक तर्क" होता है, क्योंकि अतीत की वास्तविकता के अनेक पक्ष (और इसका ताल्लुक मुख्यत वैचारिक विरासत के प्रति दृष्टिकोण से है) वर्तमान के लिए विशेष भावनात्मक महत्व के होते हैं।

यदि उपरोक्त कथन का विस्तार करने में हम इतना जोड़ दे कि परपराओ की धारणा को महज विचारो के साहचर्य तक सकीर्ण नही किया जा सकता है, कि वे व्यक्तियो तथा सामाजिक समूहो व वर्गों के व्यावहारिक क्रियाकलाप मे वास्तविकीकृत होती हैं, कि वे एक ऐसा "वैचारिक सांद्र" होती हैं जो सामाजिक व्यवहार की प्रक्रिया मे लगातार समृद्ध होता है और जो अतीत पर आधारित होने के बावजूद सार्थक रूप से भविष्य की ओर उन्मुख होता है, तो हमारे पास यह निष्कर्ष निकालने का हर कारण हो जाता है कि परपराए सामाजिक मानसिकता पर प्रभाव डाल रही हैं और उनके महत्व को कम करके आकना एक अक्षम्य गलती होगी।

यही कारण है कि हम उन अध्येताओ से कतई सहमत नही हो सकते जो परपराओ को महज सामाजिक विकास के रूढ़िगत तत्व या एक ऐसी वस्तु समझते हैं जो नवीकरण के सर्वथा विपरीत होती है। जब तक विकास का हर रूप अतीत से वर्तमान को और फिर भविष्य को विकसित होता है, तब तक समाज अतीत के सचित अनुभव से युक्त परपराओ को उन नयी परपराओ के साथ हमेशा मिलाता रहेगा जो आज के अनुभव की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हैं – उस अनुभव की अभिव्यक्ति है जो भावी पीढ़ियो के लिए ज्ञान के स्रोत का काम करेगा।

तदनुसार, इस पर गौर किया जाना चाहिए कि परपराओं के विकास मे दो धाराए देखी जा सकती हैं १ पुरानी परपराओं का , होना (प्रारभ मे एक विशिष्ट परपरा को बनाये रखने

का काम करनेवाले आधार का गायब होना, फिर उसके रूप तथा अंतर्वस्तु का अतिक्रमण हो जाना), २ नयी परपराओ का जन्म, यह ऐसी प्रक्रिया होती है जिसे कई अवस्थाओ से गुज़रना पडता है क्योंकि नयी परपराओ की अंतर्वस्तु को अभिव्यक्ति का समुचित रूप तुरत नही मिल पाता है।

इस कारण से नयी परपराओ के उद्भव को हमेशा पुरानी परपराओ की समाप्ति नही माना जा सकता है, यदि पुरानी और नयी दोनो ही परपराए श्रमजीवी जनसमुदायो के प्रमुख हितो को अभिव्यक्त करती हैं, तो पुराने और नये के बीच सबध इतने मज़बूत हो सकते हैं कि कुछ परपराए जो दूर ऐतिहासिक अतीत मे बनी थी कभी खत्म नही होंगी, बल्कि नये सामाजिक सत्व द्वारा उनकी अंतर्वस्तु, मूल्य तथा रूप अधिक समृद्ध बनते हैं।

इसलिए सास्कृतिक विकास की प्रक्रिया जटिल, अतर्विरोधी और द्वद्वात्मक है। एक ओर, यह प्रक्रिया परपराओ के, यानी पहले की उपलब्धियो के साथ सपर्क के, सातत्य के, बिना अकल्पनीय है, जबकि दूसरी ओर, जैसा कि लेनिन ने कहा है, "विरासत की रक्षा करने का मतलब अपने आप को विरासत तक ही सीमित रखना नही है।"*

हर नये युग मे मानवजाति विरासत मे प्राप्त सास्कृतिक मूल्यों को समाज के सम्मुख विद्यमान नये अवसरो तथा नये लक्ष्यो की रोशनी मे तथा तकनीकी प्रगति एव सामाजिक प्रगति दोनो ही क्षेत्रो में इन लक्ष्यो को पाने के लिए प्रतिबद्ध विशिष्ट सामाजिक शक्तियो की आवश्यकताओ के अनुरूप, आलोचनात्मक ढग से आकती है, सपूरित करती है और विकसित व समृद्ध बनाती है।

अत, सास्कृतिक विरासत को अपरिवर्तनीय नही माना जा सकता है किसी एक विशिष्ट क्षण पर, किसी भी ऐतिहासिक युग की सस्कृति मे हमेशा पहले की समाविष्ट तथा नवरचित सांस्कृतिक विरासत दोनों ही शामिल होती हैं। कल की सास्कृतिक विरासत के आधार पर जो सास्कृतिक रिश्ते तथा सास्कृतिक मूल्य आज उत्पन्न हो रहे हैं वे आगामी कल की उस सास्कृतिक विरासत के अवयवो की रचना

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'विरासत जिसे हम अस्वीकार करते हैं', १८९७।

करेंगे जिसे नयी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जायेगा।

उपरोक्त का समाहार करते हुए हम "सांस्कृतिक विरासत" की अपनी परिभाषा पेश करते हैं। शब्द के व्यापक अर्थ में यह पूर्ववर्ती ऐतिहासिक युगों के बंधनों, संबंधों और भौतिक व आत्मिक उपादान के परिणामों का एक समुच्चय है और शब्द के संकीर्ण अर्थ में यह मनुष्यजाति द्वारा आलोचनात्मक विधि से नियंत्रित, विकसित और युग विशेष के ठोस ऐतिहासिक उद्देश्यों के संदर्भ में एवं सामाजिक प्रगति की वस्तुगत कसौटियों के अनुरूप प्रयुक्त, पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित आत्मिक मूल्यों का एक समुच्चय है।

४. अंतर्विरोधी समाज में सांस्कृतिक विरासत की नियति। सामान्य नियम और प्रवृत्तियां

पूंजीवादी समाज में उत्पादन-संबंधों की अंतर्विरोधी प्रकृति ऐसी दशाओं के अंतर्गत सांस्कृतिक विकास के लिए लाक्षणिक मुख्य अंतर्विरोधों का निर्धारण करती है विभिन्न वर्गों और सामाजिक समूहों के बीच सांस्कृतिक मूल्यों के वितरण में घोर अन्याय के कारण संस्कृति से उसके रचयिता का विलगाव। कई शताब्दियों तक सांस्कृतिक विकास का आर्थिक आधार "अन्यसंक्रामित श्रम के, प्रकृति तथा स्वयं के प्रति श्रमिक के बाह्य-संबंध के उत्पाद, नतीजे के, आवश्यक फल के रूप में निजी संपत्ति बना रहा।"*

जहां तक मनुष्य की उत्पादक, "मूल" (मार्क्स) शक्तियों का अल्प-विकास अन्यसंक्रामित श्रम तथा निजी संपत्ति की उत्पत्ति का प्रधान कारण है, वहां तक अंतर्विरोधी सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में उत्पादन की प्रगति अत्यंत अंतर्विरोधी लक्षणों को उद्घाटित करती है। इस तरह यह सामाजिक समृद्धि की बढ़ती की ओर ले जाती है, मानो सर्वांगीण [illegible] के सुधार के लिए आवश्यक दशाओं का निर्माण करती है। दूसरी तरफ, परस्पर अंतर्विरोधी श्रम विभाजन की दशाओं के अंतर्गत अन्यसंक्रामित रूप में विकासमान सामाजिक उत्पादन अपनी

---

* कार्ल मार्क्स, १८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पांडुलिपियां।

के श्रम को रचनात्मक उपलब्धि के सुख और सच्ची रचनात्मकता के आनद से वचित करके उसे बौद्धिक और नैतिक दोनो ही दृष्टियो से पगु बना देता है। "यह ऐसी क्रिया है जैसे कष्ट भोगना, ऐसी शक्ति है जैसी दुर्बलता, ऐसा प्रजनन जैसे पुसत्वहरण, श्रमिक की अपनी शारीरिक व मानसिक ऊर्जा, उसका व्यक्तिगत जीवन ऐसा है जैसे एक कार्रवाई जो उसी के खिलाफ है, उससे स्वतत्र है और उसकी अपनी नही है।"*

दूसरे शब्दो मे श्रम का अन्यसक्रामण मनुष्य के स्वत्व का अन्यसक्रामण जैसा प्रतीत होता है। अन्यसक्रामण भौतिक व आत्मिक उत्पादन दोनो ही मे मनुष्य के क्रियाकलाप को विशिष्ट लक्षण प्रदान कर देता है। परतु इसका यह मतलब नही है कि अतर्विरोधी सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ की दशाओ मे लोग सस्कृति की रचना करना बद कर देते हैं, क्योकि यहा भी, चाहे अप्रत्यक्ष व निर्वैयक्तीकृत रूपो मे ही क्यो न हो, वे सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के विषयी बने रहते है।

इसके अलावा, मानवजाति के सास्कृतिक विकास का एक सामान्य नियम यह है कि जब सामाजिक इतिहास मे जनसमुदायो की भूमिका बढती है, तो सास्कृतिक क्रियाकलाप के हर क्षेत्र मे उनकी प्रत्यक्ष साझेदारी भी बढती जाती है। जहा सामाजिक विकास के क्रम पर जनसमुदायो के प्रभाव की शक्ति व मात्रा मानवजाति द्वारा तय ऐतिहासिक पथ के सीधे अनुपात मे होती है, वहा हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि एक सामाजिक-आर्थिक सरचना से दूसरे मे सक्रमण के फलस्वरूप सास्कृतिक विरासत के महत्व मे तदनुरूप वृद्धि होती है।

परतु इसके साथ ही जनगण, सस्कृति के विषयी, ऐसे व्यक्तियो के अतर्विरोधी समाज के अग होते हैं जहा वे सस्कृति से परे और सास्कृतिक क्रियाकलाप मे प्रत्यक्ष भाग लेने से, नियमत, बाधित होते है। इन दशाओ मे व्यक्ति सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया का विषयी नही बन सकता है। इसी कारण से जनगण के, श्रमजीवी जनसमुदायो के सामूहिक रचनात्मक प्रयासो के उत्पाद (यानी, वह जो प्रत्येक नयी पीढी के लिए सास्कृतिक विरासत है) को प्रत्येक व्यक्ति

* वही।

करेंगे जिसे नयी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जायेगा।

उपरोक्त का समाहार करते हुए हम "सांस्कृतिक विरासत" की अपनी परिभाषा पेश करते हैं। शब्द के व्यापक अर्थ में यह पूर्ववर्ती ऐतिहासिक युगों के बंधनों, संबंधों और भौतिक व आत्मिक उत्पादन के परिणामों का एक समुच्चय है और शब्द के संकीर्ण अर्थ में यह मनुष्यजाति द्वारा आलोचनात्मक विधि से नियंत्रित, विकसित और युग विशेष के ठोस ऐतिहासिक उद्देश्यों के संदर्भ में एवं सामाजिक प्रगति की वस्तुगत कसौटियों के अनुरूप प्रयुक्त, पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित आत्मिक मूल्यों का एक समुच्चय है।

४. अंतर्विरोधी समाज में सांस्कृतिक विरासत की नियति। सामान्य नियम और प्रवृत्तियां

पूंजीवादी समाज में उत्पादन-संबंधों की अंतर्विरोधी प्रकृति ऐसी दशाओं के अंतर्गत सांस्कृतिक विकास के लिए लाक्षणिक मुख्य अंतर्विरोधों का निर्धारण करती है: विभिन्न वर्गों और सामाजिक समूहों के बीच सांस्कृतिक मूल्यों के वितरण में घोर अन्याय के कारण संस्कृति से उसके रचयिता का विलगाव। कई शताब्दियों तक सांस्कृतिक विकास का आर्थिक आधार "अन्यसंक्रामित श्रम के, प्रकृति तथा स्वयं के प्रति श्रमिक के बाह्य-संबंध के उत्पाद, नतीजे के, आवश्यक फल के रूप में निजी संपत्ति बना रहा।"*

जहां तक मनुष्य की उत्पादक, "मूल" (मार्क्स) शक्तियों का अव-विकास अन्यसंक्रामित श्रम तथा निजी संपत्ति की उत्पत्ति का प्रधान कारण है, वहां तक अंतर्विरोधी सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में उत्पादन की प्रगति अत्यंत अंतर्विरोधी लक्षणों को उद्घाटित करती [illegible] तरफ, यह सामाजिक समृद्धि की बढ़ती की ओर से अनी [illegible] व्यक्तित्व के सुधार के लिए आवश्यक दशाओं का निर्माण [illegible] तरफ, परस्पर अंतर्विरोधी श्रम-विभाजन की दशाओं [illegible] रूप में विकासमान सामाजिक उत्पादन आत्मी

* [illegible] की अर्थशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पांडुलिपियां'।

को रचनात्मक उपलब्धि के सुख और सच्ची रचनात्मकता के
से वंचित करके उसे बौद्धिक और नैतिक दोनो ही दृष्टियो से
ा देता है। "यह ऐसी क्रिया है जैसे कष्ट भोगना, ऐसी शक्ति
ी दुर्बलता, ऐसा प्रजनन जैसे पुंसत्वहरण, श्रमिक की अपनी
क व मानसिक ऊर्जा, उसका व्यक्तिगत जीवन ऐसा है जैसे
र्रवाई जो उसी के खिलाफ है, उससे स्वतन्त्र है और उसकी
नही है।"*

रे शब्दो मे श्रम का अन्यसंक्रामण मनुष्य के स्वत्व का अन्य-
जैसा प्रतीत होता है। अन्यसंक्रामण भौतिक व आत्मिक उत्पादन
ी मे मनुष्य के क्रियाकलाप को विशिष्ट लक्षण प्रदान कर देता
ु इसका यह मतलब नही है कि अतर्विरोधी सामाजिक-आर्थिक
ओ की दशाओ मे लोग संस्कृति की रचना करना बंद कर देते
कि यहा भी, चाहे अप्रत्यक्ष व निर्वैयक्तीकृत रूपो मे ही क्यो
वे सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के विषयी बने रहते हैं।
के अलावा, मानवजाति के सांस्कृतिक विकास का एक सामान्य
ह है कि जब सामाजिक इतिहास मे जनसमुदायो की भूमिका
, तो सांस्कृतिक क्रियाकलाप के हर क्षेत्र मे उनकी प्रत्यक्ष साझे-
बढ़ती जाती है। जहा सामाजिक विकास के क्रम पर जन-
के प्रभाव की शक्ति व मात्रा मानवजाति द्वारा तय ऐतिहासिक
सीधे अनुपात मे होती है, वहा हम यह निष्कर्ष निकाल सकते
क सामाजिक-आर्थिक सरचना से दूसरे मे संक्रमण के फलस्वरूप
विरासत के महत्व मे तदनुरूप वृद्धि होती है।

ु इसके साथ ही जनगण, संस्कृति के विषयी, ऐसे व्यक्तियो
रोधी समाज के अग होते हैं जहा वे संस्कृति से परे और
क्रियाकलाप मे प्रत्यक्ष भाग लेने से, नियमत, बाधित होते
दशाओ मे व्यक्ति सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया का विषयी
सकता है। इसी कारण से जनगण के, श्रमजीवी जनसमु-
सामूहिक रचनात्मक प्रयासो के उत्पाद (यानी, वह जो
यी पीढ़ी के लिए सांस्कृतिक विरासत है) को प्रत्येक व्यक्ति

करेंगे जिसे नयी पीढ़ी को हस्तातरित किया जायेगा।

उपरोक्त का समाहार करते हुए हम "सांस्कृतिक विरासत" की अपनी परिभाषा पेश करते हैं। शब्द के व्यापक अर्थ में यह पूर्ववर्ती ऐतिहासिक युगों के बंधनों, संबंधों और भौतिक व आत्मिक उत्पादन के परिणामों का एक समुच्चय है और शब्द के संकीर्ण अर्थ में यह मनुष्यजाति द्वारा आलोचनात्मक विधि से नियंत्रित, विकसित और युग विशेष के ठोस ऐतिहासिक उद्देश्यों के संदर्भ में एवं सामाजिक प्रगति की वस्तुगत कसौटियों के अनुरूप प्रयुक्त, पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित आत्मिक मूल्यों का एक समुच्चय है।

४. अंतर्विरोधी समाज में सांस्कृतिक विरासत की नियति। सामान्य नियम और प्रवृत्तियां

पूजीवादी समाज मे उत्पादन-सबधो की अतर्विरोधी प्रकृति ऐसी दशाओ के अतर्गत सास्कृतिक विकास के लिए लाक्षणिक मुख्य अतर्विरोधो का निर्धारण करती है विभिन्न वर्गों और सामाजिक समूहों के बीच सास्कृतिक मूल्यो के वितरण मे घोर अन्याय के कारण सस्कृति से उसके रचयिता का बिलगाव। कई शताब्दियों तक सास्कृतिक विरासत का आर्थिक आधार "अन्यसंक्रामित श्रम के, प्रकृति तथा स्वय के प्रति श्रमिक के बाह्य-सबध के उत्पाद, नतीजे के, आवश्यक फल के रूप मे निजी सपत्ति बना रहा।"*

जहा तक मनुष्य की उत्पादक, "मूल" (मार्क्स) शक्तियों का अव-विकास अन्यसक्रामित श्रम तथा निजी सपत्ति की उत्पत्ति का प्रधान कारण है, वहा तक अतर्विरोधी सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे उत्पादन की प्रगति अत्यत अतर्विरोधी लक्षणो को उद्घाटित करती है। एक तरफ, यह सामाजिक समृद्धि की बढती की ओर ले जाती है, यानी व्यक्तित्व के सुधार के लिए आवश्यक दशाओ का निर्माण करती है। दूसरी तरफ, परस्पर अतर्विरोधी श्रम-विभाजन की दशाओ के अतर्गत अन्यसक्रामित रूप मे विकासमान सामाजिक उत्पादन आदमी

---

* कार्ल मार्क्स '१८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन सबधी पांडुलिपियां'।

को रचनात्मक उपलब्धि के सुख और सच्ची रचनात्मकता के
से वंचित करके उसे बौद्धिक और नैतिक दोनों ही दृष्टियों से
ा देता है। "यह ऐसी क्रिया है जैसे कष्ट भोगना, ऐसी शक्ति
दुर्बलता, ऐसा प्रजनन जैसे पुंसत्वहरण, श्रमिक की अपनी
क व मानसिक ऊर्जा, उसका व्यक्तिगत जीवन ऐसा है [illegible]
र्रवाई जो उसी के खिलाफ है, उससे स्वतंत्र है और उसकी
नहीं है।"*

रे शब्दो मे श्रम का अन्यसंक्रामण मनुष्य के स्वत्व का अन्य-
जैसा प्रतीत होता है। अन्यसंक्रामण भौतिक व आत्मिक उत्पादन
मे मनुष्य के क्रियाकलाप को विशिष्ट लक्षण प्रदान कर देता
। इसका यह मतलब नहीं है कि अंतर्विरोधी सामाजिक-आर्थिक
ी की दशाओ मे लोग संस्कृति की रचना करना बंद कर देते
कि यहा भी, चाहे अप्रत्यक्ष व निर्वैयक्तीकृत रूपों में ही क्यों
वे सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के विषयी बने रहते हैं।
के अलावा, मानवजाति के सांस्कृतिक विकास का एक [illegible]
ह है कि जब सामाजिक इतिहास में जनसमुदायों की भूमिका
, तो सांस्कृतिक क्रियाकलाप के हर क्षेत्र में उनकी [illegible] [illegible]
बढती जाती है। जहा सामाजिक विकास के क्रम पर [illegible]
के प्रभाव की शक्ति व मात्रा मानवजाति द्वारा नए ऐतिहासिक
ीधे अनुपात मे होती है, वहा हम यह निष्कर्ष निकाल सकते
सामाजिक-आर्थिक सरचना मे दूसरे से संक्रमण के [illegible]
विरासत के महत्व मे तदनुरूप वृद्धि होती है।
इसके साथ ही जनगण, संस्कृति के विषयी, ऐसे [illegible]
रोधी समाज के अंग होते हैं जहा वे संस्कृति से [illegible] और
क्रियाकलाप मे प्रत्यक्ष भाग लेने से, [illegible], [illegible] [illegible]
दशाओ मे व्यक्ति सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया का विषयी
सकता है। इसी कारण से जनगण के, [illegible] [illegible]
सामूहिक रचनात्मक प्रयासो के उत्पाद (यानी [illegible] [illegible]
ी पीढ़ी के लिए सांस्कृतिक विरासत है) को [illegible] [illegible]

महज भौतिक 'वस्तु निज रूप'' की शक्ल मे देखता है।

इस संदर्भ में इस ओर ध्यान दिलाना चाहिए कि यह बात समाज के शोषित तबकों के लिए ही सत्य नहीं है। अन्तर्विरोधी सामाजिक आर्थिक संरचनाओं मे संस्कृति के विषयी की संस्कृति से विलगाव की सामाजिक स्थिति मेहनतकश वर्ग के लिए ही नहीं, बल्कि किसी भी सामाजिक वर्ग के लिए सांस्कृतिक मूल्यों तक पूरी पहुंच को, स्वभावत, असंभ बना देती है। श्रम के अन्तर्विरोधी विभाजन की स्थितियों का अ ही यह है कि संस्कृति का विषयी कुछ विशेष हितो से अनिवार्यत प्रति बाधित हो जाता है और तथाकथित "आंशिक विषयी" बन जाता है, यह आंशिक विषयी विश्व संस्कृति की सामान्य मानवीय अन्तर्वस्तु को केवल अपने सीमित, एकतरफा अवसरो तथा आवश्यकताओ के द्वारा ही आत्मसात कर सकता है। यह केवल कम्युनिज़्म ही है जो मनुष्य के सर्वतोमुखी विकास के लिए हर प्रकार की परिस्थितियो का निर्माण करके उसकी स्व-अभिव्यक्ति के लिए (जिसका तात्पर्य है प्रत्येक व्यक्ति द्वारा विश्व संस्कृति की सारी निधियो का आत्मसात-करण) तथा सारी मानवजाति की स्व-अभिव्यक्ति के लिए वास्तविक आधारो का निर्माण करता है।

ऐतिहासिक विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे जनगण के रचनात्मक क्रियाकलाप हमेशा उन्ही उत्पादन-संबधो से निर्धारित होते रहे हैं जो उन अवस्थाओ मे समाज मे प्रभावी थे। ये क्रियाकलाप भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे प्रत्यक्ष रूप से और आत्मिक उत्पादन के क्षेत्र मे अप्रत्यक्ष रूप से निर्धारित होते है।

दास-स्वामी समाज में, जिसकी लाक्षणिकता आर्थिक-इतर बल-प्रयोग था, दासो को सांस्कृतिक मूल्यो की रचना मे सहभागिता के सभी अवसरो से वंचित कर दिया जाता था और उनमे से जो कुछ लोग रचनात्मक प्रक्रिया मे शामिल थे भी वे सामान्य नियम का असामान्य अपवाद मात्र थे। ये अपवाद किसी न किसी रूप मे दासो की हैसियत में होनेवाले परिवर्तनो से निर्धारित होते थे। दासो की [illegible] मे होनेवाले ये परिवर्तन या तो दासो के स्वामियो द्वारा ही किये जाते थे (मसलन, कोई एक दास अपने स्वामी का प्रिय बनता था और फलत कुछ विशेष अधिकार पा जाता था, स्वतन्त्रता

साथ आर्थिक जोर जबरदस्ती की शुरुआत का द्योतक था। इससे सांस्कृतिक उत्पादन की प्रक्रिया में मेहनतकशों की प्रत्यक्ष साझेदारी के काफी अधिक अवसर पैदा हो गये, इसलिए जनसाधारण के बीच पैदा होनेवाले संस्कृति-कर्मियों की संख्या में तथा सांस्कृतिक क्रियाकलाप के उस क्षेत्र में भी बढ़ती हुई जिसमें उत्पीड़ित वर्गों के अलग-अलग प्रतिनिधियों ने अपना योग दिया (कला और विज्ञान)। परतु इसके बावजूद सर्वसाधारण के बीच प्रतिभाओं का प्रकट होना सामंती युग में भी एक असाधारण घटना थी, परतु पहले की तुलना मे ऐसा अधिक बार होने लगा था।

जो भी हो इन असाधारण घटनाओं की सख्या मे बढती से "जनता और सास्कृतिक विरासत" के रिश्ते पर प्रभाव पड़े बिना नही रहा क्योंकि अपने सर्वाधिक प्रतिभावान सपूतो के द्वारा जनगण विश्व सस्कृति के विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के निकटतर पहुच गये।

यह प्रक्रिया पूजीवादी समाज मे अनिवार्यतः अधिक शीघ्रता से विकसित हुई क्योंकि, एक तरफ, तो आर्थिक-इतर जोर जबरदस्ती के पहले रूप समाप्त हो गये और, दूसरी तरफ, भौतिक उत्पादन मे प्रगति से उत्पादन के तकनीकी स्तर मे जबरदस्त तरक्की हो गयी।

जहा पूजीवादपूर्व सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे हम जनतांत्रिक संस्कृति के कमोबेश विकसित तत्वों को देखते हैं, वहा पूजीवादी विकास भी, इन जनतात्रिक तत्वों के साथ-साथ तथा उनके आधार पर समाजवादी संस्कृति के तत्वो को, यानी भावी समाज की सस्कृति की उत्पत्ति व विकास को उद्दीपन प्रदान करता है। उनकी उत्पत्ति पूजीवाद की विनिर्माण की अवस्था मे पहले ही देखी जा सकती है।

इस अवस्था मे समाजवादी सस्कृति की उत्पत्ति केवल तभी हो सकती है जब, पहले, पूर्ववर्ती युगो की जनतात्रिक सस्कृति की सारी उपलब्धियो को कारगर ढग से आत्मसात कर लिया गया हो, और, दूसरे, जब उन सांस्कृतिक निधियो को आलोचनात्मक ढग से इस्तेमाल कर लिया गया हो जो पहले शासक वर्गों की थी। परतु मेहनतकश और शेष सभी जनगण इस काम को सर्वांग पूर्णता से केवल समाजवादी

साथ आर्थिक और जबरदस्ती की शुरुआत का द्योतक था। इससे सांस्कृतिक उत्पादन की प्रक्रिया में मेहनतकशों की प्रत्यक्ष भागीदारी के कहीं अधिक अवसर पैदा हो गये, इसलिए जनसाधारण के बीच पैदा होनेवाले संस्कृति-कर्मियों की संख्या में तथा सांस्कृतिक क्रियाकलाप के उस क्षेत्र में भी बढ़ती हुई जिसमें उत्पीड़ित वर्गों के अलग-अलग प्रतिनिधियों ने अपना योग दिया (कला और विज्ञान)। परतु इसके बावजूद सर्वसाधारण के बीच प्रतिभाओं का प्रकट होना सामंती युग मे भी एक असाधारण घटना थी, परतु पहले की तुलना मे ऐसा अधिक बार होने लगा था।

जो भी हो इन असाधारण घटनाओ की सख्या मे बढती से "जनता और सास्कृतिक विरासत" के रिश्ते पर प्रभाव पडे बिना नही रहा क्योकि अपने सर्वाधिक प्रतिभावान सपूतो के द्वारा जनगण विश्व सस्कृति के विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्तियो के निकटतर पहुच गये।

यह प्रक्रिया पूजीवादी समाज मे अनिवार्यत अधिक शीघ्रता से विकसित हुई क्योकि, एक तरफ, तो आर्थिक-इतर जोर जबरदस्ती के पहले रूप समाप्त हो गये और, दूसरी तरफ, भौतिक उत्पादन मे प्रगति से उत्पादन के तकनीकी स्तर मे जबरदस्त तरक्की हो गयी।

जहां पूजीवादपूर्व सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे हम जनतांत्रिक **संस्कृति के कमोबेश** विकसित तत्वो को देखते हैं, वहा पूजीवादी विकास भी, इन जनतात्रिक तत्वो के साथ-साथ तथा उनके आधार पर **समाजवादी संस्कृति के तत्वों** को, यानी भावी समाज की सस्कृति की उत्पत्ति व विकास को उद्दीपन प्रदान करता है। उनकी उत्पत्ति पूजीवाद की विनिर्माण की अवस्था मे पहले ही देखी जा सकती है।

इस अवस्था मे समाजवादी सस्कृति की उत्पत्ति केवल तभी हो सकती है जब, पहले, पूर्ववर्ती युगो की जनतात्रिक सस्कृति की सारी उपलब्धियो को कारगर ढग से आत्मसात कर लिया गया हो, और, दूसरे, जब उन सास्कृतिक निधियो को आलोचनात्मक ढग से इस्तेमाल कर लिया गया हो जो पहले शासक वर्गों की थी। परतु मेहनतकश और ऐस सभी जनगण इस काम को सर्वांग पूर्णता से केवल समाजवादी

की उपस्थिति होती है जो ऐतिहासिक प्रकार के विशिष्ट उत्पादन-संबंधों को निर्धारित करते हैं, इसलिए उनके बीच संबंध सामाजिक संगठन और सामाजिक चेतना के समस्त रूपों में परिव्याप्त होते हुए समाज के सांस्कृतिक जीवन के सारे क्षेत्रों में, स्वभावत, प्रतिबिंबित होते हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग-समाज में संस्कृति हमेशा वर्ग-प्रकृति की ही क्यों होती है। यह वर्ग-प्रकृति सर्वोपरि रूप से संस्कृति की वैचारिक अंतर्वस्तु में व्यक्त होती है।

वर्गीय विचारधारा के प्रभाव को सामाजिक चेतना के सारे रूपों में आसानी से खोजा जा सकता है राजनीतिक और कानूनी रूपों में ही नहीं, जहां यह सर्वाधिक स्पष्टता से प्रकट होता है, बल्कि नीतिशास्त्र, कला, विज्ञान और दर्शन में भी। इस मामले में प्राथमिकता धर्म को दी जाती है। सर्वशक्तिमान के सम्मुख मनुष्य पर मनुष्य की कमज़ोरी के विचार को थोपकर और उसे उसके भाग्य के तथा दैवानिक सत्ताओं के अधीनस्थ करके धर्म सांस्कृतिक विकास की भारी प्रक्रियाओं पर अपनी छाप लगा देता है। और यह छाप ऐतिहासिक विकास की कुछ अवस्थाओं पर निर्णायक सिद्ध भी हो जाती है। इसके साथ ही श्रमजीवी और शोषित जनसमुदाय समाज में अपनी जगह को समझने और स्वतंत्रता पाने के लिए प्रयास करते हैं, वे शासक वर्गों की विचारधारा के मुकाबले खुद अपनी विचारधारा का निर्माण करते हैं।

इसलिए अंतर्विरोधी सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में आत्मिक संस्कृति की अंतर्वस्तु हमेशा विशिष्ट वर्गों की विचारधारा से व्युत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि वर्ग-आधारित समाज में प्रभावी विचार शासक वर्गों के होते हैं। मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा, "शासक वर्ग के विचार हर युग में शासकीय विचार होते हैं यानी जो वर्ग-समाज का शासकीय भौतिक बल है वह उसके साथ ही साथ शासकीय बौद्धिक बल भी होता है।"*

संस्कृति की वर्गीय प्रकृति स्वयं को अपने सामाजिक कार्य में, अपने व्यावहारिक लक्ष्यों में, इस तथ्य में भी व्यक्त करती है कि वह

---

* कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स, जर्मन विचारधारा, [illegible]

सामाजिक-आर्थिक संरचना के विशिष्ट नियमों के कारण – यानी वर्ग-संघर्ष, सामाजिक क्रांति, जातीय आंदोलनो के विकास की अतर्विरोधी प्रवृत्तियों, आदि के नियमो के कारण – वर्ग-समाज का इतिहास बड़ी-बड़ी सामाजिक उथलपुथलो, खूख्वार वर्ग-संघर्षों, जातियों व उप-जातियों के अतर्विरोधी टकरावो, राज्यों तथा राज्यो के दलो के बीच अनवरत लडाइयों और आर्थिक व राजनीतिक खलबलियो के इतिहास मे तबदील हो जाता है।

इन दशाओ के अतर्गत सामाजिक प्रगति इस तथ्य के बावजूद अपेक्षाकृत मद तथा अत्यत अनियमित होती है कि एक सरचना मे दूसरे मे जाने पर इसके विकास की दर तीव्रतर हो जाती है। अतर्विरोधी सरचनाओं की पेचीदगियो के बीच जद्दोजहद करती आगे बढ़ती हुई विकास की प्रगतिशील प्रवृत्ति के साथ कुछ देशो और प्रदेशो का पश्चगमन तथा सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षो का असमान रूपातरण भी अवश्यभावी रूप से चलता रहता है।

अतर्विरोधी सरचनाओ मे सामाजिक प्रगति के उन लक्षणो का भी सास्कृतिक विकास की प्रक्रियाओ पर स्वभावत प्रभाव पड़ता है, जो अत्यत अतर्विरोधी प्रकृति की हो जाती हैं। यही बात ऐतिहासिक सातत्य के लिए भी सच है।

अतर्विरोधी समाज मे सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रगति का मुख्य अतर्विरोध इस तथ्य मे निहित है कि सास्कृतिक विकास उस समाज द्वारा निश्चित सीमाओ के अदर अनिवार्यत सीमित होता है। जब कभी कोई विशिष्ट सामाजिक सबध समाज की आगे की प्रगति मे बाधा डालने है, तो उसकी सस्कृति भी मौजूदा ऐतिहासिक रूपो के दायरे के अदर सफलतापूर्वक विकसित नहीं हो पाती है। सास्कृतिक विकास की ऐसी अवधियो की विशेषता नकारात्मक और पश्चगामी घटनाओं का प्रारभ होना होती है और उनके साथ ही सास्कृतिक पतन और ह्रास अत्यत विशद रूप मे उद्घाटित होते है। पर इसके बावजूद ह्रास [illegible] वर्ग-समाज के विकास की इस अवस्था का अर्थ यह है कि उसके ह्रास की प्रक्रिया मे ही नये सास्कृतिक उत्थान के पूर्वाधार अनिवार्यत विद्यमान होते है।

[illegible] अतर्विरोधी समाज की सास्कृतिकता का ऐसे प्रश्न [illegible]

इगलैड मे, यहूदियो, आदि, आदि के बीच मे भी है।"* पूजीवादी समाज मे प्रत्येक राष्ट्र के अदर दो सस्कृतियो का अभिनिर्धारण करते हुए लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि इनमे से एक सस्कृति, जो श्रमजीवी और शोषित वर्गों के जीवन की दशाओ का उत्पाद होती है, कमोबेश विकसित तत्वों के रूप मे होती है, जबकि "दूसरी, बुर्जुआ सस्कृति भी होती है जो महज 'तत्वो' के रूप मे नही, बल्कि प्रभावी सस्कृति होती है।"**

मसलन, रूस के मजदूर वर्ग ने पूजीवाद के ही अतर्गत अपनी विचारधारा बनायी, अपनी राजनीतिक पार्टी का गठन किया और मक्सिम गोर्की, अलेक्सान्द्र सेरफिमोविच, देम्यान बेद्नी जैसे लेखको द्वारा सर्वहारा साहित्य का समारभ किया।

समसामयिक पूजीवादी समाज के अदर दो सस्कृतिया अत्यत स्पष्टता से नजर आती हैं, क्योकि आज सामाजिक विभेदीकरण की रफ्तार अभूतपूर्व रूप से तीव्र हो गयी है। पूजीवादी देशो मे प्रमुख प्रभावी सस्कृति एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग की है। इसके राजनीतिक विचारक कम्युनिज्म-विरोध और नवउपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद तथा अध-राष्ट्रवाद का सक्रिय प्रचार करते हैं। इसके दार्शनिक हर प्रकार के प्रत्ययवादी सिद्धातो और रहस्यवाद का उपदेश देते हैं। इसके लेखकगण बुर्जुआ व्यवस्था के गीत गाते है, और व्यक्तिवाद के, मनुष्य की "शाश्वत नीचता" के विचार फैलाते हैं और, वास्तविकता को पीठ दिखाकर, भ्रामक स्वप्नलोक मे, अपने अन्तर्जगत् मे जा घुमते हैं। इसके कलाकार यथार्थवाद की परपरा को ठुकरा देते है और विभिन्न रूपवादी तिकड़मो, अमूर्त लीपापोती और घिनौने व्यवहार-वैचित्र्य को अपना लेते है।

परतु फिर भी सामाजिक बुर्जुआ समाज के सास्कृतिक जीवन मे सम्मिलित अनेक व्यक्ति अपने आपको चौराहे पर खड़ा पाते हैं। वे उस नीति का विरोध करते है जो नया विश्व युद्ध करवा सकती है, क्योकि वे समझ गये है कि यह नीति एक विशेष सामाजिक व्यवस्था

---

* व्ला० इ० लेनिन 'जातियो के प्रश्न सबधी आलोचनात्मक टिप्पणिया' १९१३।
** वही।

शासक वर्गो का हित साधन करती है।

शासक वर्ग महज विचारधारा का ही निर्माण नही करते, बल्कि ऐसे राजनीतिक, विधिक तथा अन्य सस्थाओ की एक ऐसी प्रणाली का निर्माण भी करते है जो उनकी विचारधारा के साकार रूप होते है। वे सारी सास्कृतिक उपलब्धियो को अपने व्यावहारिक वर्गीय हितो के अधीन रखने का प्रयास करते हैं। परतु जब वर्ग-सघर्ष तीव्र होता है और अधिक सगठित प्रकृति ग्रहण कर लेता है, तो शोषित जनसमुदाय अपने वर्ग-शत्रुओ के मुकाबले मे अपनी विचारधारा ही को नहीं, बल्कि अपनी सस्थाओ को भी आगे बढाते हैं।

पूजीवाद के युग मे जब वर्ग-सघर्ष अपनी चरमसीमा पर पहुच गया तो प्रत्येक बुर्जुआ राष्ट्र ने दो विरोधी सस्कृतियो को जन्म दिया और उनके विकास को सुनिश्चित बनाया। "प्रत्येक जातीय सस्कृति मे दो जातीय सस्कृतिया होती हैं," लेनिन ने लिखा। "एक पुरिश्केविचो, गुच्कोवो तथा स्त्रूवो* की महान रूसी सस्कृति है तो दूसरी चेर्निशेव्स्की और प्लेखानोव के नामो की लाक्षणिक महान रूसी सस्कृति भी है।** यही दो सस्कृतियां उक्राइना मे हैं, तो जर्मनी मे, फास मे,

---

* व० पुरिश्केविच (१८७०-१९२०), एक बडे भूमिपति, 'रूसी जनता यूनियन' 'सेट माइकेल आर्केजेल यूनियन' तथा अन्य घोर प्रतिक्रियावादी सगठनो के एक नेता (रूसी मे ये सगठन काले सैकडे—यमदूत सभाए—कहलाते थे)।

अ० गुच्कोव (१८६२-१९३६), एक रूसी पूजीपति, अक्तूबरवादियो की यूनियन (१७ अक्तूबर यूनियन) के एक नेता। यह पार्टी बडे जमीदारो, व्यापारी-उद्योगपतियो का, रूसी बुर्जुआ वर्ग का १९०५-१९१७ का एक प्रतिक्रियावादी सगठन थी।

प० स्त्रूवे (१८७०-१९४४), एक रूसी अर्थशास्त्री व दार्शनिक, सवैधानिक जनवादियो (कैडेटो) के एक नेता। यह पार्टी रूस के उदार राजतत्रवादी बुर्जुआजी की एक प्रमुख पार्टी थी।

** नि० चेर्निशेव्स्की (१८२८-१८८९), एक रूसी क्रांतिकारी जनवादी, अध्येता लेखक और रूस मे १९वी सदी के साठवे दशक के क्रांतिकारी आदोलन के नेता, जिन्होंने किसान-क्रांति के विचार के प्रचार पर लगी पाबदी की अवहेलना कर दी थी। उन्हे गिरफ्तार करके सजा सुनायी गयी और साइबेरिया को निष्कासित कर दिया गया।

ग० प्लेखानोव (१८५६-१९१८), रूसी और अतर्राष्ट्रीय सामाजिक जनवादी आदोलन के असाधारण कार्यकर्ता, मार्क्सवादी विचारो के उल्लेखनीय प्रचारक, रूसी मार्क्सवादियो की पहली मडली 'श्रम मुक्ति दल' के सगठनकर्ता रूस मे सामाजिक जनवादी

इग्लैड मे, यहूदियो, आदि, आदि के बीच मे भी है।"* पूजीवादी समाज मे प्रत्येक राष्ट्र के अदर दो सस्कृतियो का अभिनिर्धारण करते हुए लेनिन ने इस बात पर ज़ोर दिया कि इनमे से एक सस्कृति, जो श्रमजीवी और शोषित वर्गों के जीवन की दशाओ का उत्पाद होती है, **कमोबेश विकसित तत्वों** के रूप मे होती है, जबकि "दूसरी, बुर्जुआ सस्कृति भी होती है जो महज़ 'तत्वो' के रूप मे नही, बल्कि प्रभावी सस्कृति होती है।"**

मसलन, रूस के मज़दूर वर्ग ने पूजीवाद के ही अतर्गत अपनी विचारधारा बनायी, अपनी राजनीतिक पार्टी का गठन किया और मक्सिम गोर्की, अलेक्साद्र सेरफिमोविच, देम्यान बेद्नी जैसे लेखको द्वारा सर्वहारा साहित्य का समारम्भ किया।

समसामयिक पूजीवादी समाज के अदर दो सस्कृतिया अत्यत स्पष्टता से नज़र आती हैं, क्योकि आज सामाजिक विभेदीकरण की रफ्तार अभूतपूर्व रूप से तीव्र हो गयी है। पूजीवादी देशो मे प्रमुख प्रभावी सस्कृति एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग की है। इसके राजनीतिक विचारक कम्युनिज़्म-विरोध और नवउपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद तथा अंध-राष्ट्रवाद का सक्रिय प्रचार करते हैं। इसके दार्शनिक हर प्रकार के प्रत्ययवादी सिद्धांतो और रहस्यवाद का उपदेश देते हैं। इसके लेखकगण बुर्जुआ व्यवस्था के गीत गाते है, और व्यक्तिवाद के, मनुष्य की "शाश्वत नीचता" के विचार फैलाते हैं और, वास्तविकता को पीठ

के उत्पाद के सिवा और कुछ नही है। अपनी रचनात्मक कृतियो मे वे शांति और सामाजिक प्रगति के लिए विश्व के राष्ट्रो के प्रयासो को प्रतिबिंबित करने के प्रथम संकुचित और कभी कभी आधे-अधूरे प्रयत्न करते हैं। यद्यपि उनमे कुछ कम्युनिज्म के विचारों की स्वीकृति से अभी भी बहुत दूर हैं, तथापि उनके नियावलारी विश्वासो तथा रचनात्मक दृष्टिकोणो की विविधता के बावजूद उन सबको आज के बुर्जुआ समाज के सांस्कृतिक जीवन की जनवादी प्रवृत्तियो के ऐसे प्रतिनिधि कहा जा सकता है, जो "मोटों की संस्कृति" के रास्ते को छोड़कर उज्ज्वल भविष्य के नाम पर सामाजिक परिवर्तन के संघर्ष में शामिल हो गये हैं। और इसमे कोई संदेह नही कि उनमे से अनेक (हम यह नही कहते कि सब) उचित समय पर बहुत आगे तक जायेंगे। मिसाल के लिए, थियोडोर ड्रैज़र और पाब्लो पिकासो के साथ ऐसा ही हुआ था। वे अपने समय में कम्युनिस्ट पार्टी की पांतो मे शामिल हो गये थे। आज डेविड सिक्वीरोस, पाब्लो नेरूदो, हेर्लुफ बीदस्त्रूप जैसे उल्लेखनीय सांस्कृतिक कर्मी तथा अन्य लोग कम्युनिस्ट विचारों के सहभागी हैं।

नयी सर्वहारा कला बहुत समय पहले आधुनिक पूंजीवादी समाज मे उत्पन्न हुई थी और यह अपने सफल विकास के दौरान ऊंचे वैचारिक तथा कलात्मक स्तर पर पहुंच गयी। इस संदर्भ में निम्नांकित लोगों का नामोल्लेख करना पर्याप्त होगा: ग्रैहम ग्रीन, चार्ली चैपलिन, मार्टिन आन्डरसन नेक्से, बर्टोल्ट ब्रेख्त, जेम्स आल्ड्रिज और रेनातो गुटुसो और विदेशी सिनेमा तथा थियेटर के अनेक प्रमुख प्रोड्यूसर अभिनेता, संगीत रचनाकार और संगीतज्ञ।

संस्कृति की वर्गीय प्रकृति की बहस में हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि सारी संस्कृति, उसके सारे अवयव शुरू से लेकर अंत तक पूर्णत वर्ग-अनुकूलित हैं।

सबसे पहले यह जरूरी है कि भौतिक संस्कृति को आत्मिक संस्कृति से पृथक किया जाये।

भौतिक संस्कृति के सारे अवयव, जैसे श्रम साधन (औजार, औद्योगिक उपकरण, परिवहन और संचार के साधन, [illegible] [illegible], [illegible] आदि) तथा उत्पादन पद्धति के अधिकतर अवयव (जैसे

मशीनें, उत्पादन की टेक्नोलाजी, आदि) को किसी भी वर्ग द्वारा और किसी भी ऐतिहासिक युग में समान लाभप्रदता के साथ इस्तेमाल में लाया जा सकता है।

लेकिन भौतिक उत्पादों के मामले में स्थिति कुछ ज्यादा पेचीदा है, क्योंकि उनमें से कुछ विशिष्ट वर्गों की जरूरतों को पूरा करने के लिए तैयार किये जाते हैं, इसलिए वे विशिष्ट सामाजिक कार्य पूरे करते हैं (मसलन भांति-भांति के भवन)। मनुष्य के उत्पादक क्रियाकलापों के इन फलों पर वर्गीय छाप को पहचानने के लिए कोई खास प्रयत्न नहीं करने पड़ते हैं। परन्तु यह वर्गीय लक्षण सबसे पहले इस तथ्य के साथ संबंधित है कि भौतिक और आत्मिक संस्कृति के बीच कोई अभेद्य बाधा नहीं होती है और कि उनके विभेदक पक्ष मात्र सापेक्षिक हैं। मसलन, वास्तुकला केवल भौतिक संस्कृति के क्षेत्र की चीज नहीं है (यद्यपि यह निश्चय ही भौतिक उत्पादन के क्षेत्र की है, क्योंकि फैक्टरी की इमारतें व थियेटर, प्रशासनिक भवन व स्टेडियम रिहायशी मकान व धार्मिक इमारतें श्रम और दैनिक जीवन की विभिन्न प्रक्रियाओं के लिए अपरिहार्य हैं) यह आत्मिक संस्कृति का भी एक हिस्सा है क्योंकि कला के रूप में वास्तुकला के महत्व के साथ ही साथ मनुष्य पर इसके विराट सौंदर्यात्मक प्रभाव पर संदेह करना उपहा-

की (वर्ग-समाज की विशिष्ट वर्ग-सरचना सहित) प्रकृति के अनुसार द्रुततर या मदतर गति से विकसित हो सकती है। परतु भौतिक संस्कृति के ठोस अवयव वर्गों के प्रति मूलत उदासीन होते हैं और उनकी सार्विक **मानवीय प्रकृति** होती है।

उपरोक्त से हम अवश्यभावी रूप से इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं– प्रत्येक पीढ़ी ही नही, बल्कि प्रत्येक नयी सामाजिक-आर्थिक सरचना, अपनी किसी भी वर्ग-सरचना के बावजूद, श्रम के पूर्व सचित साधनो, उत्पादन-अनुभव तथा श्रम द्वारा रचित भौतिक मूल्यो को विरासत मे प्राप्त करती है। उत्पादन का प्रगतिशील विकास, अत , समाज का प्रगतिशील विकास, ऐसी विरासत के बगैर, और भौतिक सस्कृति के मूल अवयवो मे ऐसे सातत्य के बगैर अकल्पनीय है। यह प्रक्रिया वस्तुगत सामान्य नियमो के अनुसार होती है।

लोग इस बात को आत्मगत रूप से समझने में विफल हो सकते हैं और, कुछ मामलो मे, उनके कार्य उत्पादन की प्रगति को बाधित कर सकते हैं (मसलन, ऐसा तब होता है जब कोई पूजीपति बाजार मे अपनी लाभप्रद स्थिति को बरकरार रखने के लिए किसी आविष्कार के पेटेट को इसलिए खरीदता है ताकि उसे कार्यरूप मे परिणत न होने दिया जाये), या जब मशीनो को नुकसान पहुचाकर तकनीकी प्रगति का विरोध किया जाता है (जैसे, लुड्डवादी आदोलन), या जब उत्पादन के स्वचालन को कृत्रिम रूप से विलबित कर दिया जाता है, आदि, लेकिन वस्तुगत रूप से समाज अपने भौतिक आधार को बेहतर बनाये बगैर विकसित नही हो सकता है। और अपनी बारी मे, यह सारी पूर्ववर्ती उपलब्धियो तथा अनुभव को उत्पादन के हित में इस्तेमाल करने की पूर्वापेक्षा करता है। मार्क्स और एगेल्स के अनुसार, प्रत्येक नयी पीढ़ी को "विशेष भौतिक परिणाम, उत्पादक शक्तियो का विशेष योग, प्रकृति और एक दूसरे के प्रति इतिहास द्वारा रचित व्यक्तियो के सबध और अपने पूर्ववर्ती द्वारा हस्तातरित उत्पादक शक्तियो, पूजी कोषो तथा परिस्थितियो का एक समुच्चय प्राप्त होता है जिसे [illegible] ओर नयी पीढ़ी द्वारा सचमुच सुधारा जाता है, परन्तु दूसरी ओर [illegible] लिए जीवन दशाओ का निर्धारण करता है और उसे एक

निश्चित विकास, एक विशिष्ट प्रकृति प्रदान करता है।"*

यद्यपि ऐतिहासिक विकास की कुछ अवस्थाओं में कभी-कभी उत्पादन का खासा बडा नुकसान हो जाता है, तथापि यह जरूरी नही है कि ऐसा कुछ ऐसे वर्गों की तरफ से जानबूझकर की गयी कार्यवाही का परिणाम हो जो उत्पादन को किसी भी मूल्य पर खत्म करने के लिए उतारू हो। ऐतिहासिक अनुभव बतलाता है कि भौतिक उत्पादन मे कोई भी बडी गडबडी या तो लडाइयो (गृह-युद्ध या अतरराज्यीय युद्ध) से सबद्ध होती है या आर्थिक उत्थान से। दोनो दशाओ मे भौतिक सस्कृति को निश्चय बडी हानि होती है। परतु इन हानियो के किसी भी पैमाने के बावजूद उत्पादन की प्रक्रिया कभी भी पूर्णत बद नही होती है, क्योकि कई महीनो के गतिरोध से समाज अवश्यभावी रूप से समाप्त हो जायेगा। अत समाज के सभी वर्ग उत्पादक शक्तियो के अस्तित्वमान स्तर को सुरक्षित रखने व विकसित करने मे वस्तुगत रूप से लेकिन अपने-अपने ढग से दिलचस्पी रखते हैं।

चूकि उत्पादन की प्रक्रिया को अल्पतम अवधियो से अधिक समय तक रोकना असभव है, इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि **भौतिक संस्कृति के क्षेत्र में हमें हमेशा सातत्य के केवल प्रगतिशील रूप से वास्ता पड़ता है।** इस मामले मे सातत्य का क्रमविकास केवल प्रगतिशील दिशा मे होता है। अपने पूर्ववर्तियो से श्रम के औजारो को विरासत मे पानेवाले जनगण उन्हे सुधारने का प्रयास करते हैं, चेतन या अवचेतन रूप से केवल उन औज़ारो का उपयोग करते है जो उनके उत्पादन सबधी क्रियाकलाप मे सबसे ज्यादा कारगर सिद्ध होते हैं।

आत्मिक सस्कृति के क्षेत्र मे सातत्य की स्थिति नितात भिन्न है। यहा वर्ग-प्रकृति विकास के एक सर्वाधिक लाक्षणिक गुण तथा एक सामान्य नियम (यानी वर्ग-समाज के नियम) के रूप मे स्पष्ट नजर आती है। इसलिए इस सूत्र कि "वर्ग-समाज मे सस्कृति की वर्ग-प्रकृति होती है" को उद्धृत करते समय इस पर जोर दिया जाना चाहिए कि यहा "सस्कृति" का तात्पर्य सबसे पहले और सर्वोपरि रूप मे आत्मिक सस्कृति मे है।

---

* कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स 'जर्मन विचारधारा', १८४५-४६।

जब लेनिन ने 19वीं सदी के अंत तथा 20वीं सदी के प्रारंभ में रूस की प्रभावी संस्कृति के प्रतिनिधियों के रूप में 'समृद्ध मकानों' के निर्माता पुरिश्केविच, अक्टूबरवादियों की यूनियन के नेता गुच्कोव तथा संवैधानिक जनवादी पार्टी के नेता स्त्रूवे को स्पष्टतः छाँटकर उनके मुकाबले में जनवादी तथा समाजवादी संस्कृति के असाधारण प्रतिनिधियों के रूप में क्रांतिकारी जनवादी चेर्निशेव्स्की और मार्क्सवादी प्लेखानोव को पेश किया तो उनके दिमाग में स्पष्टतः यही परिभाषा थी।

भौतिक उत्पादन के विपरीत, आत्मिक उत्पादन के क्षेत्र में इसके विकास की दिशा-निर्धारण में वर्ग-प्रकृति प्रत्यक्षतः सम्मिलित होती है: प्रत्येक संघर्षरत वर्ग आत्मिक संस्कृति के सारे अवयवों को अपने विशिष्ट वर्ग-हितों के अनुकूल बनाने की कोशिश करता है। वर्ग-प्रकृति आत्मिक संस्कृति के सारे क्षेत्रों में व्याप्त हो जाती है और अतत उसके वैचारिक आधार या वस्तुत उसके "वैचारिक मूलाधार" की रचना करते हुए उसकी अन्तर्वस्तु को निर्धारित करती है।

लेकिन इसके साथ ही यदि हम यह मान लें कि वैचारिक अन्तर्वस्तु तथा सामाजिक कार्य के अर्थों में आत्मिक संस्कृति की प्रकृति स्पष्टतः वर्ग-प्रकृति है, तो क्या इसके विकास से सातत्य बहिष्कृत हो जाता है?

मार्क्सवाद-लेनिनवाद को थोथा बनानेवाले लोग ठीक इसी तरह से इस प्रश्न को पेश करते हैं। वे संस्कृति को विचारधारा का एक अंग घोषित करके यह दावा करते हैं कि उत्पीड़कों और उत्पीड़ितों की संस्कृतियों में कोई समान बातें हो ही नहीं सकतीं, यद्यपि वे कुछ शर्तों के साथ यह स्वीकार करते हैं कि शोषक (या शोषित) वर्गों की संस्कृति के विकास में सातत्य होता है। या तो वर्ग-प्रकृति या सातत्य – यह है वह थीसिस जिसे वे ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि के मुकाबले में पेश करते हैं।

"वर्ग-प्रकृति या सातत्य" की इस दुविधा को निम्नांकित बातों के आधार पर असंगत सिद्ध किया जा सकता है।

पहली बात यह है कि "विचारधारा" की धारणा संस्कृति की धारणा की तुलना में संकीर्ण है। विचारधारा, जो वर्ग-समाज में आत्मिक संस्कृति का एक अवयव है, हर प्रकार के आत्मिक उत्पादनों के विकास को निर्धारित व निर्देशित करती है। इससे इनकार नहीं किया

जा सकता है। परतु इसके बावजूद, जब प्रोलेतकुल्त* की केंद्रीय समिति के अध्यक्ष व० प्लेत्नेव ने "विचारधारात्मक मोर्चे पर" शीर्षक से अपने लेख मे लिखा कि "विचारधारा की समस्याए संस्कृति की समस्याओ से व्यापकतर हैं," तब लेनिन ने, जिन्होंने पेंसिल हाथ में लेकर उनका लेख पढ़ा, इस दृष्टिकोण के प्रति असहमति के रूप मे हाशिये पर व्यग्य-पूर्वक "व्यापकतर" शब्द अंकित कर दिया। कुछ समय बाद 'प्राव्दा' मे या० याकोव्लेव का लेख 'सर्वहारा सस्कृति और प्रोलेतकुल्त' लेख छपा जो लेनिन की टिप्पणियों पर आधारित था और, यही नहीं, उसे लेनिन ने अच्छी तरह पढ़ा तथा सपादित किया था। इस दावे कि "विचारधारा संस्कृति से व्यापकतर है" की चर्चा करते हुए लेख मे कहा गया था "यहा एक विसंगति बिल्कुल स्पष्ट है क्योंकि संस्कृति, जो सामाजिक घटनाओ का (नीतिशास्त्र व विधि से लेकर विज्ञान, कला और दर्शन तक) समुच्चय है, निश्चय ही सामाजिक विचारधारा की धारणा से कही ज्यादा व्यापक है।"

इसलिए, "विचारधारा" की धारणा संस्कृति की धारणा से सकीर्णतर ही नहीं है, बल्कि यह अपने परास मे भी उसका मुकाबला नहीं कर सकती है। वे महज इसीलिए भी एक-रूप नहीं हैं कि (मिसाल के लिए) आत्मिक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अवयव विज्ञान है। इसके अलावा विज्ञान के और खास तौर पर प्राकृतिक व तकनीकी विज्ञानों के सभी अवयवो को वर्गीय नहीं कहा जा सकता है। विज्ञान की प्रत्येक शाखा की उसकी अपनी वस्तुगत अतर्वस्तु होती है, जो मूलत वर्गेतर तथा सार्विक प्रकृति की होती है। इसी सार्विक, वर्गेतर अतर्वस्तु की विभिन्न मात्राए किसी भी युग की कला, नीतिशास्त्र तथा दर्शन मे खोजी जा सकती हैं और प्रत्येक वर्ग की आत्मिक संस्कृति मे भी पायी जा सकती हैं। और आत्मिक संस्कृति का यही पक्ष वह पक्ष है जहा सातत्य सर्वाधिक विशद रूप मे व्यक्त होता है, क्योंकि किसी भी सामाजिक-आर्थिक सरचना की आत्मिक संस्कृति मे विद्यमान सार्विक को विरासत मे प्राप्त किया जाता है और समाज की किसी

---

* सांस्कृतिक व शैक्षिक सगठन 'प्रोलेतार्स्काया कुल्तूरा' (सर्वहारा संस्कृति) का सक्षिप्त नाम। यह १९१७ से १९३२ तक अस्तित्व मे था।

भी सरचना के बावजूद आगे और अधिक विकसित किया जाता है।

दूसरी बात, मार्क्सवाद को थोथा बनानेवाले आत्मिक सस्कृति के विकास मे वर्ग-प्रकृति और सातत्य का जो विरोध करते हैं उसका स्पष्टीकरण सस्कृति के प्रति उनका अधिभूतवादी तथा इतिहासेतर रवैया है।

वास्तव मे, सार्विक संस्कृति की धारणा उतनी ही सगत है जितनी एक सार्विक सामाजिक-आर्थिक सरचना या वर्ग की धारणा होती। सस्कृति एक ऐतिहासिक घटना है, जो स्वय समाज और वर्गों के क्रम-विकास के साथ ही साथ विकसित होती है। फलत., सस्कृति की प्रगति ऐतिहासिक विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे विविध वर्गों की दशाओ मे होनेवाले हर परिवर्तन को अपरिहार्य रूप से प्रतिबिबित करती है। एक या अन्य अतर्विरोधी सरचना की प्रारभिक अवधि मे जहा तक उसका लाक्षणिक उत्पादन-सबध प्रगतिशील भूमिका अदा करता है, वहा तक उनका "प्रबध" करनेवाला वर्ग, यानी शासक वर्ग, ऐतिहासिक विकास की उस अवस्था मे एक प्रगतिशील सामाजिक शक्ति के रूप मे सामने आता है। और यह दावा करना गलत होगा कि आत्मिक सस्कृति अपने विचारधारात्मक सार तथा व्यावहारिक दिशा मे महज इसलिए प्रतिक्रियावादी है कि यह शासक वर्गों की सेवा करती है।

इतिहास से ज्ञात होता है कि प्रभावी सस्कृति के प्रतिनिधियो द्वारा प्रस्तुत अनेक विचारो का स्थायी प्रभाव तथा सार्विक महत्त्व हो सकता है। मिसाल के लिए, अपनी स्थापना की अवधि मे बुर्जुआ विचारधारा उस प्रगतिशील क्रातिकारी वर्ग के हितो को व्यक्त करती थी जिसे उस काल मे ऐतिहासिक प्रगति की समस्याओ को वस्तुगत रूप से हल करना था। उस समय बुर्जुआ सिद्धातकारो, दार्शनिको, वैज्ञानिको और कलाकारो ने ऐसे महान सास्कृतिक मूल्यो की रचना की जो आज भी प्रगतिशील मनुष्यजाति के लिए महत्त्वपूर्ण है। उस काल के क्रातिकारी बुर्जुआ वर्ग ने सस्कृति के क्षेत्र मे जो वैचारिक सघर्ष चलाया उसकी सामतवाद विरोधी प्रकृति ने उसके द्वारा रचित सास्कृतिक मूल्यो के सार्विक महत्त्व को निर्धारित किया।

इसका कारण यह था कि उस काल मे बुर्जुआ सिद्धातकारो के . समाज के प्रगतिशील विकास के वस्तुगत नियमो के अनुरूप

थे। पतन के लोग केवल अपने वर्ग के हितों के तिजारती और सोद्देश्य वकील नहीं थे। लेनिन ने "बुर्जुआ", "बुर्जुआ विचारधारा", "बुर्जुआ संस्कृति", आदि की धारणाओं को उनके ऐतिहासिक संदर्भ में विलग करके इस्तेमाल करने पर उत्पन्न होनेवाले थोथेपन के गंभीर खतरे के खिलाफ चेतावनी दी थी। उन्होंने लिखा "यह शब्द (बुर्जुआ–प्रबोधक) बहुधा अत्यंत गलत, संकीर्ण और अनैतिहासिक ढंग से समझा जाता है, क्योंकि इसे एक अल्पसंख्यक समूह के हितों की स्वार्थपरक रक्षा के साथ (ऐतिहासिक अवधि का भेद किये बगैर) जोड़ा जाता है। यह कतई नहीं भूलना चाहिए कि उस काल में जब १८वीं सदी के प्रबोधकों ने (जिन्हें आम सहमति से बुर्जुआ वर्ग के नेताओं में शामिल किया जाता है) लिखा, और उस काल में जब चालीसोत्तरी व साठोत्तरी दशकों में हमारे प्रबोधकों (तात्पर्य रूसी क्रांतिकारी जनवादियों से है) ने लिखा, तब सारी सामाजिक समस्याएं भूदास-प्रथा तथा उसके अवशेषों के विरुद्ध संघर्ष के बराबर थीं। उस समय के नये सामाजिक-आर्थिक अंतर्विरोध भ्रूणावस्था में ही थे। इसलिए उस काल के बुर्जुआ सिद्धांतकारों ने किसी स्वार्थीपन का प्रदर्शन नहीं किया। इसके विपरीत वे पश्चिम और रूस दोनों जगहों में सार्विक कल्याण पर निष्कपट ईमानदारी से विश्वास करते थे और ईमानदारी से इसकी कामना करते थे. उन्होंने उस प्रणाली के इन अंतर्विरोधों को सचमुच नहीं देखा था (और अंशतः तब तक देख नहीं सकते थे) जो भूदास प्रथा से उत्पन्न हो रहे थे।"*

अब इस तथ्य कि विभिन्न युगों की आत्मिक संस्कृति के अवदान [illegible]

---

* [illegible]

भी सरसना के बावजूद आगे और अधिक विकसित किया जाता

दूसरी बात, मार्क्सवाद को थोथा बनानेवाले आत्मिक सम् के विकास मे वर्ग-प्रकृति और सातत्य का जो विरोध करते है उ स्पष्टीकरण संस्कृति के प्रति उनका अधिभूतवादी तथा इतिहासेतर रवैय

वास्तव मे, सार्विक सस्कृति की धारणा उतनी ही सगत है जि एक सार्विक सामाजिक-आर्थिक सरचना या वर्ग की धारणा हो सस्कृति एक ऐतिहासिक घटना है, जो स्वय समाज और वर्गों के ? विकास के साथ ही साथ विकसित होती है। फलत, सस्कृति की प्रग ऐतिहासिक विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे विविध वर्गों की दशाओ मे होनेवाले हर परिवर्तन को अपरिहार्य रूप से प्रतिबिबित करती है। एक या अन्य अतर्विरोधी सरचना की प्रारभिक अवधि मे जहा तक उसका लाक्षणिक उत्पादन-सबध प्रगतिशील भूमिका अदा करता है, वहा तक उनका "प्रबध" करनेवाला वर्ग, यानी शासक वर्ग, ऐतिहासिक विकास की उस अवस्था मे एक प्रगतिशील सामाजिक शक्ति के रूप मे सामने आता है। और यह दावा करना गलत होगा कि आत्मिक सस्कृति अपने विचारधारात्मक सार तथा व्यावहारिक दिशा मे महज इसलिए प्रतिक्रियावादी है कि यह शासक वर्गों की सेवा करती है।

इतिहास से ज्ञात होता है कि प्रभावी सस्कृति के प्रतिनिधियो द्वारा प्रस्तुत अनेक विचारो का स्थायी प्रभाव तथा सार्विक महत्व हो सकता है। मिसाल के लिए, अपनी स्थापना की अवधि मे बुर्जुआ विचारधारा उस प्रगतिशील क्रातिकारी वर्ग के हितो को व्यक्त करती थी जिसे उस काल मे ऐतिहासिक प्रगति की समस्याओ को वस्तुगत रूप से हल करना था। उस समय बुर्जुआ सिद्धातकारो, दार्शनिको, वैज्ञानिको और कलाकारो ने ऐसे महान सास्कृतिक मूल्यो की रचना की जो आज भी प्रगतिशील मनुष्यजाति के लिए महत्वपूर्ण है। उस काल के क्रातिकारी बुर्जुआ वर्ग ने सस्कृति के क्षेत्र मे जो वैचारिक सघर्ष चलाया उसकी सामतवाद-विरोधी प्रकृति ने उनके द्वारा रचित सास्कृतिक मूल्यो के सार्विक महत्व को निर्धारित किया।

इसका कारण यह था कि उस काल मे बुर्जुआ सिद्धातकारो के विचार समाज के प्रगतिशील विकास के वस्तुगत नियमो के अनुरूप

एक निश्चित वर्गीय स्थिति से जगत् को प्रतिबिंबित करती है। इसलिए वास्तविक प्रश्न यह है कि यह विशेष वर्गीय स्थिति वास्तविकता का सही प्रतिदर्शन होने देती है या नही।

यदि विगत ऐतिहासिक युगो मे कुछ वर्गो ने, जो प्रकृति से शोषक थे, प्रगतिशील भूमिका अदा की, आगे बढे और भविष्य की अपेक्षा भी की, तो उनकी वर्गीय स्थिति ने उन्हे, कम से कम कुछ सीमा तक, वस्तुओ को सही ढग से समझने और सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओ को वस्तुगत रूप से प्रतिबिंबित करने मे समर्थ बनाया। जैसा कि हम देख चुके है, १७वी और १८वी सदी के बुर्जुआजी की ऐसी ही स्थिति थी और यह इस बात का स्पष्टीकरण है कि जो आत्मिक मूल्य अपने सामाजिक सार मे बुर्जुआ थे और जिनकी रचना बुर्जुआ सिद्धान्तकारो ने की थी, वे वस्तुगत रूप से एक वर्ग के हितो के परास तथा एक युग के दायरे से परे कही अधिक महत्त्वपूर्ण क्यो सिद्ध हुए।

इस प्रकार, अपनी वैचारिक अन्तर्वस्तु तथा लक्ष्यो के मामले मे पूर्णरूप मे वर्गीय प्रकृति के आत्मिक सांस्कृतिक तत्त्व भी ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर आवश्यक रूप से सातत्य के नियमो का पालन करते है।

ऊपर कही हुई बात का यह अर्थ नही है कि एक सामाजिक-आर्थिक संरचना से दूसरी मे प्रविष्ट होते हुए प्रत्येक नया शासक वर्ग आत्मिक संस्कृति के क्षेत्र मे अपने पूर्ववर्तियो द्वारा रचित मूल्यो को यांत्रिक रूप से विरासत मे पाता है।

जब तक सांस्कृतिक विरासत का मूल्यांकन शासक वर्गीय स्थिति पर खडे बुद्धिजीवियो द्वारा होता है, तब तक वे संस्कृति को हमेशा अपने वर्ग दृष्टिकोण से रंजित कर देते है और इन सांस्कृतिक मूल्यो को उस वर्ग के हितो के अनुसार इस्तेमाल करते है। कोई भी वर्ग विगत युगो के मूल्यो को सहज [illegible] प्रदान करता और फिर [illegible] के लिए विरासत मे ग्रहण नही करता है [illegible] अपने विशेष दृष्टिकोण से समझने के [illegible] के रूप मे [illegible] करता और स्वयं अपनी वैचारिक स्थिति को [illegible] के लिए ग्रहण करता है। [illegible] वह विगत युगो के [illegible]
[illegible] है [illegible] उसके वर्गीय दृष्टिकोण [illegible]

उत्पादन-सबधी क्रियाकलाप मे निहित है, इसलिए ऐतिहासिक
पर प्रकट होने और उत्पादन के गतावधिक सबधो को ठुकरानेव
हर नया वर्ग स्वय को स्वभावत भौतिक व आत्मिक सस्कृति के
में पहले के उपलब्ध परिणामो पर आधारित करता है। इस म
में परंपरा अपरिहार्य है।

इसके साथ ही, अतर्विरोधी सरचनाओं मे प्रत्येक नया शासक
आत्मिक सस्कृति के मूल्यो तक अपने वर्ग-विशेष की आत्मगत स्थि
से चयनात्मक ढंग से पहुचने के लिए भौतिक सस्कृति के क्षेत्र की
उपलब्धियो को इस्तेमाल मे लाता है (और इस आधार पर भौ
उत्पादन को और अधिक विकसित बनाता है), यानी वह,
तरफ, केवल उन मूल्यो का उपयोग करता है जो उसे पीछे
हुए वर्गों के खिलाफ सघर्ष मे मदद दे सकते हैं, दूसरी तरफ, वह
मूल्यों को उपयोग मे लाता है जो उसके सहवर्ती, विपरीत ध्रु
वर्ग पर उसके प्रभुत्व को सुदृढ बनाते हैं।

इसलिए सत्ता के लिए अपनी लडाई मे बुर्जुआ वर्ग साम
तथा उसकी धार्मिक, प्रत्ययवादी विचारधारा के मुकाबले मे १
१८वी सदियो के दौरान प्राकृतिक विज्ञानो मे प्राप्त सफलताओ
भौतिकवादी परपराओ पर आधारित नये विश्व दृष्टिकोण को
लाता है। पुनर्जागरण काल की शानदार कला प्राचीन कला के अ
पर उत्पन्न हुई।

फ्रेंसिस बेकन, थोमस हॉब्स, जान लाक, बेनेडिक्ट स्पि
तथा देनी दिदेरो के भौतिकवादी दर्शन तथा पुनर्जागरण काल की
का महत्व "परपरा को दी गयी एक श्रद्धाजलि" से कही अधिक मह
है। बुर्जुआ समाज के दृढीकरण की अवधि मे बुर्जुआ सस्कृति के स
प्रभावशाली व्यक्तित्वो की नवोन्मेषी भूमिका और विश्व मानव-
की निधि मे उनका विराट प्रगतिशील योगदान असदिग्ध है।

परतु, ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया मे पीछे हटते हुए
के विरुद्ध तथा प्रत्येक अतर्विरोधी सरचना के अदर के विपरीत
वर्ग के विरुद्ध सघर्ष मे सबधित मूल्यो का महत्त्व अपरिवर्ति
रहता है। पीछे हटते हुए वर्गों का पूर्णत हट जाना देर-सबेर
भावी होता है। इससे नितात भिन्न, विपरीत ध्रुवीय वर्ग,

के साधनों पर निजी स्वामित्व तथा शोषण पर आधारित समाज-व्यवस्था को पवित्र ठहराने का काम देती थी।

यह सातत्य सर्वाधिक विशद रूप में राजनीतिक और विधिक विचारधाराओं में (और इसीलिए राजनीतिक व विधिक संगठनों में) प्रकट होता है, यानी उन क्षेत्रों में जो आर्थिक आधार के निकटतम होते हैं और अधिरचनाओं के उन क्षेत्रों में भी, जो वर्ग-संघर्ष के साथ प्रत्यक्षत: जुड़े होते हैं। अंतर्विरोधी सरचनाओं में शासक वर्गों की विचारधारा का शोषणकारी सार इन वर्गों का हितसाधन करनेवाली आत्मिक संस्कृति के सभी अन्य क्षेत्रों में अपरिहार्य सातत्य को निर्धारित करता है।

यह भी अवश्यंभावी है कि एक विशेष सामाजिक-आर्थिक संरचना की प्रारंभिक अवस्थाओं में इनमें से प्रत्येक वर्ग अपने पूर्ववर्ती की सांस्कृतिक विरासत को उस सीमा तक उपयोग में लाता है जहां तक ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में उसकी अपनी वस्तुगत प्रगतिशील सहभागिता होती है और, विलोमत, जैसे ही वह अपने विकास की उस अवस्था में पहुंचता है जहां उसकी प्रकृति प्रतिगामी हो जाती है, वैसे ही वह उन विभिन्न प्रतिक्रियावादी विचारधाराओं की ओर उन्मुख हो जाता है जिन्हें उससे पहले के उन वर्गों ने बनाया था, जो उसी की जैसी स्थिति में फंस गये थे।

दूसरी तरफ, इस बात पर गौर करना बहुत महत्वपूर्ण है कि ऐतिहासिक विकास में सातत्य की इस धारा का दूसरी के द्वारा विरोध होता है, यानी गुलामों, भूदासों, सर्वहारा की।

इसलिए, आत्मिक संस्कृति के विकास में ऐतिहासिक सातत्य की वर्ग-प्रकृति का निराकरण होना तो दूर की बात, वह वस्तुत: उससे प्रत्यक्षत: जुड़ा हुआ होता है। इस मामले को "वर्ग-प्रकृति या सातत्य" के रूप में पेश करना अधिभूतवादी विवाद में पड़ना है। इस समस्या का एकमात्र सही समाधान "वर्ग-प्रकृति और सातत्य दोनों ही" है।

कुल मिलाकर, संस्कृति की वर्ग-प्रकृति परंपरा और नवोन्मेष के बीच अंतर्संबंध के विश्लेषण के दौरान सर्वाधिक विशद रूप में उद्घाटित होती है।

चूंकि ऐतिहासिक विकास में सातत्य की आधारशिला मनुष्य के

उत्पादन-संबंधी क्रियाकलाप मे निहित है, इसलिए ऐतिहासिक
पर प्रकट होने और उत्पादन के गतावधिक संबंधो को ठुकरानेव
हर नया वर्ग स्वय को स्वभावत भौतिक व आत्मिक सस्कृति के
मे पहले के उपलब्ध परिणामो पर आधारित करता है। इस मा
में परंपरा अपरिहार्य है।

इसके साथ ही, अतर्विरोधी सरचनाओ मे प्रत्येक नया शासक
आत्मिक संस्कृति के मूल्यो तक अपने वर्ग-विशेष की आत्मगत स्थिरि
से चयनात्मक ढंग से पहुचने के लिए भौतिक सस्कृति के क्षेत्र की
उपलब्धियो को इस्तेमाल मे लाता है (और इस आधार पर भौ
उत्पादन को और अधिक विकसित बनाता है), यानी वह,
तरफ, केवल उन मूल्यो का उपयोग करता है जो उसे पीछे
हुए वर्गों के खिलाफ सघर्ष मे मदद दे सकते हैं, दूसरी तरफ, वह
मूल्यो को उपयोग मे लाता है जो उसके सहवर्ती, विपरीत ध्रुव
वर्ग पर उसके प्रभुत्व को सुदृढ बनाते हैं।

इसलिए सत्ता के लिए अपनी लड़ाई मे बुर्जुआ वर्ग सामत
तथा उसकी धार्मिक, प्रत्ययवादी विचारधारा के मुकाबले मे १
१८वी सदियो के दौरान प्राकृतिक विज्ञानो मे प्राप्त सफलताओ
भौतिकवादी परंपराओ पर आधारित नये विश्व दृष्टिकोण को
लाता है। पुनर्जागरण काल की शानदार कला प्राचीन कला के अ
पर उत्पन्न हुई।

फ्रेंसिस बेकन, थोमस हॉब्स, जान लाक, बेनेडिक्ट स्पि
तथा देनी दिदेरो के भौतिकवादी दर्शन तथा पुनर्जागरण काल की
का महत्व "परपरा को दी गयी एक श्रद्धाजलि" से कहीं अधिक महत्
है। बुर्जुआ समाज के दृढीकरण की अवधि मे बुर्जुआ सस्कृति के सव
प्रभावशाली व्यक्तित्वो की नवोन्मेषी भूमिका और विश्व मानव-म
की निधि मे उनका विराट प्रगतिशील योगदान असदिग्ध है।

परंतु, ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में पीछे हटते हुए
के विरुद्ध तथा प्रत्येक अतर्विरोधी सरचना के अदर के विपरीत
वर्ग के विरुद्ध सघर्ष मे सबधित लक्ष्यो का सहसबध अपरिवर्तित
रहता है। पीछे हटते हुए वर्गों ... हट ... गैर-सवेर अ
भावी होना ... , जो

के साधनों पर निजी स्वामित्व तथा शोषण पर आधारित समाज-[illegible]
को पवित्र ठहराने का काम देती थी।

यह सातत्य सर्वाधिक विशद रूप से राजनीतिक और विधि[illegible] विचारधाराओं में (और इसीलिए राजनीतिक व विधिक संस्थाओं में) प्रकट होता है, यानी उन क्षेत्रों में जो आर्थिक आधार के निकटतम होते हैं और अधिरचनाओं के उन क्षेत्रों में भी, जो वर्ग-संघर्ष के [illegible] प्रत्यक्षतः जुड़े होते हैं। अंतर्विरोधी संरचनाओं में शासक वर्गों की विचार-धारा का शोषणकारी सार इन वर्गों का हितसाधन करनेवाली [illegible] संस्कृति के सभी अन्य क्षेत्रों में अपरिहार्य सातत्य को निर्धारित करता है।

यह भी अवश्यंभावी है कि एक विशेष सामाजिक-आर्थिक संरचना की प्रारंभिक अवस्थाओं में इनमें से प्रत्येक वर्ग अपने पूर्ववर्ती की [illegible] तिक विरासत को उस सीमा तक उपयोग में लाता है जहां तक ऐति-हासिक विकास की प्रक्रिया में उसकी अपनी वस्तुगत प्रगतिशील [illegible] भागिता होती है और, विलोमतः, जैसे ही वह अपने विकास की उस अवस्था में पहुंचता है जहां उसकी प्रकृति प्रतिगामी हो जाती है, वैसे ही वह उन विभिन्न प्रतिक्रियावादी विचारधाराओं की ओर उन्मुख हो जाता है जिन्हें उससे पहले के उन वर्गों ने बनाया था जो उसी की जैसी स्थिति में फंस गये थे।

दूसरी तरफ, इस बात पर गौर करना बहुत महत्वपूर्ण है कि ऐति-हासिक विकास में सातत्य की इस धारा का दूसरी के द्वारा विरोध होता है, यानी गुलामों, भूदासों, सर्वहारा की।

इसलिए, आत्मिक संस्कृति के विकास में ऐतिहासिक सातत्य की वर्ग-प्रकृति का निराकरण होना तो दूर की बात, वह वस्तुतः उससे प्रत्यक्षतः जुड़ा हुआ होता है। इस मामले को 'वर्ग प्रकृति या सातत्य' के रूप में [illegible] विचार [illegible] है। [illegible] 'वर्ग प्रकृति और [illegible]' है।

[illegible] है।

[illegible]

संस्कृति की सारी प्रक्रियाएं सातत्य के दो ध्रुवीय रूपों—प्रगतिशील तथा प्रतिगामी—के बीच संघर्ष को दर्शाती हैं।

वर्ग-समाज में सांस्कृतिक विरासत के उपभोग की दोहरी प्रकृति साम्राज्यवाद के युग में विशेष स्पष्टता से प्रकट होती है। पूंजीवाद के प्रारंभ में द्रुत आर्थिक विकास के साथ ही साथ आत्मिक संस्कृति का भी वैसा ही तीव्र विकास हुआ। मनुष्यजाति ज्योर्दानो ब्रूनो, गैलीलिओ गैलीले, आइज़क न्यूटन, जोहान केप्लर जैसे महान वैज्ञानिकों, विलियम शेक्सपीयर, दान्ते, गेटे, चार्ल्स डिकेंस, स्टेंदाल, बाल्ज़ाक जैसे महान साहित्यकारों तथा प्रारंभिक बुर्जुआ क्रांतियों के युग के ब्रिटिश व फ्रांसीसी भौतिकवादियों तथा १८वीं सदी के अंतिम तथा १९वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों के जर्मन क्लासिकी दर्शन के दार्शनिकों, मसलन, कांट, हेगेल तथा फायरबाख जैसे असाधारण व्यक्तियों पर हमेशा गर्व करेगी। अब जमाना बदल गया है और पश्चिम में आज के अनेक दार्शनिक, लेखक और कलाकार उन सबकी खुलेआम निंदा करते हैं जो बुर्जुआ वर्ग के इतिहास के प्रारंभ में पूजा का विषय थे। भौतिकवाद के स्थान पर थोथा प्रत्ययवाद तथा धार्मिक अंधविश्वास आ बैठे हैं, क्लासिकी संगीत के स्थान पर कुस्वरता तथा उन्मादपूर्ण चीखों ने घर कर लिया है और यथार्थवादी चित्रकला के स्थान पर निरर्थक लीपापोती को प्रतिष्ठित कर दिया गया है।

इन पंक्तियों के लेखक को ब्रसेल्स में आयोजित एक अधियथार्थवादी कला प्रदर्शनी को देखे हुए की याद आती है। वहां छिन्न-भिन्न आंखों वाले चेहरे से पुती, आश्चर्यजनक और बेदाग वास्तविकता से चित्रित, मानवीय टांगों के ठूठों को एक रेगिस्तान में भटकते हुए दर्शाया गया था। यह है अधियथार्थवादियों की बेलगाम कल्पनाएं, जिन्हें कुछ "कला पारखी" असली कला कहकर चलाना चाहते हैं। वे इस पर खेद तक प्रकट करते हैं कि "बमों ने पुरानी कला को नष्ट करने तथा अमूर्तवाद और अधियथार्थवाद के लिए मैदान साफ करने का काम अधूरा ही छोड़ दिया।" कार्ल मार्क्स के शब्दों कि "पूंजीवादी उत्पादन आत्मिक संस्कृति की कुछ शाखाओं, मसलन, कला व कविता, के लिए शत्रुतापूर्ण होता है"* का इससे अधिक सटीक और साथ

* कार्ल मार्क्स, 'बेशी मूल्य के सिद्धांत', १८६३।

मे बेहद कमजोर तथा स्वयं अपने में सिमटा हुआ "निज मे वर्ग" होता है (मसलन, १८वी सदी मे मजदूर वर्ग की न तो अपनी कोई विचारधारा थी न अपना राजनीतिक संगठन, पर इसके बावजूद वह अपने विरोधियों पर वार करने मे कामयाब हो गया था) पर बाद मे वह अपने अधिकारो के लिए सघर्ष में अपने सगठन को सुधारते तथा धीरे-धीरे "निज के लिए वर्ग" का रूप धारण करते हुए अपने हितो को शासक वर्ग के हितो से अधिकाधिक पृथक कर लेता है।

किसी भी सामाजिक आर्थिक सरचना के विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे शासक वर्ग के सम्मुख मौजूद लक्ष्यो के परिवर्तन तथा उस सामाजिक-आर्थिक सरचना के अंदर के वर्गों के सहसबध मे ही उन गुणों को समझने की कुजी निहित है जो सातत्य की प्रक्रिया के, अतर्विरोधी सरचनाओं मे परपराओ और नवोन्मेष के सबध के लाक्षणिक होते हैं· विगत युगो से विरासत मे प्राप्त आत्मिक सस्कृति मे प्रत्येक वर्ग उन मूल्यों को खोजता तथा विकसित करता है जिनकी उसे वस्तुगत रूप से आवश्यकता होती है और जो आत्मगत रूप से उसे उचित जान पड़ते हैं।

चूकि प्रत्येक अतर्विरोधी सरचना के विकास की प्रक्रिया मे सत्तारूढ़ वर्ग धीरे-धीरे अपनी प्रगतिशील प्रकृति को छोड़ता जाता है, इसलिए वह अवश्यभावी रूप से अपनी विचारधारा को बदलता है और वस्तुगत आवश्यकता पर आत्मगत चाह हावी हो जाती है। वर्ग-हितो मे सार्विक मानवीय हितो का अश कम से कमतर होता जाता है और प्रगतिशील का स्थान प्रतिक्रिया ग्रहण करने लगती है। साथ ही जब उत्पीड़ित वर्ग "निज मे वर्गों" से "निज के लिए वर्गों" मे विकसित होते हैं, तो वे पूर्ववर्ती युगो की सास्कृतिक विरासत मे वस्तुगत प्रगतिशील अंतर्वस्तु को उद्घाटित करने, उसको विकसित करने और अपने लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए उसे उपयोग में लाने का अधिकाधिक सचेत प्रयत्न करते हैं।

इन परिस्थितियों मे आत्मिक सस्कृति सामाजिक विकास की वस्तुगत प्रगतिशील प्रवृत्तियों और शासक वर्गों के आत्मगत प्रतिक्रियावादी हितो के बीच बढ़ते हुए झगड़े का अखाड़ा बन जाती है। और चूंकि शोषक समाज मे यह झगड़ा अवश्यभावी होता है, इसलिए आत्मिक

... सारी प्रक्रियाएं सातत्य के दो ध्रुवीय रूपों – प्रगतिशील
प्रतिगामी – के बीच संघर्ष को दर्शाती है।
र्ग-समाज में सांस्कृतिक विरासत के उपयोग की दोहरी प्रवृत्ति
यवाद के युग में विशेष स्पष्टता से प्रकट होती है। पूंजीवाद
रंभ में द्रुत आर्थिक विकास के साथ ही साथ आत्मिक संस्कृति
वैसा ही तीव्र विकास हुआ। मनुष्यजाति ज्योर्दानो ब्रूनो, गैली-
गैलीले आइजक न्यूटन, जोहान केप्लर जैसे महान वैज्ञानिकों,
म शेक्सपीयर, दान्ते, गेटे, चार्ल्स डिकेंस, स्टेंदाल, बाल्ज़ाक
हान साहित्यकारो तथा प्रारंभिक बुर्जुआ क्रांतियो के युग के
व फ्रांसीसी भौतिकवादियो तथा १८वी सदी के अंतिम तथा १६वी
प्रारंभिक वर्षों के जर्मन क्लासिकी दर्शन के दार्शनिको, मसलन,
हेगेल तथा फ़ायरबाख जैसे असाधारण व्यक्तियों पर हमेशा
गी। अब ज़माना बदल गया है और पश्चिम में आज के अनेक
, लेखक और कलाकार उन सबकी खुलेआम निंदा करते
र्जुआ वर्ग के इतिहास के प्रारंभ में पूजा का विषय थे। भौतिक-
स्थान पर थोथा प्रत्ययवाद तथा धार्मिक अंधविश्वास आ बैठे
ासिकी संगीत के स्थान पर कुस्वरता तथा उन्मादपूर्ण चीख़ों
कर लिया है और यथार्थवादी चित्रकला के स्थान पर निरर्थक
ों को प्रतिष्ठित कर दिया गया है।
पंक्तियो के लेखक को ब्रसेल्स में आयोजित एक अधियथा
ला प्रदर्शनी को देखे हुए की याद आती है। वहां छिन्न-भि
ाले चेहरे से धुंधी, आश्चर्यजनक और बेदाग वास्तविकता
मानवीय टांगो के ठूंठो को एक रेगिस्तान में भटकते दि
गया था। यह हैं अधियथार्थवादियो की बेलगाम कल्पनाए
छ "कला पारखी" असली कला कहकर चलाना चाहते है
र खेद तक प्रकट करते हैं कि "हमो ने पुरानी कला को नष्
ा अमूर्तवाद और अधियथार्थवाद के लिए मैदान साफ़ करने क
ूरा ही छोड दिया।" कार्ल मार्क्स के शब्दो कि "पूंजीवादी
आत्मिक संस्कृति की कुछ शाखाओ, मसलन, कला व कविता,
शत्रुतापूर्ण होता है"* का इससे अधिक सटीक और साथ

र्ल मार्क्स, 'बेशी मूल्य के सिद्धांत', १८६३।

ही अधिक विकृत उदाहरण और कोई नही मिल सकता है।

आज के बुर्जुआ समाज की संस्कृति में पतन व ह्रास की प्रक्रियाओ की लाक्षणिक इन तथा कई अन्य घटनाओ का क्या स्पष्टीकरण हो सकता है ? साफ जाहिर है कि इन प्रक्रियाओ का प्रमुख कारण सामाजिक व्यवस्था मे पाया जायेगा।

आज के बुर्जुआ समाज के शासक वर्ग भय से आक्रात हैं' काल उनके खिलाफ जा रहा है। इसलिए यह कोई आश्चर्य नही है कि संस्कृति-विरोधी घटनाए साम्राज्यवाद के युग मे घटती हैं तथा विकसित होती हैं।

अमरीका के आक्रामक क्षेत्र सोवियत-विरोधी उन्माद भड़काते है और कम्युनिज्म-विरोध की नीति को बढावा देते हैं, ताकि मानवता को पुन. "युद्ध के कगार" पर लाया जा सके और ऐसा करने के लिए वे विज्ञान व टेक्नोलाजी की उपलब्धियों को, सास्कृतिक माध्यमो और सस्थानो को इस नीति की सेवा मे लगाते हैं। कुछ अमरीकी राजनीतिज्ञ तो यह दावा तक करते हैं कि वे सारी दुनिया मे कम्युनिज्म की विजय को स्वीकार करने के बजाय इस पृथ्वी को हाइड्रोजन बम से चकनाचूर कर देगे। वे दावा करते हैं कि ससार मे शांति से अधिक मूल्यवान वस्तुए भी हैं। भयाक्रात होने की वजह से उत्पन्न यह सत्रास तथा प्रगति के हर चिह्न के प्रति घोर घृणा समसामयिक बुर्जुआ सस्कृति के विकास पर अपनी छाप छोडती है और प्रगति मे बाधा डालती है।

इस सिलसिले मे, समाज के विकास की वस्तुगत प्रक्रिया तथा शासक वर्गों की आत्मगत आकाक्षाओ के बीच घोर अन्तर्विरोध विशेषत अच्छा उदाहरण है। साम्राज्यवाद के युग मे यह अतर्विरोध खास तौर से प्राकृतिक और तकनीकी विज्ञानो के क्षेत्र मे प्रकट होता है। एक तरफ, विकासमान उद्योग की आवश्यकताए सूक्ष्म-ब्रह्माड, जीवित पदार्थ, ऊर्जा के नये स्रोतो तथा अतरिक्ष, आदि मे वैज्ञानिक ज्ञान के द्रुत विस्तार का तकाजा करती हैं और वैज्ञानिकगण सज्ञान की प्रक्रिया मे पैदा होनेवाली समस्याओं के समाधान की सक्रियता मे खोज कर रहे हैं। इस काम के दौरान वे प्राकृतिक विज्ञान व टेक्नोलाजी के क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण खोजे कर रहे हैं। दूसरी तरफ, समसामयिक बुर्जुआ समाज या तो इन खोजों का कोई उपयोग नही कर पाता, या,

अगर करता है तो सैन्यवादी कामो के लिए, यानी अलोकप्रिय उद्देश्यो के लिए, या उन्हे वे शक्तिया इस्तेमाल करती हैं जो प्रगति को हर सभव तरीके से रोकने मे जुटी हैं। इसके अलावा, दार्शनिक दृष्टि से इन खोजो की बहुधा गलत व्याख्या की जाती है।

साम्राज्यवाद के युग मे बुर्जुआ सस्कृति की प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तिया पतन और ह्रास की प्रक्रियाओ को उद्दीप्त कर रही हैं और शासक वर्गो मे, मुख्यत बुर्जुआ बुद्धिजीवियो के कुछ सस्तरो मे, भी गहरी चिता पैदा करने लगी हैं।

इस सदर्भ मे एक अमरीकी पत्रिका के सपादक से प्राप्त पत्र के उत्तर मे महान आइन्स्टीन ने जो कुछ लिखा उससे अधिक कटु व्यग्योक्ति और कुछ नही हो सकती। उन्होंने लिखा कि आपने मुझसे पूछा है कि मैं अमरीका मे वैज्ञानिको की दशाओ के सबध मे आपके लेख के बारे मे क्या सोचता हूं। मैं इस समस्या का विश्लेषण करने के बजाय अपनी भावनाओं को निम्नाकित सक्षिप्त टिप्पणी मे व्यक्त करना चाहूगा यदि मैं एक बार फिर जवान हो जाता और मेरे सामने व्यवसाय चुनने की समस्या आती, तो मैं एक वैज्ञानिक, विद्वान या अध्यापक बनने की न सोचता। इसके बजाय मै एक टिनर या फेरी-वाले के धधे को इस आशा से चुनता कि उसमे मुझे वह स्वाधीनता मिल जाती जो मौजूदा परिस्थितियो मे अभी भी प्राप्त हो सकती है।

जिस वैज्ञानिक की सैद्धातिक खोजबीन से नाभिकीय ऊर्जा के अक्षय ममाधनो को इस्तेमाल करने की सभाव्यता निर्णायक रूप से सिद्ध हुई थी, उनके इस उत्तर के सही मूल्याकन के लिए उनके अप्रैल १९४५ मे हिरोशिमा और नागासाकी मे बर्बरतापूर्ण बमबारी से पहले अमरीकी राष्ट्रपति को लिखे पत्र की याद दिलाना पर्याप्त है। उस पत्र मे आइन्स्टीन ने राष्ट्रपति से अपील की थी कि वे नाजी जर्मनी की पराजय के बाद इस नयी विनाशक शक्ति को अमरीकी विदेशनीति मे इस्तेमाल करने पर शाति के लिए उत्पन्न होनेवाले खतरे का गभीरता से आकलन करे। परतु रूजवेल्ट के बाद के अमरीकी राष्ट्रपतियो मे से सभी ने उस वैज्ञानिक की चेतावनी पर ध्यान नही दिया। इसके विपरीत उनमे से कुछ सामूहिक विनाश के आधुनिक हथियारो को " – की स्थिति" की अपनी नीति के पालन मे प्रमुख तर्क के रू–

करने का प्रयत्न करते रहे हैं।

फिर जब ऐल्बर्ट आइन्स्टीन अमरीकी सरकार की दुस्साहसवादी आक्रामक नीति के खिलाफ विरोध की आवाज उठानेवालो मे शामिल हो गये और इस तथ्य पर चिता व्यक्त करने लगे कि वैज्ञानिको के रचनात्मक प्रयत्नो के परिणामो को उस निकृष्ट अल्पसख्यक समूह ने हथिया लिया है जिसने पहले तो देश की आर्थिक और बाद मे राजनीतिक लगाम पर कब्ज़ा कर लिया है, तो उस ७५-वर्षीय वैज्ञानिक पर प्रतिगामी शक्तियो ने हर तरफ से हमला बोल दिया। लड़ाकू कम्युनिस्ट-विरोधी सीनेटर जोसेफ मैक्कार्थी ने उन्हे "अमरीका का शत्रु" घोषित कर दिया और उनके अनुयायियो ने उन पर "कम्युनिस्ट षड्यत्रकारी" का बिल्ला चिपका दिया। यही नही, एक अमरीकी शहर के 'चौकस औरते' नामक सगठन ने माग की कि आइन्स्टीन के "सापेक्षता सिद्धात" को चुनी हुई अन्य "६०० कम्युनिस्ट पुस्तको" के साथ ही जलाकर खाक कर दिया जाये!

ये तथ्य (और इनकी सख्या को अपरिमित रूप से बढाया जा सकता है) अंतर्विरोधी समाज की दशाओ मे सामाजिक-सास्कृतिक प्रगति की विशिष्ट प्रवृत्तियो को सुस्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।

प्रत्येक मालिक वर्ग विश्व इतिहास की केवल विशिष्ट अवधियो मे ही प्रगतिशील भूमिका अदा करता है और उसका अतिम अवसान इतिहास से पूर्वनिर्धारित होता है। यह आत्मिक सस्कृति की प्रगति मे वस्तुगत प्रवृत्तियो और किसी भी मालिक वर्ग के आत्मपरक हितो के सघर्ष की अवश्यभाविता का स्पष्टीकरण है। इस सघर्ष की जडे वर्ग-समाज मे सामाजिक प्रगति के स्वय सार मे ही निहित होती है और यह उसका एक विशिष्ट गुण होता है। जिस प्रकार से यह सघर्ष अवश्यभावी है उसी प्रकार से वर्ग-समाज मे सास्कृतिक विकास की प्रक्रिया पर इसका निर्धारक प्रभाव भी अवश्यभावी होता है।

इस सघर्ष का एक सीधा परिणाम अतर्विरोधी सरचनाओ मे सास्कृतिक विरासत के उपयोग की दोमुखी – प्रगतिशील व प्रतिगामी – है। और इस दोमुखी प्रकृति को निजी सपत्ति के सबधो का उन्मूलन ., यानी समाजवादी क्राति के बिना नही मिटाया जा सकता है।

दूसरा अध्याय

सांस्कृतिक क्रांति और सांस्कृतिक विरासत

सांस्कृतिक क्रांति का सार और उसकी वस्तुगत आवश्यकता

सामाजिक विकास के सामान्य नियमों की पडताल करते समय र्सवाद-लेनिनवाद मनुष्य के वस्तु-रूपातरणकारी कार्यकलाप पर ध्यान न करता है। मनुष्य के इस कार्यकलाप को केवल सामाजिक क्रांति- ी व्यवहार के रूप में ही समझा जा सकता है।

अपने व्यावहारिक क्रियाकलाप में मनुष्य समाज में परिवर्तन लाता है और उनके द्वारा स्वय अपने को परिवर्तित करता है। पूर्वधारणा के आधार पर मार्क्सवाद इस निष्कर्ष पर पहुचता है मनुष्य के बहुमुखी विकास के बगैर कम्युनिज्म नही हो सकता कम्युनिज्म के बगैर मनुष्य का बहुमुखी विकास नही हो सकता। र्स और एगेल्स ने कम्युनिज्म की परिभाषा एक ऐसे समाज के रूप ी जिसमे "प्रत्येक का मुक्त विकास सबके मुक्त विकास की शर्त होगी "* इस शताब्दी के प्रारंभ में लेनिन ने रूस की कम्युनिस्ट पार्टी गठन करते समय लिखा कि यह अपनी सारी शक्ति और ऊर्जा ऐसे समाज के निर्माण में लगायेगी जिसमें उसके समस्त सदस्यों र्ण कल्याण तथा बहुमुखी विकास ** को सुनिश्चित बनाने के सब कुछ किया जायेगा।

इससे स्वभावत यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृति की समस्याएं व्यक्तित्व के विकास की समस्याएं मार्क्सवाद-लेनिनवाद के ारको के लिए हमेशा एक केंद्रीय विषय रही है। उन्होंने कम्युनिज्म

---

* [illegible]

** [illegible]

मे इस्तेमाल कर सकें और एक नयी संस्कृति के विकास में प्रत्यक्ष भूमिका अदा कर सकें।

इसलिए सांस्कृतिक क्रांति, जैसा कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी उसे समझते हैं, कम्युनिज़्म के निर्माण की प्रक्रिया में समाज के संपूर्ण आत्मिक जीवन का आमूलचूल रूपांतरण है, जिसका उद्देश्य और अन्तर्वस्तु एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है। नये समाज की रचना की इस सारी प्रक्रिया को प्रभावित करनेवाला यह विशेष वस्तुगत नियम सार्विक है और इसका कम्युनिज़्म के निर्माण के पथ पर चलनेवाले प्रत्येक राष्ट्र के लिए आम महत्व है।

अंतर्विरोधी संरचनाओं के अंतर्गत, जैसा कि मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा है, "**आत्मा की संपूर्ण प्रगति, अब तक मानवजाति के अधिकांश जन-समूहों के विरुद्ध प्रगति है** जो उन्हें अधिकाधिक रूप से अमानवीय स्थिति में धकेलती रही है।"* ये शब्द विश्व संस्कृति के समाजवाद तक के सारे इतिहास में परिव्याप्त वास्तविक अंतर्विरोध के सार को व्यक्त करते हैं।

अंतर्विरोधी संरचनाओं में, एक तरफ, उत्पादन का विकास सामाजिक संपदा में वृद्धि करता है और, इस तरह, मनुष्य की मूल शक्तियों तथा उसकी रचनात्मक क्षमताओं के उद्घाटन व विकास के आवश्यक अवसर पैदा करता है। दूसरी तरफ, जिस हद तक सामाजिक उत्पादन का यह विकास श्रम के परस्पर विरोधी विभाजन की दशाओं में, अल्पसंक्रामित रूप में होता है, उस हद तक यह लोगों के क्रियाकलाप की उपलब्धि की भावना तथा रचनात्मकता के सुख से वंचित करते हुए, उन्हें बौद्धिक व नैतिक रूप से पंगु बना देता है।

रचनात्मकता मनुष्य का प्रजातिगत सार है और संस्कृति की "जीवितात्मा" मनुष्य के रचनात्मक क्रियाकलाप में निहित है। इसलिए अंतर्विरोधी संरचनाओं में संस्कृति का जो परकीयकरण होता है वह मुख्य रूप से रचनात्मकता का परकीयकरण है। परकीयकरण की इन दशाओं में जनता, श्रमजीवी जनगण निर्वैयक्तिक रूप में, यानी अपनी

---

* कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, ''पवित्र परिवार" अथवा आलोचनात्मक आलोचना की आलोचना', १८४५।

को प्रभावहीन बनाती, उसकी भावनाओं को कुंद करती तथा अन्त में उन्हे मशीनों के मात्र उपांगों की स्थिति में डाल देती है।

निस्सदेह, बुर्जुआ वर्ग को श्रमिकों के सास्कृतिक स्तर को बढाने के लिए थोडी "चिता" दिखानी होती है, परन्तु वास्तविक व्यवहार में यह सारी चिता उत्पादन की जरूरतो से परे नही जाती और सिद्धातत मशीनों को सुधारने की चिंता से मिलती-जुलती होती है। श्रमिकों को मशीनों का अतिरिक्त उपकरण बनाकर पूजीवादी श्रम-विभाजन श्रमिकों को स्वाधीनता से वचित कर देता है, उनके श्रम को गैर-रचनात्मक और पूर्णत यात्रिक क्रियाओ तक सीमित कर देता है। इन दशाओ मे, संस्कृति के विकास मे प्रत्येक व्यक्ति का योगदान पूरी तरह से भ्रातिजनक हो जाता है, जबकि श्रमिकों को अपने सम्मिलित रचनात्मक प्रयास कोई अज्ञात, अजीब चीज मे लगते है और व्यसक्रामित सपत्ति के रूप में उन्ही के विरुद्ध सधानित भी जान पडते हैं। इसके फलस्वरूप, ऐसे समाज मे मानव मस्तिष्क की बढती हुई शक्ति के साथ ही साथ स्वतःस्फूर्त सामाजिक विकास की ऐसी विनाशक शक्तिया और अधिक प्रबल हो जाती है जो मनुष्य के सचेत नियत्रण को नही मानती हैं। इसके अलावा, मनुष्य स्वय अपनी ही संस्कृति की उपलब्धियो के मानव-विरोधी, समाज-विरोधी अनुप्रयोग का साधन मे परिणत हो जाता है। टेक्नोलाजी और स्वचालन प्रक्रियाओ का विकास पूजीपति को और भी ज्यादा अमीर बनाते हुए श्रमिक के क्रियाकलाप को किसी भी रचनात्मक आयाम से महरूम कर देता है। इससे भी बुरी बात यह है कि यह स्वय मनुष्य को, मानवीय गुणो के अर्थ मे, अनावश्यक बना देता है।

जनसाधारण के सस्कृति परकीय होने की प्रक्रिया उत्पादन-क्षेत्र तक ही सीमित नही होती। यह उनके फालतू समय के क्रियाकलाप में भी आ घुसती है। फैक्टरी के दरवाजो के बाहर लोगो को "विश्राम-कालीन उद्योग" के वाहक-पट्टो मे हाक दिया जाता है और वहा वे लोग को मानकीकृत "आम सस्कृति" की भूलभुलैया फसा पाते है। यह "आम सस्कृति" हजारो लाखो की संख्या मे प्रसारित होनेवाले कॉमिको, हौलनाक फिल्मो, टेलिविजन के हानिकारक प्रभावो, आदि से बनी होती है। यह "आम सस्कृति" लोगो पर अपने घिसेपिटे

सम्पूर्णता मे सांस्कृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का विषय बन जाते है
जो सार्विक अतर्वस्तु को और प्रत्येक व्यक्ति के सामान्य सामाजिक पक्ष को
"अवशोषित" करती प्रतीत होती है।

उन दशाओ मे सांस्कृतिक प्रगति अत्यत अतर्विरोधी रूप धारण कर लेती है। होमो सैपियन्स (मानव प्रजाति) की योग्यताए श्रमजीवी जनो की बहुसख्या से उनकी रचनात्मकता को छीनकर, उन्हे उनसे वचित करके विकसित की जाती है। सभी अतर्विरोधी सरचनाओ मे शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच अतर्निहित अतर्विरोध अनिवार्यत श्रम और सुख के बीच, सास्कृतिक मूल्यो (वास्तविकीकृत सस्कृति) के विकास व विभाजन के एक विशिष्ट स्तर के रूप मे सभ्यता और सपूर्ण संस्कृति के बीच अतर्विरोध उत्पन्न करता है। यह सपूर्ण सस्कृति की पहली और सर्वोपरि विशिष्टता जनगण की सजीव, सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनात्मकता का विकास है, यानी वह सीमा है जहा तक ये मूल्य जनसाधारण के वस्तुरूपातरणकारी क्रियाकलाप के फलस्वरूप अवास्तवीकृत हो गये हैं।

पूजीवाद के युग मे यह अतर्विरोध विशेष रूप से तीव्र हो जाता है क्योकि उस युग मे सस्कृति से श्रमिक का परकीयकरण अपनी चरम सीमा पर पहुच जाता है। "उसका (यानी श्रमिक का – लेखक) विषय जितना अधिक सभ्य होता है, श्रमिक उतना अधिक बर्बर बन जाता है श्रम जितना जटिलतापूर्ण होता जाता है, श्रमिक उतना ही बुद्धिहीन और प्रकृति का उतना ही अधिक चाकर बनता जाता है।"*

इससे एक विरोधाभासी स्थिति पैदा हो जाती है एक ओर अपने विकास की प्रक्रिया मे पूजीवाद अधिकाधिक भौतिक व आत्मिक मूल्यो (जिससे, जैसा कि प्रतीत होता है, बौद्धिक और भावनात्मक विकास के अत्यत ऊचे स्तर वाले लोगो का उद्भव होना चाहिए) का उत्पादन करता है, दूसरी ओर, उसकी सफलताए "सर्जनात्मक" श्रमिको की एक ऐसी विराट फौज उत्पन्न कर देती है, जिन्हे ऐसी श्रम-प्रक्रियाओ मे जीवन बिताना होता है जो रचनात्मकता से अधिकाधिक वचित होती जाती है और धीरे-धीरे श्रमिको के अस्तित्व

---

* कार्ल मार्क्स, '१८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन सबधी पाडुलिपिया'।

की भी जो वर्तमान स्थिति को अस्थायी मानते है, उनका विश्वास है कि वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति अतत "जनसाधारण को उनकी सही जगह पर बैठा देगी," उन्हे एक आज्ञाकारी और निष्क्रिय भीड मे तबदील कर देगी तथा प्रबधको की, यानी वैज्ञानिक व तकनीकी विशिष्ट वर्ग की स्थिति को सुदृढ बना देगी।

इसके सर्वाधिक विशद सकेत अमरीका मे प्रकाशित तीन पुस्तको मे मिलते हैं, जिनका यहा हम विश्लेषण करने का प्रयत्न करेगे।

उनमे से एक के लेखक चार्ल्स रैच *(The Greening of America)* चेतना मे एक नयी क्राति का आह्वान लेकर आते हैं। उनके अनुसार, इस क्राति मे प्रत्येक व्यक्ति के रुझानो व दृष्टिकोण मे अलग-अलग और धीरे-धीरे परिवर्तन होगा। रैच जोर देकर कहते हैं कि इससे एक नयी चेतना का जन्म होगा जो नयी क्राति के, यानी सारे सामाजिक सबधो मे पूर्ण परिवर्तन के आधार का काम करेगी। यह क्राति प्रत्यक्ष राजनीतिक साधनो से नही, बल्कि सस्कृति को व्यक्तिगत जिंदगियो की गुणवत्ता को बदल कर सपन्न होगी, जो अपनी बारी मे राजनीति को बदलेगी और अत मे सरचना को।

इस सदर्भ मे रैच "मस्तिष्को की इस नयी क्राति" को यह कहकर सास्कृतिक क्राति के गुण प्रदान करते है कि "क्राति सास्कृतिक ही होनी चाहिए, क्योकि आर्थिक और राजनीतिक तत्र सस्कृति को नियत्रित नही करते, बल्कि सस्कृति ही उन्हे नियत्रित करती है।"

लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क मे यह क्राति कैसे होनी है और इसका सारतत्व क्या है?

इन प्रश्नो का उत्तर जेम्स एल० पीकॉक तथा ए० थोमस किर्श *The Human Direction. An evolutionary Approach to Social and cultural Anthropology* के लेखको ने पेश किया है। समाजो और सस्कृतियो का सिलसिलेवार विश्लेषण करते समय वे सास्कृतिक नृतत्व-वैज्ञानिक सामग्री को सामाजिक समस्याओ के साथ सहसबधित करने का प्रयत्न करते है और इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि "प्रत्येक नया सास्कृतिक नमूना जो सामाजिक आधुनिकता तथा जटिलता की प्रगति को सोद्देश्य बनाता है उस पुराने सास्कृतिक नमूने को 'मोहभग बना देता' है जिससे वह स्थानापन्न होता है।" इसके साथ ही वे यह

नमूने थोपती है और एक अनुरूप मानसिकता तथा सामाजिक भाव-शून्यता को जन्म देती है।

आज, "स्वतंत्र समाज" के सर्वाधिक उत्साही पक्षपोषक भी ऊपर वर्णित स्थिति से बेखबर नही रह सकते। पर इसके बावजूद वे बुर्जुआ सस्कृति के सकट को अपने वर्ग की स्थिति से स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं।

"आम सस्कृति" के इस दृष्ट सत्य का एक सर्वाधिक प्रचलित स्पष्टीकरण यह है कि "क्षमताहीन जनसाधारण" (तात्पर्य है श्रमिकों से), जो पहले "अपनी जगह को जानते थे", अब सामाजिक जीवन के विभिन्न नये क्षेत्रो मे घुस रहे हैं और इससे सस्कृति के वाहकों द्वारा स्थापित आदर्शों के पतित होने का खतरा पैदा हो रहा है।

जाहिर है कि ऐसे विचार मुख्य रूप से विभिन्न विशिष्ट वर्गीय सकल्पनाओं के अनुयायियो के हैं। सामाजिक भेदभावों का कारण अतर्जात क्षमताओ को बताकर या उसे विशिष्ट गैर-भौतिक कारको से जोड़कर एक "विशिष्ट वर्ग" तथा टेक्नोक्रेसी की सकल्पनाओ के विविध रूपों के अनुयायी वास्तव मे सामाजिक असमानता को चिरस्थायी बनाने की कोशिश करते हैं। उन्हे इससे कोई फर्क नही पडता कि वे शासन करने या अधीनस्थ रहने की "अतर्जात क्षमता" को कैसे स्पष्ट करते हैं, "क्रोमोसोमो मे निहित मजबूती से जड जमाये हुए आनुवशिक पदार्थ" के द्वारा या "पूर्वनिर्धारण" अथवा "ईश्वर की इच्छा" मे।

यह एक नैदानिक तथ्य है कि आज के कुछ बुर्जुआ सस्कृतिविदों का पश्चिम मे सस्कृति की स्थिति के बारे मे बहुत आलोचनात्मक रवैया है, और वे "मनुष्य के आत्मिक रूपातरण" की आवश्यकता को स्वीकार ही नही करते, बल्कि उस प्रक्रिया के नामकरण के लिए "सास्कृतिक क्राति" पद का उपयोग भी करते हैं, जिसका अर्थ वे "धार्मिक आत्मशुद्धि", "नैतिक शस्त्रीकरण" *(Moral Rearmament)*, आदि समझते है और "मानव चेतना के रूपातरणों" की ऐसी किस्म को सामाजिक विरोध मिटाने का आधार घोषित करते हैं।

सामाजिक प्रगति के विचार को ठुकराते हुए "सस्कृति के अवश्यभावी विनाश" तथा "सभ्यता के अत" की भविष्यवाणी करनेवाले निराशावादियों की भी यही दिग्भ्रम स्थिति है तथा उन आशावादियों

की भी जो वर्तमान स्थिति को अस्थायी मानते हैं, उनका विश्वास है कि वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति अंततः "जनसाधारण को उनकी सही जगह पर बैठा देगी," उन्हें एक आज्ञाकारी और निष्क्रिय भीड में तबदील कर देगी तथा प्रबंधकों की, यानी वैज्ञानिक व तकनीकी विशिष्ट वर्ग की स्थिति को सुदृढ बना देगी।

इसके सर्वाधिक विशद संकेत अमरीका में प्रकाशित तीन पुस्तकों में मिलते हैं, जिनका यहां हम विश्लेषण करने का प्रयत्न करेंगे।

उनमें से एक के लेखक चार्ल्स रैच *(The Greening of America)* चेतना में एक नयी क्रांति का आह्वान लेकर आते हैं। उनके अनुसार, इस क्रांति में प्रत्येक व्यक्ति के रुझानों व दृष्टिकोण में अलग-अलग और धीरे-धीरे परिवर्तन होगा। रैच ज़ोर देकर कहते हैं कि इससे एक नयी चेतना का जन्म होगा जो नयी क्रांति के, यानी सारे सामाजिक संबंधों में पूर्ण परिवर्तन के आधार का काम करेगी। यह क्रांति प्रत्यक्ष राजनीतिक साधनों से नहीं, बल्कि संस्कृति को व्यक्तिगत जिंदगियों की गुणवत्ता को बदल कर संपन्न होगी, जो अपनी बारी में राजनीति को बदलेगी और अंत में संरचना को।

इस संदर्भ में रैच "मस्तिष्कों की इस नयी क्रांति" को यह कहकर सांस्कृतिक क्रांति के गुण प्रदान करते हैं कि "क्रांति सांस्कृतिक ही होनी चाहिए, क्योंकि आर्थिक और राजनीतिक तंत्र संस्कृति को नियंत्रित नहीं करते, बल्कि संस्कृति ही उन्हें नियंत्रित करती है।"

लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में यह क्रांति कैसे होती है और इसका सारतत्व क्या है?

इन प्रश्नों का उत्तर जेम्स एल० पीकॉक तथा ए० थॉमस किर्श, *The Human Direction. An evolutionary Approach to Social and cultural Anthropology* के लेखकों ने पेश किया है। समाजों और संस्कृतियों का सिलसिलेवार विश्लेषण करते समय वे सांस्कृतिक नृतत्त्व-वैज्ञानिक सामग्री को सामाजिक समस्याओं के साथ सहसंबंधित करने का प्रयत्न करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि "प्रत्येक नया सांस्कृतिक नमूना जो सामाजिक आधुनिकता तथा जटिलता की प्रगति को सोद्देश्य बनाता है उस पुराने सांस्कृतिक नमूने को 'मौकातीत बना देता' है जिससे वह व्युत्पन्न होता है।" इसके साथ ही वे यह

लौटने की जरूरत है जो "सामाजिक एकजुटता की उपलब्धि का साधन" मुहैया करेगी।

इस सिलसिले मे केंद्राभिसरण सिद्धात को संस्कृति के क्षेत्र मे लागू करने के विभिन्न प्रयत्नो पर विचार करना विशेष दिलचस्प होगा।

समसामयिक वैज्ञानिक व तकनीकी क्राति के परिणामस्वरूप सभी समाजो मे होनेवाली कुछ मिलती-जुलती घटनाओ का फायदा उठाकर चद बुर्जुआ समाजशास्त्री यह दावा करते हैं कि विज्ञान और टेक्नोलाजी के विकास से श्रमिको के सास्कृतिक स्तर मे बढती तथा सार्विक माध्यमिक शिक्षा का समारभ होता है जिससे वैज्ञानिको, इजीनियरो तथा दफ्तरी कर्मचारियो की सख्या मे तेजी से बढती होती है और यह "एकीकृत औद्योगिक" "उत्तर-औद्योगिक", आदि समाजो के उद्भव का एक मुख्य कारण होता है।

"एकीकृत सास्कृतिक प्रणालियो" के निर्माण के सारे प्रयत्न इसी पूर्वधारणा से सबधित हैं। मिसाल के लिए, इस सिलसिले मे पितिरिम सोरोकिन कहते हैं कि उभरते हुए समाज व सस्कृति का प्रभावी प्रकार न तो पूजीवादी हो सकता है, न कम्युनिस्ट, बल्कि एक अपने ही ढग का ऐसा प्रकार हो सकता है जिसे हम एकीकृत प्रकार कह सकते हैं। उनकी राय में यह "नये प्रकार की सस्कृति" "एक एकीकृत सास्कृतिक मूल्यो, सामाजिक सस्थानो और ऐसे एकीकृत प्रकार के व्यक्तित्व वाली एक सयुक्त प्रणाली होगी जो पूजीवादी तथा कम्युनिस्ट नमूनो से मूलत भिन्न" होती। परतु इसके बावजूद न तो सोरोकिन और न "केंद्राभिसरण सिद्धात" के अन्य पक्षपोषक उस निजी सपत्ति सबधो के क्षेत्र मे आमूल परिवर्तन का कोई प्रश्न उठाते हैं जो बुर्जुआ समाज की सपूर्ण अर्थव्यवस्था और राजनीति मे परिव्याप्त है। इस तरह से वे अन्यसक्रामण की उस अवस्था को स्थायी बनाते हैं, जिसने उन प्रक्रियाओ को सभव बनाया, जो अतर्विरोधी सरचनाओ के सपूर्ण इतिहास के दौरान काम करती रही है। इसलिए "एक नये प्रकार की सस्कृति की रचना" करने के सारे आह्वान व्यर्थ हैं।

यद्यपि इन सिद्धातो के प्रतिपादकगण परिस्थितिजन्य तथ्यो के कारण यह स्वीकार करने को बाध्य है कि समसामयिक बुर्जुआ सस्कृति की दशा सकटापन्न है और समाजवादी सस्कृति ने कुछ सफलताए हासिल की

है, लेकिन उन्हे यह निष्कर्ष निकालने की कोई जल्दी नही है कि पूंजीवादी प्रकार की संस्कृति का पतन अनिवार्य है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नही है कि इस प्रकार के दृष्टिकोण से सांस्कृतिक क्रांति को या तो कम विकसित देशों के लिए आवश्यक प्रक्रिया माना जाता है (लेकिन इस मामले मे यह पूर्णत प्रबोधन तक ही सीमित है), या पूंजीवादी जगत् मे "आम संस्कृति" का फैलाव समझा जाता है।

कुछ बुर्जुआ समाजशास्त्री यह दावा करते है कि "आम संस्कृति" को आधुनिक मनुष्य के आत्मिक जीवन के विकास मे निर्णायक भूमिका अदा करनी है। वे ज़ोर देकर कहते हैं कि संस्कृति के सामूहिक फैलाव के कारण सांस्कृतिक मूल्यो का जो अवमूल्यन हुआ है वह संस्कृति के जनतंत्रीकरण की अस्थायी कीमत है और भावी सांस्कृतिक विकास की वस्तुत अपरिहार्य पूर्वशर्त है। वे तर्क पेश करते हैं कि सामूहिक संचार साधनों से समाज एक समष्टि में एकीकृत हो गया है और कि जो उपलब्धियां पहले ऊपरी वर्गों की थी वे आज सबको सुलभ हैं।

परन्तु व्यवहार मे "आम संस्कृति" के फैलाव का अर्थ सांस्कृतिक क्रांति के अर्थ मे बिल्कुल उल्टी चीज है। "आम संस्कृति" का उद्भव आत्मिक उपभोग के बढ़ते हुए पैमाने के साथ घनिष्ठता से जुड़ा है, जिसका स्पष्टीकरण फालतू समय मे बढ़ोतरी तथा जन संचार साधनों का ऐसी स्थिति मे विकास है जिसमे जीवन के राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों मे हावी वर्ग सांस्कृतिक उत्पादन के क्षेत्र मे अपने प्रभुत्व को बरकरार रखने तथा जनता मे संस्कृति के फैलाव को नियंत्रित करने के लिए प्रयत्नशील है। यही वह चीज है, जो निम्न स्तर की उस "आम संस्कृति" की बाढ़ के स्रोतों का संकेत देती है, जिसे [illegible] के अनुरूप बनाया गया है और जो उन्हे [illegible] है और [illegible] को [illegible] करती है। "आम संस्कृति" [illegible] जनता को [illegible] [illegible] और [illegible] संस्कृति की ही [illegible] [illegible] है।

"आम संस्कृति" [illegible]
[illegible]
[illegible]

वह संस्कृति है जो युगो पुरानी मानवीय संस्कृति की सर्वोत्तम परंपराओं पर आधारित है। फलत , यद्यपि पूजीवाद की दशाओ के अतर्गत यह संस्कृति बहुत हद तक जनसाधारण की पहुच के बाहर है, तथापि यह वस्तुत जनगण के रचनात्मक क्रियाकलाप का फल और संपूर्ण समाज के स्वात्म-बोध की अभिव्यक्ति है।

वास्तव में "आम संस्कृति", जो पूजीवादी समाज में अतर्निहित अन्तर्विरोधो की प्रत्यक्ष और अत्यत सुस्पष्ट अभिव्यक्ति है, संस्कृति को उसकी मानवतावादी अतर्वस्तु से महरूम करती है, उसे थोथा बनाती है और केवल कलात्मक रुचियो व सौदर्यात्मक आवश्यकताओ को स्पष्टत नीचा ही नही गिराती, बल्कि सारी संस्कृति को भी दूषित करती है। "आम संस्कृति" सर्वसाधारण की चेतना को एक निश्चित "मझोले स्तर" तक विकसित करने के लिए बनायी गयी है। इसके निर्माताओ को कुछ सामाजिक श्रेणियो की निष्क्रियता का भरोसा होता है। वे अस्तित्वमान वास्तविकता के सदर्भ में उपभोक्ता की अनुकूलनीयता का प्रचार करते हैं और इस प्रकार अतत उदासीनता तथा निस्पृहता को जन्म देते है।

इसके विपरीत, मार्क्सवादी-लेनिनवादी जिसे सांस्कृतिक क्रांति समझते है, उसमे मानवीय कार्यकलाप के किसी भी अन्यसंक्रामित रूपो को अलग हटाने और, फलत , जन-समुदायो मे संस्कृति के युगो पुराने बिलगाव को समाप्त करने की पूर्वकल्पना की जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सांस्कृतिक क्रांति एक समाजवादी क्रांति के बिना क्यों अकल्पनीय है जिसका सार आत्मिक उत्पादन की संपूर्ण प्रणाली के आमूलचूल रूपातरण में, व्यक्तित्व के बहुमुखी सामंजस्यपूर्ण विकास और प्रत्येक व्यक्ति को संस्कृति की ऐतिहासिक प्रक्रिया का एक सचेत विषयी बनाने में निहित है।

समाजवादी क्रांति का मूल अर्थ तथा इसके लक्ष्यो के सफल कार्यान्वयन की अपरिहार्य पूर्वशर्त यह है कि यह प्रत्येक व्यक्ति के विकासार्थ मार्ग प्रशस्त कर देती है और श्रमिको के, लेनिन के अनुसार "निम्नतम स्तरो सहित," * संपूर्ण समुदाय को स्वाधीन, सक्रिय तथा सामाजिक

* व्ला० इ० लेनिन 'एक लोक-लेखक की डायरी से' १९१७।

है, लेकिन उन्हें यह निष्कर्ष निकालने की कोई जल्दी नहीं है कि पूंजीवादी प्रकार की संस्कृति का पतन अनिवार्य है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इस प्रकार के दृष्टिकोण से सांस्कृतिक क्रांति को या तो कम विकसित देशों के लिए आवश्यक प्रक्रिया माना जाता है (लेकिन इस मामले में यह पूर्णतः प्रबोधन तक ही सीमित है), या पूंजीवादी जगत् में "आम संस्कृति" का फैलाव समझा जाता है।

कुछ बुर्जुआ समाजशास्त्री यह दावा करते हैं कि "आम संस्कृति" को आधुनिक मनुष्य के आत्मिक जीवन के विकास में निर्णायक भूमिका अदा करनी है। वे जोर देकर कहते हैं कि संस्कृति के सामूहिक फैलाव के कारण सांस्कृतिक मूल्यों का जो अवमूल्यन हुआ है वह संस्कृति के जनतंत्रीकरण की अस्थायी कीमत है और भावी सांस्कृतिक विकास की वस्तुतः अपरिहार्य पूर्वशर्त है। वे तर्क पेश करते हैं कि सामूहिक संचार साधनों से समाज एक समष्टि में एकीकृत हो गया है और कि जो उपलब्धियां पहले ऊपरी वर्गों की थीं वे आज सबको सुलभ हैं।

परंतु व्यवहार में "आम संस्कृति" के फैलाव का अर्थ सांस्कृतिक क्रांति के अर्थ से बिल्कुल उल्टी चीज है। "आम संस्कृति" का उद्भव आत्मिक उपभोग के बढ़ते हुए पैमाने के साथ घनिष्ठता से जुड़ा है, जिसका स्पष्टीकरण फालतू समय में बढ़ोतरी तथा जन-संचार साधनों का ऐसी स्थिति में विकास है जिसमें जीवन के राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में हावी वर्ग सांस्कृतिक उत्पादन के क्षेत्र में अपने प्रभुत्व को बरकरार रखने तथा जनता से संस्कृति के विलगाव को चिरस्थायी बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। यही वह चीज है, जो निम्न स्तर की उस "आम संस्कृति" की बाढ़ के स्रोतों का संकेत देती है, जिसे संस्कृति-हीन रुचियों के अनुकूल बनाया गया है, जो उन्हें फैलाती है और अधिकांशतः पश्चिमी जगत् के आत्मिक चरित्र को प्रतिबिंबित करती है। "आम संस्कृति" की यह विनाशकारी बाढ़ जनता को संचार के बाहर रखकर क्लासिकी और आधुनिक संस्कृति की ही उपलब्धियों को खतरे में डाल रही है।

"आम संस्कृति" के सिद्धांतकार इन उपलब्धियों का वर्णन "विशिष्ट वर्गों की संस्कृति" कहकर करते हैं, यह परिभाषा बुनियादी तौर से गलत है, क्योंकि तथाकथित "उच्च संस्कृति" ही वस्तुतः

सांस्कृतिक प्रगति के मुख्य लक्षण को उद्घाटित करती है। स्पष्ट
कि सांस्कृतिक क्रांति के सार की ऐसी परिभाषा यह संकेत देती है
यह क्रांति जटिल और दीर्घकालिक प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य नये सम
के सारे आत्मिक पूर्वाधारों की रचना करना है, ज़ाहिर है कि यह
सांस्कृतिक विरासत के सक्रिय आत्मसातकरण के आधार पर ही
हो सकता है।

समाजवादी क्रांति का विश्व ऐतिहासिक महत्व इस तथ्य में नि
है कि यह निजी संपत्ति पर आधारित संबंधों का उन्मूलन करके
आर्थिक दशाओं को खत्म कर देती है जो अन्यसंक्रामण को जन्म
है। अन्यसंक्रामित श्रम तथा निजी संपत्ति, जो कभी (मानी कम वि
सित उत्पादन की दशाओं में) सामाजिक प्रगति के कारक थे, मु
नये सामाजिक संबंधों और एक ऐसी सामाजिक प्रणाली में संक्रमण
वस्तुगत रूप से मार्ग प्रशस्त करते हैं जो "एक सामाजिक (
मानवीय) सत्व के रूप में स्वयं की ओर मनुष्य की पूर्ण वापसी
ऐसी वापसी को सुनिश्चित बनाती है जो सचेत रूप से संपन्न की
है तथा अपने से पहले के विकास की संपूर्ण संपदा को आवेष्टित
ती है।"*

मार्क्स के इस निष्कर्ष के महत्व को कम करके आंकना अ
है। यह समाजवादी क्रांति के सार को ही परिभाषित कर देता
मानवीय क्रियाकलाप के रूप के अन्यसंक्रामण को दूर करना। यह स
वाद और कम्युनिज्म के निर्माण की प्रक्रिया में पूरी की जाने
सांस्कृतिक क्रांति के लक्ष्य को निरूपित करता है एक सामंज
व सर्वांगीण विकसित व्यक्तित्व की रचना करना। यह उस आध
पक्ष की ओर संकेत करता है जो कम्युनिज्म के निर्माण की विशि
है, यानी सचेत क्रियाकलाप। और अंत में, यह अतीत के यु
सांस्कृतिक विरासत के प्रति कम्युनिज्म के रवैये को असाधारण
से उजागर कर देता है–"पहले के विकास की संपूर्ण संपदा को
ष्टित करना।"

अंतर्विरोधी समाज से कम्युनिस्ट संरचना की प्रारंभिक

---

* कार्ल मार्क्स, १८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पांडुलिपियां'।

दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनात्मकता मे शामिल कर देती है। इस लक्ष्य को, जिसमें संपूर्ण राष्ट्र को तथा खास तौर से प्रत्येक व्यक्ति को सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के सचेत विषयी मे परिवर्तित कर दिया जाता है, समाजवादी राज्य की संस्थापना के दिन से ही उसकी संपूर्ण सामाजिक व सांस्कृतिक नीति का आधार बना दिया गया था। यह विशेष लक्ष्य सांस्कृतिक क्रांति की, जो इसकी उपलब्धि के लिए आवश्यक पूर्वाधारों की रचना करती है, दिशा और अंतर्वस्तु को निर्धारित करता है।

ऐसा लक्ष्य निजी संपत्ति और वर्ग विरोधों पर आधारित समाज में अकल्पनीय है। इस लक्ष्य की स्थापना तथा प्राप्ति कम्युनिस्ट आदर्शों के क्रियान्वयन के साथ आंगिक रूप से जुडी है। यह सांस्कृतिक क्रांति को समाजवादी तथा कम्युनिस्ट समाज के निर्माण का सार्विक तथा प्रत्येक देश के लिए अनिवार्य नियम बना देता है, चाहे उस देश के श्रमजीवी लोगो को यह निर्माण किसी भी औद्योगिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्तरो से शुरू क्यो न करना पड़े।

२. समाजवादी क्रांति में सांस्कृतिक विरासत को आत्मसात करने की विशिष्टताएं

कम्युनिज्म एकमात्र ऐसी सामाजिक-आर्थिक संरचना है जिसका उद्भव, स्थापना और विकास अपने इतिहास के सचेत निर्माता की भूमिका को ग्रहण करते हुए जनसाधारण के [illegible] के कार्यान्वयन मे निहित है और यह समाज तथा व्यक्ति के बीच [illegible] की रचनात्मक शक्तियो के [illegible] रूप मे [illegible] तथा [illegible] के, जिसे अन्तर्विरोधी समाज मे इन शक्तियो से [illegible] है, [illegible] 'मानवता' [illegible] की पूर्वापेक्षा [illegible] करना है।

जैसा कि हम पहले ही [illegible]

के रूप मे समाजवाद मे संक्रमण मानवजाति के पूर्व-इतिहास से उसके सच्चे, रचनात्मक इतिहास में सक्रमण है।

उत्पादन के साधनो पर सामाजिक स्वामित्व सामाजिक श्रम-विभाजन की विरोधी प्रकृति का उन्मूलन कर देता है और, फलत, यह विभिन्न वर्गों और सामाजिक श्रेणियो के बीच विरोधी अंतर्विरोधो को मिटा देता है। विरोध सामाजिक प्रगति का मुख्य प्रेरक बल नही रहता और एक नये प्रकार के सामाजिक विकास का उद्भव होता है, जिसकी लाक्षणिकता मूलत गैर-विरोधी उद्दीपन होता है।

ऐसी स्थिति मे प्रगति समाज के एक अग की कीमत पर दूसरे के हितो तक सीमित नही रहती, जैसा कि पहले हुआ करता था, बल्कि सपूर्ण समाज के हित मे होती है, अत, समाज की रचना करने वाले समस्त समूहो के हित मे होती है। उससे समाज और व्यक्ति के बीच विरोध को, जो शोषक सामाजिक-आर्थिक सरचना का उत्पाद है, मिटाने के लिए आवश्यक आधार बन जाता है। जहा समाजवाद के अतर्गत समाज गुणात्मक रूप से भिन्न आर्थिक आधार पर विकसित होता है और समाज का प्रत्येक सदस्य उसकी तीव्र तरक्की में वस्तुगत दिलचस्पी लेता है, वहा लोगो को पूजीवादी शासन के अतर्गत खोजे गये सामाजिक विकास के नियमो के व्यावहारिक उपयोग का और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे "आवश्यकता के राज्य से स्वतत्रता के राज्य मे छलाग लगाने" का वास्तविक अवसर प्राप्त हो जाता है विज्ञान-आधारित तथा अतीत मे मानवजाति को कई शताब्दी पतन के स्तर मे धकेल देनेवाले पतन छलागो से मुक्त नियोजित विकास स्वत-स्फूर्त विकास को उसकी सहवर्ती दीर्घकालिक मदियो और गतिरोधो सहित प्रतिस्थापित कर देता है। इन कारणो से समाजवादी समाज की दशाओ मे प्रगति सर्वतोमुखी प्रकृति ग्रहण कर लेती है।

समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण की प्रक्रिया मे होनेवाले आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन और श्रम विभाजन के विरोधी रूपो से मनुष्य की मुक्ति "जनता" की सरचना मे परिवर्तन ला देती है अब इस सरचना मे समाज के सारे सस्तर सम्मिलित हो जाते है और उसकी "[illegible]" की प्रवृत्ति मे अभिव्यक्त हो जाती है। इन सब बातो का [illegible] अर्थ यह है कि [illegible] जनता की [illegible]

युगो की संस्कृति के आत्मिक मूल्यो को आत्मसात करने का बेहतर अवसर ही नही देता, बल्कि संस्कृति के प्रति लोगो के रवैये मे भी गुणात्मक परिवर्तन पैदा कर देता है। मानवीय क्रियाकलाप के अन्य-संक्रमित रूपो से "मानवीकृत मनुष्य" की ओर, जनता के आत्मिक उत्पादन के अप्रत्यक्ष रूपो से सास्कृतिक क्रियाकलाप मे संपूर्ण जनता की और, खास तौर से, प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता की ओर छलांग लगती है और एक नये प्रकार की संस्कृति साकार हो जाती है – कम्युनिस्ट सामाजिक-आर्थिक संरचना की संस्कृति।

मानवजाति के सास्कृतिक विकास मे इस छलाग का प्रत्यक्षीकरण कई सैद्धातिक समस्याओ के सही समाधान के बगैर अकल्पनीय हैं। इनमे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण समस्या "पहले के विकास की सपूर्ण सपदा" पद की समुचित समझ है।

एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी के लिए पहले के विकास की आत्मिक सपदा के मूल्याकन की एकमात्र कसौटी यह है कि विश्व संस्कृति के संपूर्ण इतिहास मे रचे गये मूल्यो तथा समाज की प्रगति के वस्तुगत नियमो के बीच किस मात्रा मे अनुरूपता विद्यमान है, इन मूल्यो के द्वारा सामाजिक जीवन के भौतिक आधार के विकास की प्रक्रिया मे उत्पन्न होनेवाले लक्ष्य कितनी उपयुक्तता से व्यक्त होते हैं तथा उनको किस हद तक सामाजिक विकास की व्यावहारिक समस्याओ को हल करने के लिए सिद्धाततः इस्तेमाल किया जा सकता है।

सामाजिक प्रगति की यह कसौटी हमे किन्ही भी आत्मिक मूल्यो के महत्व का, उनकी रचना की अवधि ही के लिए नही, बल्कि आधुनिक समाज के लिए भी, सही-सही वैज्ञानिक मूल्याकन करने मे समर्थ बनाती है।

आजकल, दो अतर्विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ के संघर्ष की विशिष्ट स्थिति मे, जिसमे विश्व कम्युनिज्म और विश्व पूजीवाद के भाग्यो का फैसला हो रहा है, सामाजिक प्रगति की कसौटी से हम मनुष्यजाति के भविष्य के लिए प्रत्येक वैज्ञानिक, कलाकार या किसी भी अन्य संस्कृति कर्मी की रचनात्मकता के सच्चे वस्तुगत महत्व का निर्धारण कर सकते है। इस कसौटी को हम आत्मिक संस्कृति के किसी भी क्षेत्र पर लागू क्यों न करे, यह हमेशा सही उतरती है। नैतिकता

नक अनुयायियो द्वारा 'न्याय-संघ' के जरिए अपने सकीर्णत
यूटोपियाई कम्युनिज्म को धार्मिक-रहस्यवादी रूप प्रद
वजूद इसका एगेल्स के शब्दो मे "जर्मन सर्वहारा के पह
द्वातिक आदोलन के रूप मे" निश्चय ही एक सकारात्म
सर्वहारा आदोलन की विचारधारा के साथ प्राचं
ो द्वारा प्रस्तुत विचारो के ऐतिहासिक सातत्य पर विचा
हुए इस *बात को याद करना चाहिए कि जर्मनी की कम*
ने अपने गठन की प्रारंभिक अवधि मे इस सपर्क के प्रत
ा नाम (स्पार्टकस लीग) रखा था।
हा आत्मिक संस्कृति मे जनतात्रिक परपराओ का सात
ा अविवादास्पद है, वहा पहले के शासक वर्गों की औ
, बुर्जुआ समाज की प्रभावी संस्कृति के प्रति समाजवा
मे की समस्या सैद्धातिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टि
क पेचीदा है।
समाजवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर संस्कृति
ी मानवजाति के आत्मिक उत्पादन का इतिहास है ज।
दन के क्षेत्र मे होनेवाले परिवर्तनो के आधार पर विकसित
सुधरता है। यदि हम वस्तुगत प्रगतिशील विकास की
ा व्यापकतम सभव दृष्टि से देखे, तो यह दो अतर्संबधित
द्वात्मक एकता के सिवा और कुछ नही है।
ह तो, किसी भी नयी पीढ़ी को शून्य से शुरुआत नही
क्योंकि वह उन सास्कृतिक मूल्यो (भौतिक व आत्मिक
ने अपना बना लेती है जिन्हे उसने पूर्ववर्ती पीढ़ियों मे
या है। इस तरह सास्कृतिक सातत्य पूर्ववर्ती पीढ़ियो की
स्तर को अपनाने और आत्मसात करने में व्यक्त होता
र्ती पीढ़ियो ने सास्कृतिक मूल्यो मे, सास्कृतिक विरासत
ा "वास्तवीकृत" किया। पहले के युगो के सास्कृतिक
ानव चिन्तन की रचनात्मक ऊर्जा तथा उनमे सकेद्रित श्रम
करके लोग उसे अपनी सपदा बनाते है और एक सक्रिय
र करके अपनी आगे की उन्नति के लिए काम मे लाते है।

पर इसके अनुप्रयोग को लेनिन ने निम्नांकित तरीके से निरूपित कि
था " नैतिकता वह है जो पुराने शोषक समाज को नष्ट करने
समस्त श्रमजीवी जनों को सर्वहारा के, जो एक नये कम्युनिस्ट सम
का निर्माण कर रहा है, गिर्द एकजुट करने का काम करती है,
"कम्युनिस्ट नैतिकता कम्युनिज्म के दृढ़ीकरण तथा निष्पत्ति के लि
संघर्ष पर आधारित है।"**

सामाजिक प्रगति की वस्तुगत कसौटी को विश्व संस्कृति के इतिह
पर लागू करने पर हम सांस्कृतिक विरासत के मूल्यांकन तथा उपय
से संबंधित सैद्धांतिक और व्यावहारिक समस्याओं को सही-सही
से हल कर सकते हैं।

इस कसौटी को लागू करने पर हम सबसे पहले और सर्वोपरि
रूप से सातत्य की प्रगतिशील प्रकृति को उद्‌घाटित करते हैं जो विश्व
संस्कृति में जनतांत्रिक प्रवृत्ति के विकास का एक लक्षण थी। जहां तक
उत्पीड़ित वर्गों के मुक्ति-संघर्ष ने समाज के अनवरत जारी विकास में,
अपने भ्रमों तथा त्रुटियों के बावजूद प्रगतिशील भूमिका अदा की, वहां
तक श्रमजीवी समुदायों द्वारा उन संपूर्ण शताब्दियों के दौरान रचित
आत्मिक मूल्य उन लोगों के लिए एक मूल्यवान विरासत हैं जो समाज-
वादी क्रांति में विजयी होकर निकले हैं।

इस तरह से, प्राचीन पूर्व के देशों में सामाजिक असमानता के
विरुद्ध प्रतिरोध के जो विचार उपजे थे उन्हें प्रारंभिक मसीही मत ने
अपने इतिहास द्वारा सीमित धार्मिक रूप में ग्रहण किया था। मसीही
मत जो प्राचीन रोम के गुलामों तथा स्वतंत्र बनाये गये गुलामों के बीच
पनपा था उसे बाद में शासक वर्गों ने अपना लिया। पर प्रारंभिक मसीही
मत के मानवतावादी विचारों को सामंती किसानों की क्रांतिकारी विचार-
धारा द्वारा और अधिक विकसित किया गया (यहां जैकरे और जॉन
हसवादी आंदोलन की याद दिलाना काफी होगा) और सर्वहारा के
क्रांतिकारी आंदोलन की प्रारंभिक अवस्था में भी उन्होंने एक बड़ी
भूमिका अदा की। मिसाल के लिए, 'न्याय-संघ' को ले लीजिये

---

* ब्ला० इ० लेनिन, 'युवक संघों के कार्यभार', १९२०।

** वही।

जिसका आदर्शवाक्य था "सारे लोग भाई-भाई है।" विल्हेल्म वाइट्लिंग तथा उनके अनुयायियो द्वारा 'न्याय-सघ' के जरिए अपने सकीर्णतावादी और यूटोपियाई कम्युनिज्म को धार्मिक-रहस्यवादी रूप प्रदान करने के बावजूद इसका एगेल्स के शब्दो मे "जर्मन सर्वहारा के पहले स्वयंस्फूर्त सैद्धातिक आदोलन के रूप मे" निश्चय ही एक सकारात्मक महत्व था। सर्वहारा आदोलन की विचारधारा के साथ प्राचीन जगत् मे दासो द्वारा प्रस्तुत विचारो के ऐतिहासिक सातत्य पर विचार-विमर्श करते हुए इस बात को याद करना चाहिए कि जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने गठन की प्रारंभिक अवधि मे इस सपर्क के प्रतीक रूप मे अपना नाम (स्पार्टक्स लीग) रखा था।

परतु जहा आत्मिक सस्कृति मे जनतात्रिक परपराओ का सातत्य स्वयसिद्ध तथा अविवादास्पद है, वहा पहले के शासक वर्गों की और खास तौर से, बुर्जुआ समाज की प्रभावी सस्कृति के प्रति समाजवादी राष्ट्र के रवैये की समस्या सैद्धातिक और व्यावहारिक दोनो दृष्टियो से कही अधिक पेचीदा है।

सामान्य समाजवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर सस्कृति का इतिहास सपूर्ण मानवजाति के आत्मिक उत्पादन का इतिहास है जो भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे होनेवाले परिवर्तनो के आधार पर विकसित होता है और सुधरता है। यदि हम वस्तुगत प्रगतिशील विकास की क्रियाविधि को व्यापकतम सभव दृष्टि से देखे तो यह दो अतर्संबधित कारको की द्वद्वात्मक एकता के सिवा और कुछ नही है।

एक तरह तो किसी भी नयी पीढी को शून्य से शुरूआत नही करनी पडती, क्योकि वह उन सास्कृतिक मूल्यो (भौतिक व आत्मिक दोनो ही) को अपना बना लेती है जिन्हे उसने पूर्ववर्ती पीढियो से विरासत मे पाया है। इस तरह सास्कृतिक सातत्य पूर्ववर्ती पीढियो की उस रचनात्मकता को अपनाने और आत्मसात करने मे व्यक्त होता है जिसे पूर्ववर्ती पीढियो ने सास्कृतिक मूल्यो मे सास्कृतिक विरासत मे सचित तथा आत्मसात्कृत किया। पहले के युगो के सास्कृतिक मूल्यो मे जो मानव विकास की रचनात्मक ऊर्जा तथा उसमे सर्वोत्तम श्रम को निरूपित करते है, लोग उसे अपनी सम्पदा बनाते है और उसे सचित रूप मे सरक्षित करके अपनी आगे की उन्नति के लिए काम मे लाते है।

मान किया है : "मनुष्य", "लोग", "नयी पीढ़िया" (मिसाल के लिए, 'जर्मन विचारधारा' की याद करना पर्याप्त होगा "इद्रिय-ग्राह्य जगत् एक ऐतिहासिक उत्पाद है, अपने उद्योग और उसके अन्तर्व्यवहार को विकसित करती पीढ़ियो के, जिनमे से प्रत्येक अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी के कधो पर खडी होती है, एक सपूर्ण अनुक्रम के क्रिया-कलाप का फल है।") यह बोधगम्य है, बशर्ते कि हम इस तथ्य को ध्यान मे रखे कि यहा हमारा सबध मानव समाज के सपूर्ण इतिहास पर लागू होनेवाले वस्तुगत नियम से, एक सामान्य समाजवैज्ञानिक प्रवर्ग के रूप मे जनता से है। इस सिलसिले मे हम लोगो की निर्णायक भूमिका पर, विश्व इतिहास मे उनके उत्पादन, सामाजिक-राजनीतिक और आत्मिक क्रियाकलाप पर, समाज के विकास मे उनकी बढती हुई भूमिका, आदि पर विचार करते है।

इसके साथ ही मार्क्स और लेनिन ने अनेकानेक बार इस पर जोर दिया है कि जिस प्रकार "सामान्य जनता" जैसी चीज नही होती उसी प्रकार "सामान्य मनुष्य" भी नही होता. उनका अभिकथन था कि "जनता" हमेशा एक ठोस ऐतिहासिक सकल्पना होती है। वर्ग-समाज मे जनता वर्गों की, सामाजिक सस्तरो की तथा अन्य सामाजिक समूहो की सघटक है जो भिन्न-भिन्न सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे भिन्न-भिन्न होते है। पर इसके बावजूद दास-स्वामी समाज सामती तथा पूजीवादी समाज मे जनसमुदाय सामाजिक दृष्टि से कितने ही भिन्न क्यो न हो, उनका मूलाधार हमेशा भौतिक मूल्यो के प्रत्यक्ष उत्पादक ही होते है, क्योकि समाज का अस्तित्व तथा विकास स्वय उनके श्रम पर आश्रित होते है।

चूकि सास्कृतिक क्रियाकलाप उन ठोस सामाजिक समूहो के कर्मों का परिणाम होता है जो भिन्न सरचनाओ मे भिन्न होते है इसलिए सामाजिक इतिहास की प्रत्येक अवस्था मे सस्कृति का एक विशेष रूप होता है। दूसरे शब्दो मे प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक सरचना की अपनी ही अन्तर्निहित एव इतिहास द्वारा निश्चित भौतिक व आत्मिक उत्पादन-पद्धति होती है। मार्क्स ने लिखा था "आत्मिक उत्पादन की विभिन्न किस्मे पूजीवादी उत्पादन-पद्धति के तथा मध्य युगो की उत्पादन-पद्धति के अनुरूप होती है। यदि स्वय भौतिक उत्पादन को उसके विशिष्ट

दूसरी तरफ, पूर्ववर्ती पीढ़ियों से विरासत में प्राप्त भौतिक और आत्मिक संस्कृति को आत्मसात करने के बाद उसे अपनानेवाले लोग आगे के उत्पादन के लिए, नये सांस्कृतिक मूल्यों की रचना के लिए उसे महज कच्चे माल के रूप में देखते हैं।

फलत, समाज के सांस्कृतिक विकास की दोहरी प्रक्रिया में सातत्य के कारक को महज रूढ़िवादी तथा नये मूल्यों के उत्पादन के कारक को महज ऐसे पक्ष के रूप में नहीं देखना चाहिए जो पहले की सारी उपलब्धियों का केवल निषेध भर करता है। इसके विपरीत, मानवजाति पहले से ही उपलब्ध परिणामों के संरक्षण की आवश्यकता के ही नाम पर अन्य तत्वों तथा अतीत की उपलब्धियों को एक साथ त्यागने के लिए बाध्य हो जाती है। दूसरे मामले में नये सांस्कृतिक मूल्यों की रचना बहुधा अतीत के उन मूल्यों को बनाये रखने की जरूरत के कारण अनिवार्य होती है जिनका महत्व आनुक्रमिक पीढ़ियों के लिए कम नहीं हुआ है। "लोग उसका परित्याग कभी नहीं करते जो उन्होंने जीतकर पाया है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वे उस सामाजिक रूप का कभी परित्याग नहीं करते जिसमें उन्होंने कुछ शक्तियों का अभिग्रहण किया है। इसके विपरीत, जब वाणिज्य को जारी रखने की पद्धति अभिगृहीत उत्पादक शक्तियों के अनुरूप नहीं रह जाती तब वे प्राप्त परिणामों में वंचित न होने तथा सभ्यता के फलों को न गंवाने के लिए अपने सारे पारंपरिक सामाजिक रूपों को बदलने के लिए बाध्य होते हैं।"* यह नियम आत्मिक उत्पादन के लिए भी बिल्कुल सही है पूर्ववर्ती पीढ़ियों द्वारा संचित बौद्धिक सामग्री के आत्मिक मूल्यांकन के फलों को न गंवाने देने तथा परिवर्तित ऐतिहासिक व्यवहार के अनुरूप आत्मिक उत्पादन के नये व गुणात्मक दृष्टि से भिन्न रूपों की रचनार्थ लोग समय-समय पर उसका आमूलतः पुनर्मूल्यांकन करने के लिए बाध्य [illegible] है।

इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि संस्कृति के अग्रगामी [illegible] के नियमों और इस प्रक्रिया में सातत्य के महत्व पर विचार [illegible] समय मार्क्सवाद के संस्थापकों ने हमेशा इन शब्दों का इस्ते-

* का० मा० अन्नेन्कोव को पत्र, २८ दिसम्बर, १८४६।

मान किया है· "मनुष्य", "लोग", "नयी पीढ़िया" (मिसाल के लिए, 'जर्मन विचारधारा' की याद करना पर्याप्त होगा "इंद्रिय-ग्राह्य जगत् एक ऐतिहासिक उत्पाद है, अपने उद्योग और उसके अतर्व्यवहार को विकसित करती पीढियो के, जिनमे से प्रत्येक अपनी पूर्ववर्ती पीढी के कधो पर खडी होती है, एक सपूर्ण अनुक्रम के क्रिया-कलाप का फल है।") यह बोधगम्य है, बशर्ते कि हम इस तथ्य को ध्यान मे रखे कि यहा हमारा सबध मानव समाज के संपूर्ण इतिहास पर लागू होनेवाले वस्तुगत नियम से, एक सामान्य समाजवैज्ञानिक प्रवर्ग के रूप मे जनता से है। इस सिलसिले मे हम लोगो की निर्णायक भूमिका पर, विश्व इतिहास मे उनके उत्पादन, सामाजिक-राजनीतिक और आत्मिक क्रियाकलाप पर, समाज के विकास मे उनकी बढती हुई भूमिका, आदि पर विचार करते है।

इसके साथ ही मार्क्स और लेनिन ने अनेकानेक बार इस पर जोर दिया है कि जिस प्रकार "सामान्य जनता" जैसी चीज नही होती, उसी प्रकार "सामान्य मनुष्य" भी नही होता, उनका अभिकथन था कि "जनता" हमेशा एक ठोस ऐतिहासिक सकल्पना होती है। वर्ग-समाज मे जनता वर्गों की, सामाजिक सस्तरो की तथा अन्य सामाजिक समूहो की सघटक है जो भिन्न-भिन्न सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे भिन्न-भिन्न होते है। पर इसके बावजूद दास-स्वामी समाज, सामती तथा पूजीवादी समाज मे जनसमुदाय सामाजिक दृष्टि से कितने ही भिन्न क्यो न हो, उनका मूलाधार हमेशा भौतिक मूल्यो के प्रत्यक्ष उत्पादक ही होते है, क्योकि समाज का अस्तित्व तथा विकास स्वय उनके श्रम पर आश्रित होते हैं।

चूकि सास्कृतिक क्रियाकलाप उन ठोस सामाजिक समूहो के कर्मों का परिणाम होता है जो भिन्न सरचनाओ मे भिन्न होते हैं, इसलिए सामाजिक इतिहास की प्रत्येक अवस्था मे सस्कृति का एक विशेष रूप होता है। दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक सरचना की अपनी ही अतर्निहित एव इतिहास द्वारा निश्चित भौतिक व आत्मिक [illegible] पद्धति होती है। मार्क्स ने लिखा था "आत्मिक उत्पादन की [illegible] किस्म पूजीवादी उत्पादन-पद्धति के तथा मध्य युगो की [illegible] के तदनुरूप होती है। यदि स्वय भौतिक उत्पादन को उसके [illegible]

ऐतिहासिक रूप में नहीं समझा जाता, तो यह समझना असम्भव है कि तदनुरूप आत्मिक उत्पादन में विशिष्ट क्या है और एक का दूसरे पर पारस्परिक प्रभाव क्या है।"*

जैसा कि हम पहले नोट कर चुके हैं, यह पूर्वधारणा अन्तर्विरोधी संरचनाओं में संस्कृति के विकास में मानव्य की वर्ग-प्रकृति का निर्धारण करती है।

यही पूर्वधारणा समाजवादी क्रांति की प्रक्रिया में पूर्ववर्ती युगों की सांस्कृतिक विरासत के मूल्यांकन की सशक्त क्रांतिकारी प्रकृति को स्पष्ट करती है। अतीत की किसी अन्य क्रांति ने पूर्ववर्ती पीढ़ियों की सांस्कृतिक विरासत का ऐसा सिद्धांतनिष्ठ आलोचनात्मक मूल्यांकन नहीं किया, या सार्विक को वर्गीय से और प्रगतिशील को प्रतिगामी से इतनी पूर्णता व दृढ़ता के साथ विलग नहीं कर सकी थी जैसे कि समाजवादी क्रांति करती है।

विगत ऐतिहासिक युगों की सांस्कृतिक विरासत का अविचल क्रांतिकारी तथा वैज्ञानिक व आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन निजी संपत्ति और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित संबंधों को समाप्त करने के लिए समाज के इतिहास की पहली सामाजिक क्रांति के रूप में समाजवादी क्रांति की प्रकृति का ही परिणाम है। समाजवादी क्रांति की विजय के फलस्वरूप गुणात्मक दृष्टि से नये प्रकार के उत्पादन-संबंधों की स्थापना सांस्कृतिक प्रगति का संनियमन करनेवाले, गुणात्मक दृष्टि से नये नियमों के उद्भव का पूर्वनिर्धारण करती है और, खास तौर से, मानवजाति द्वारा संचित संपूर्ण सांस्कृतिक विरासत के प्रति नयी समाजवादी संस्कृति के सारे विशिष्ट लाक्षणिक गुणों को जन्म देती है।

समाजवादी संस्कृति में अंतर्निहित इन विशिष्ट गुणों पर दो दृष्टियों से विचार किया जायेगा:

(१) नये प्रकार के भौतिक उत्पादन से निर्धारित सामाजिक प्रगति के लक्षणों के सिलसिले में;

(२) नये प्रकार के आत्मिक उत्पादन में होनेवाली सामाजिक प्रगति के लक्षणों के सिलसिले में।

---

* कार्ल मार्क्स, 'बेशी मूल्य के सिद्धांत', १८६१।

सामाजिक सपत्ति पर आधारित नये प्रकार के भौतिक उत्पादन के लक्षणो का मतलब है कि सामाजिक विकास की वस्तुगत प्रक्रियाओ और शासक वर्गों के आत्मगत हितो के बीच सघर्ष – वह सघर्ष जो समाजवाद से पहले की सारी सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे अतर्निहित होता है – समाजवादी सामाजिक व्यवस्था के लिए परकीय है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अतर्विरोधी समाज मे प्रत्येक शासक वर्ग पूर्ववर्ती युगो की सास्कृतिक विरासत मे से उन मूल्यो को ही ग्रहण नही करता था जिनकी उसे वस्तुगत आवश्यकता होती थी, बल्कि उन्हे भी लेता था जो आत्मगत रूप से उसे उचित जान पडते थे। इस वर्गोन्मुखी चयनात्मकता की वजह से अतीत मे सातत्य की प्रक्रिया मे हमेशा दो विरोधी प्रवृत्तियो, यानी प्रगतिशील और प्रतिगामी, के बीच सघर्ष होता था। शोषक वर्ग विश्व सस्कृति की निधि मे उसी हद तक योगदान करते थे, जिस हद तक उनकी ऐतिहासिक भूमिका प्रगतिशील होती थी। परतु शासक वर्ग होने के कारण, आगे चलकर वे अवश्यभावी रूप से प्रतिगामी स्थिति अपना लेते थे। तब आत्मगत रूप से लाभदायी वस्तुगत रूप से आवश्यक पर और वर्गोन्मुखता सार्विकता पर हावी हो जाती थी।

इसके विपरीत समाजवादी सस्कृति के विकास मे सातत्य का सर्वाधिक मूलभूत गुण सामाजिक विकास की वस्तुगत आवश्यकताओ तथा सर्वहारा के आत्मगत हितो के बीच सघर्ष का अभाव है। सर्वहारा सस्कृति की वर्ग-प्रकृति का उसकी प्रगतिशील प्रकृति से कोई टकराव ेना तो बहुत दूर की बात, वह वस्तुत उसके समानुरूप होती है। र्ववर्ती युगो की सास्कृतिक उपलब्धियो के अपने मूल्याकन मे श्रमिक र्ग किन्ही खास स्वार्थपूर्ण उद्देश्यो मे बाधित नही होता है। उसे विश्व के क्रांतिकारी रूपातरण मे जीवन दिलचस्पी होती है और इसे अजाम देने के वास्ते जरूरी है कि उसे सामाजिक प्रगति के वस्तुगत नियमो का पूर्ण व सही-सही ज्ञान हो जो मानव चितन की सारी उपलब्धियो के आलोचनात्मक स्वांगीकरण के बिना अकल्पनीय है। और इसका अर्थ यह है कि समाजवादी समाज की दशाओं मे सातत्य की प्रकृति केवल प्रगतिशील होती है।

समाजवादी सस्कृति के विकास मे सातत्य की अनवरत प्रगतिशील

प्रकृति उसके विकास की द्रुत गति का निर्धारण करती है। अपने पूर्ववर्ती युगों की सांस्कृतिक विरासत पर आधारित होने के कारण समाजवादी संस्कृति अपने आपको अधिक शीघ्रता तथा गतिशीलता के साथ पूर्णता प्रदान करने में केवल इसीलिए समर्थ नहीं होती कि यह अतीत के सांस्कृतिक अनुभव के सारे मौलिक मूल्यों को ग्रहण करती है, बल्कि इसलिए भी होती है कि यह स्वार्थपूर्ण वर्गीय अभिप्रायों के नाम पर संस्कृति में लायी हुई हर चीज का परित्याग भी कर देती है।

३. सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया और विज्ञान में सातत्य। कम्युनिज्म और वैज्ञानिक विरासत

प्रकृति, समाज और मानव चिंतन के नियमों से संबंधित प्राधिकारिक, तर्कतः गैर-अंतर्विरोधी और अनुभव से सत्यापनीय ज्ञान की ऐतिहासिक क्रम में विकासमान प्रणाली के रूप में, सामाजिक विकास के सार्विक आत्मिक उत्पाद के रूप में विज्ञान सातत्य के बिना न अस्तित्व में रह सकता है न विकसित हो सकता है।

इसके दो कारण हैं।

पहला यह है कि सामाजिक-ऐतिहासिक व्यवहार वैज्ञानिक ज्ञान की उत्पत्ति और प्रगति के लिए प्रत्यक्ष वस्तुगत आधार का काम देता है। लोगों की प्रत्येक नयी पीढ़ी के व्यावहारिक क्रियाकलाप की सफलता, एक ओर तो, मनुष्यजाति द्वारा पहले से ही संचित अनुभव के उपयोग की मात्रा पर निर्भर होती है और, दूसरी ओर, नव-उपार्जित अनुभव के साथ अपने पहले के ज्ञान को समायोजित करने की क्षमता पर निर्भर होती है। चूंकि व्यवहार के मुख्य रूपों – प्रकृति को रूपांतरित करने के उद्देश्य से उत्पादन-कार्य तथा समाज को रूपांतरित करने के उद्देश्य में सामाजिक कार्यकलाप – में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं, व्यवहार की कसौटी (जो स्वयं ही अज्ञेयवाद तथा प्रत्ययवाद के विरुद्ध संघर्ष के लिए पर्याप्त रूप में निश्चित है) "किसी मानवीय विचार को न तो यथार्थतः कभी पूर्णतः पुष्ट कर सकती है, न खंडन कर सकती है,"*

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'भौतिकवाद और आनुभविक मीमांसा', १९०८।

अत , यह मानव ज्ञान को "निरपेक्ष" नही बनने देती और नये व्यवहार के अनुरूप और अधिक विकास की माग करती है।

मनुष्य के व्यावहारिक क्रियाकलाप मे मानव्य ही वैज्ञानिक ज्ञान के विकास मे मानव्य के लिए वस्तुगत ठोस आधार का काम करता है। साथ ही विज्ञान के विकास मे मानव्य का अर्थ व्यवहार को सिद्धात से जोडनेवाले कारणात्मक सपर्कों के परिणाम से कुछ अधिक होना है क्योकि यह ज्ञान की अग्रगति के अतर्भूत गुण के रूप मे स्वय को प्रकट करता हुआ वैज्ञानिक ज्ञान के अपने तर्क से ही विकसित होता है।

प्रकृति और समाज का सनियमन करनेवाले वस्तुगत नियमो का ज्ञान निरपेक्ष और सापेक्ष सत्यो की द्वद्वात्मक अतर्क्रिया के रूप मे होता है और मानव्य हमेशा ही उसकी लाक्षणिकता होता है, इस मानव्य से अलग उसका अस्तित्व अकल्पनीय है।

सारत , प्रत्येक नयी वैज्ञानिक खोज , स्वय मे अनुसधान के अनेक क्रमो का अंतिम परिणाम होते हुए भी काम की एक नयी शृखला का परि-[illegible] भी होती है। मसलन, विल्हेल्म रोन्जन द्वारा अदृश्य एक्स-रे की खोज ने प्रतिदीप्ति के तथ्य तथा खोजी हुई इन किरणो के बीच सबध होने के बारे मे हेनरी प्वाकेरे की प्राक्कल्पना की पुष्टि की। इस प्राक्कल्पना का सत्यापन करते समय बेकेरेल ने यूरेनियम से होनेवाले विकिरण को पाने मे अज्ञात घटना का पता लगाया, जिसके आधार पर पियेर और मैरी क्यूरी ने कई अन्य रेडियोसक्रिय तत्वो की खोज की। इसने रेडियोसक्रियता का सिद्धात अनेको आश्चर्यजनक सिद्धातो और उपकल्पनाओ, जो अत्यत फलप्रद सिद्ध हुई और जिन्हे और भी विकसित किया जा रहा है, का प्रारंभिक स्थल बना।

एंगेल्स ने कहा था कि "विज्ञान पहले की पीढ़ी द्वारा विरासत मे प्राप्त ज्ञान के अनुपात मे आगे बढ़ता है।"* एंगेल्स की इस टिप्पणी की सच्चाई आज के युग मे खास तौर से उजागर हुई है। हम [illegible] यह दावा करते है कि [illegible] इस मात्रा मे वैज्ञानिकों की [illegible] हो गयी है और वैज्ञानिक-तकनीकी क्रान्ति के दौरान

---

* फ्रेडरिक एंगेल्स, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना का एक खाका', 1844।

ही अधिक अच्छी तरह से वह इस बात को समझता है) कि वैज्ञानिक खोजें एक अकेले दिमाग का उत्पाद नही हो सकती है, बल्कि, महान रूसी रसायनविद मेंदेलेयेव के शब्दो मे, वे वैज्ञानिको के एक समुदाय के प्रयत्नो का परिणाम होती हैं जिसमे से कभी-कभी केवल एक ही को उसके साथ अभिन्न माना जाता है जो कई लोगो का होता है और सम्मिलित चिंतन का फल होता है। हम असाधारण वैज्ञानिको के ऐसे अनेको वक्तव्यो के उदाहरण पेश कर सकते है। मसलन, प्रसिद्ध रूसी जैविकीविद और वैज्ञानिक-चयनविद इवान मिचूरिन ने कहा कि हमारे लिए प्रकृति एक बंद किताब की तरह है और इसके केवल एक पृष्ठ को समझने और उसका अध्ययन करने के लिए कई शताब्दियो तथा अनेको लोगो के प्रयत्नो की जरूरत होती है।

विचारो को जोडनेवाले सातत्य की शृखला इतनी सुस्पष्ट है कि इसने उनको निरपेक्ष पद देने तथा वैज्ञानिक विकास की प्रक्रियाओ को व्यवहार से, उसके ठोस आधार से, अधिभूतवादी ढग से पृथक करने की एक प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी। यही वह प्रवृत्ति है जिसने "विचारो के अनुक्रमण" सिद्धात की भावना मे विभिन्न प्रत्ययवादी निगमनो के ज्ञानमीमासीय स्रोत का काम दिया है।

परतु वैज्ञानिक ज्ञान के विकास मे सातत्य, विचारो के बीच एक विशिष्ट आनुवशिक सपर्क पर अपनी सारी निर्भरता के बावजूद, इस सपर्क का कार्य नही है। विचारो के बीच सपर्क ही खुद भौतिक जगत् के वस्तुगत नियमो, या, अधिक सही ढग से कहे तो इन नियमो के बीच वस्तुगत सपर्कों पर पूरी तरह से आश्रित है। "आत्मगत द्वद्वात्मकता", जो सज्ञान की प्रक्रिया का विशिष्ट गुण है, स्वय भौतिक जगत् की वस्तुगत द्वद्वात्मकता का उसके अन्तर्निहित नियमो उनके बीच विद्यमान सबधो, आदि का प्रतिबिंब है। फलत विज्ञान के लिए पहले से अज्ञात नये तथ्यो, सपर्कों व सबधो की खोज करते उनका विश्लेषण तथा समाहार करते एव नये की खातिर पुराने ज्ञान का परित्याग करते समय एक वैज्ञानिक सकल्पनाओ की शृखला में मात्र एक नयी कड़ी पर ही गौर नही करता, बल्कि वह वस्तुगत रूप से अस्तित्वमान एक सबध का मानसिक चित्र बनाता है, भौतिक जगत् की घटनाओ की अपरिमित रूप से जटिल प्रणाली मे किसी एक सबध की

प्रत्ययिक रूप से पुनर्रचना करता है। भौतिक सरचनाओं पर तार्किक सरचनाओ की निर्भरता का सिद्धांततः निषेध व्यवहार में प्रत्ययवादी निष्कर्षों पर पहुचा देता है।

एक नव-प्रत्यक्षवादी तथा वियेन मडली *(Vienna Circle)* के एक सक्रिय सदस्य फिलिप फ्राक ने वैज्ञानिक ज्ञान के विकास मे सातत्य की समस्या पर बहुत अधिक ध्यान दिया है। परतु यूक्लिडीय तथा गैर-यूक्लिडीय ज्यामिति के बीच तथा क्लासिकी बलविज्ञान तथा सापेक्षता सिद्धात, आदि के बीच सातत्य पर विचार करते समय वे माखवादी स्थिति अपना लेते हैं। वे यह दावा करते हैं कि "ज्यामिति जैसी तार्किक सरचनाए स्वय में सत्य हैं, दुनिया की घटना-परिघटनाओ से स्वाधीन हैं तथा अपने पदो के अर्थ से स्वाधीन हैं।" वैज्ञानिक ज्ञान के प्रति ऐसे रवैये के कारण वे देश व काल, कार्य-कारणता, आवश्यकता, नियम, आदि प्रवर्गों के अतीद्रिय प्रागनुभविक सार की अबोधगम्य प्रकृति से संबधित निष्कर्ष पर पहुच गये।

एक तरफ, भौतिक जगत् की वस्तुगतता तथा उसके नियमो का निषेध और, दूसरी तरफ, तार्किक सरचनाओ का निरपेक्षीकरण वैज्ञानिक ज्ञान के विकास मे सातत्य की प्रत्ययवादी समझ को जन्म देता है। यह लाक्षणिक है कि ऐसा दृष्टिकोण अपनाने के बाद, फिलिप फ्राक इस क्षेत्र मे अपने पूर्ववर्ती आलोचनात्मक अनुभववादियो की भांति, "चिंतन की किफायतशारी के सिद्धात" का पक्षपोषण करने लगे। वे तर्क करते हैं कि "जब तक पुराने और नये भौतिक सिद्धातो का अतर एक विशुद्ध तार्किक अतर मात्र है, तब तक हम दो सभावनाओ के होने पर 'सरलतर' को छाटेगे – बशर्ते कि हम सरलता की एक स्पष्ट कसौटी पा सकें।"

वैज्ञानिक ज्ञान की सापेक्ष स्वाधीनता को निरपेक्ष बनाने का खतरा जो अपने साथ प्रत्ययवादी अनुमितियों का खतरा लेकर आता है, विकासाधीन विज्ञान के अमूर्तीकरण की मात्रा के प्रत्यक्ष अनुपात में होता है। मिसाल के लिए, जो गणितज्ञ कुछ सूत्रों और प्रमेयो को अन्य के निगमनार्थ आधार के रूप में इस्तेमाल करता है, वह अपने पूर्ववर्ती वैज्ञानिक निष्कर्षों पर भरोसा करता है। इसमें तार्किक सातत्य के का निरपेक्षीकरण हो सकता है तथा सपूर्ण गणित के बारे में

विशुद्ध तर्क के ऐसे जगत् के रूप मे एक प्रत्ययवादी दृष्टिकोण बन सकता है जिसका वास्तविक जगत् मे देशिक अथवा उससे मिलते-जुलते रूपो या राशियो, या मिलते-जुलते सबधो से कोई रिश्ता नही होता है।

ऐसी स्थिति अतःप्रज्ञावादी विचार-पद्धति के अनुयायियो ने अपनायी है। इस पद्धति के प्रतिनिधियो ने (ब्रौएर, वील, हेइटिग तथा अन्य) घोषणा की (वैसे ही जैसे अपने समय मे जान लॉक ने की थी) कि गणितीय प्रस्थापनाओ की अतर्वस्तु तथा उनकी प्रामाणिकता की कसौटी गणितीय प्रमाणन की प्रत्येक कडी की अत प्रज्ञात्मक स्पष्टता है। प्राकृतिक विज्ञानो के गणितीकरण मे, जैसा कि लेनिन ने साबित किया था, भी तार्किक खतरा मौजूद होता है।

इस सिलसिले मे यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि यह दावा, कि विज्ञान पहले से निरूपित सिद्धातो के प्रशाखन तथा विकास के कारण "स्वत.स्फूर्त" ढग से विकसित होता है, कि यह उन विवादास्पद प्रश्नो के उत्तर देने की कामना से आगे बढता है जिन्हें अध्येताओ की पिछली पीढियो ने अनुत्तरित छोड दिया था, निश्चय ही आधारहीन नही है। यह सुज्ञात तथ्य है कि लोगो को स्वय विज्ञान के विकास के दौरान ही नयी समस्याओ का सामना करना पडता है। मसलन, यह ज्ञात है कि मेदेलेयेव की खोज ने उन नये तत्वो की सक्रिय खोज को ही उद्दीप्त नही किया जिनकी उन्होंने भविष्यवाणी की थी, बल्कि पहले के खोजे हुए तत्वो के रासायनिक गुणो की पुनरावर्तता के कारणो की आद्योपात छानबीन को भी बढावा दिया। इसलिए मानव ज्ञान के और अधिक विकास पर, विज्ञान के पहले के विकास का, उसके द्वारा सचित सकल्पनात्मक सामग्री का प्रभाव असदिग्ध है। यह सारे विज्ञान के लिए सत्य है और उसके प्रत्येक विषय के लिए खास तौर से सही है: नयी समस्या के समाधान मे जुटने से पहले एक वैज्ञानिक वर्तमान ज्ञान को आत्मसात करता है और इस तरह अपने ज्ञान को विज्ञान के सपूर्ण पूर्ववर्ती विकास के प्रभावाधीन लाता है।

परतु यहा हमारा ताल्लुक एक भिन्न मामले से है: वैज्ञानिक सज्ञान के उद्देश्य और उसकी क्षमताए न तो विज्ञान मे होनी है और न मनुष्य के सैद्धातिक क्रमविकास से निर्धारित होती हैं, बल्कि वे भौतिक व्यवहार के लक्ष्यो और आवश्यकताओ से उत्पन्न होनी हैं।

भौतिक व्यवहार तथा आत्मिक क्रियाकलाप के बीच की यह कड़ी कई रूप धारण करती है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हो सकती है (और तदनुसार, सारे विज्ञान व्यावहारिक और सैद्धातिक मे विभाजित हैं), पर इसके बावजूद इससे सिद्धाततः समस्या पर प्रभाव नही पड़ता है।

सपूर्ण वैज्ञानिक अनुसधान विभिन्न सस्तरो मे बटा है, कुछ विज्ञान व्यवहार की आवश्यकताओ के अनुसार प्रत्यक्ष अनुक्रिया करते हैं जबकि अन्य व्यवहार से, कमोबेश, दूर होते हैं। तथाकथित व्यावहारिक विज्ञान, जो उत्पादन को सुधारने की आवश्यकता के साथ प्रत्यक्षतः जुड़े ठोस कार्यों ही से सबंधित होते है, व्यवहार और सैद्धातिक विज्ञानो के बीच एक अद्वितीय मध्यवर्ती कडी की रचना करते प्रतीत होते है (यथा सैद्धातिक भौतिकी, गणित, सामान्य जैविकी, आदि)।

जहा तक सैद्धातिक विज्ञानो के विकास का सबंध है, यह यद्यपि **अंतिम परिणाम** की दृष्टि से समाज की व्यावहारिक आवश्यकताओ के कारण आवश्यक होता है, तथापि उनसे प्रत्यक्ष रूप से निर्धारित नही होता। देर-सवेर, वैज्ञानिक अनुसधान के हर हिस्से का, प्रत्येक वैज्ञानिक खोज का कोई न कोई व्यावहारिक उपयोग निकल आता है। उदाहरण के लिए, अत्यत सामान्य जैविक नियमो की खोजबीन आयुर्विज्ञान, जानवरो के चिकित्साविज्ञान, कृषि-वनस्पतिविज्ञान, आदि के व्यावहारिक उद्देश्यो से पूर्वनिर्धारित होती है। अल्टर्नेटिंग विद्युतधारा के अध्ययन से सबधित गणनाओ मे अधिकल्पित सख्याओ को उनकी खोज के अनेक वर्षों के बाद इस्तेमाल किया गया, जबकि गैर-यूक्लिडीय ज्यामिति को प्राकृतिक जगत् से सबधित विज्ञान बनने के लिए सापेक्षता के सिद्धात की खोज होने तक इतजार करना पडा था। ऐसे सभी मामलो मे कुछ वैज्ञानिक ध्येय कुछ अन्य ध्येयो को जन्म देते हैं और बाहर से देखने पर वे कितने भी स्वाधीन क्यो न दिखायी देते हो, उनकी जड़े व्यवहार मे ही निहित होती हैं।

यह नोट करना भी महत्वपूर्ण है कि जीवन देर-सवेर व्यवहार से असबधित या अतर्विरोधी निगमनो को झाडकर परे फेंक देता है।

आज विज्ञान और टेक्नोलाजी के द्रुत विकास के कारण सैद्धांतिक व्यावहारिक क्रियाकलाप के बीच की कड़ी अधिकाधिक जटिल जा रही है। विज्ञानो की सापेक्ष स्वाधीनता, समाज के जीवन

नका भूमिका तथा भौतिक उत्पादन पर उनका असर बहुत ही
बढ़ गया है। यह प्रक्रिया इस भ्रम को भी बल प्रदान करती है
ज्ञानों की स्वाधीनता निरपेक्ष है। मसलन, सूक्ष्म-ब्रह्माड के अध्ययन
य तथा गणितीय तर्क के विकास के लक्ष्य प्रारभ मे टेक्नोलाजी
व्यावहारिक विज्ञानो के विकास के व्यावहारिक लक्ष्यो से "स्वाधीन"
सामने आये। यहा तक कि शुरू मे आइन्स्टीन भी अपनी खोजो
व्यवहारिक अनुप्रयोग का अनुमान नही लगा पाये थे।
व्यावहारिक आवश्यकताओ से कोई सुस्पष्ट सबध न होते हुए भी
क भौतिकी के क्षेत्र मे हुई कई खोजो से ऐसी नयी तकनीकी
यो का जन्म हुआ जिन्होने औद्योगिक उत्पादन मे समग्र क्राति
। मिसाल के लिए, ऐसी भूमिका नाभिकीय भौतिकी, अतरिक्ष,
न, पोलीमर तथा अर्धचालको के क्षेत्रो के उस अनुसधान की
जो अभी हाल ही तक "शुद्ध विज्ञान" के क्षेत्र की खोजे थीं।
ज्ञानिक ज्ञान की सापेक्ष स्वाधीनता वैज्ञानिक पूर्वानुमानो के रूप
न विशद रूप मे प्रकट होती है। मिसाल के लिए, जैसा कि ज्ञात
ानिक भौतिकी के विकास के आतरिक तर्क द्वारा प्रस्तुत समस्याओ
धान की प्रक्रिया मे अधिकाश प्रायमिक कणो का सिद्धातत
न लगा लिया गया था। परतु इस विशेष मामले मे भी विज्ञान
के साथ अपने सपर्कों से "आज़ाद" नही हुआ था।
र कही हुई बाते सामाजिक विज्ञानो पर पूर्णत लागू होती है।
ज्ञानिक ज्ञान की सापेक्ष स्वाधीनता समय-समय पर प्रकट होती
और वैज्ञानिक पूर्वानुमान भी घटनाओ से पहले चलता है
विकास के नियमो का ज्ञान होने पर वर्तमान मे भविष्य के
ा अध्ययन करके भविष्य की रूपरेखा बनाना सभव है।
प्रकार, सैद्धातिक विज्ञानो और व्यवहार के बीच सबध अनेक
कड़ियो से गुजरता हुआ अत्यत जटिल हो सकता है और
व क्रियाकलाप पर मात्र अपने निष्कर्षों की वजह से और
काफी समय बीतने के बाद ठोस प्रभाव डालता है।
ाम के किसी भी अन्य रूप की भांति विज्ञान के विकास की
ाँ प्रवृत्ति होती है क्रमविकासीय और क्रांतिकारी। विज्ञान
विकासीय विकास मे सातत्य बिल्कुल स्पष्ट होता है। इसके

में उनकी भूमिका तथा भौतिक उत्पादन पर उनका असर बहुत ही ज्यादा बढ़ गया है। यह प्रक्रिया इस भ्रम को भी बल प्रदान करती है कि विज्ञानों की स्वाधीनता निरपेक्ष है। मसलन, सूक्ष्म-ब्रह्मांड के अध्ययन के लक्ष्य तथा गणितीय तर्क के विकास के लक्ष्य प्रारंभ में टेक्नोलाजी तथा व्यावहारिक विज्ञानों के विकास के व्यावहारिक लक्ष्यों से "स्वाधीन" रूप में सामने आये। यहां तक कि शुरू में आइन्स्टीन भी अपनी खोजों के व्यावहारिक अनुप्रयोग का अनुमान नहीं लगा पाये थे।

व्यावहारिक आवश्यकताओं से कोई सुस्पष्ट संबंध न होते हुए भी सैद्धांतिक भौतिकी के क्षेत्र में हुई कई खोजों से ऐसी नयी तकनीकी क्षमताओं का जन्म हुआ जिन्होंने औद्योगिक उत्पादन में समग्र क्रांति कर दी। मिसाल के लिए, ऐसी भूमिका नाभिकीय भौतिकी, अंतरिक्ष, स्वचालन, पोलीमर तथा अर्धचालकों के क्षेत्रों के उस अनुसंधान की रही है जो अभी हाल ही तक "शुद्ध विज्ञान" के क्षेत्र की खोजें थी।

वैज्ञानिक ज्ञान की सापेक्ष स्वाधीनता वैज्ञानिक पूर्वानुमानों के रूप में अत्यंत विशद रूप से प्रकट होती है। मिसाल के लिए, जैसा कि ज्ञात है, सैद्धांतिक भौतिकी के विकास के आंतरिक तर्क द्वारा प्रस्तुत समस्याओं के समाधान की प्रक्रिया में अधिकांश प्राथमिक कणों का सिद्धांततः पूर्वानुमान लगा लिया गया था। परंतु इस विशेष मामले में भी विज्ञान व्यवहार के साथ अपने संपर्कों से "आज़ाद" नहीं हुआ था।

ऊपर कही हुई बातें सामाजिक विज्ञानों पर पूर्णतः लागू होती हैं। यहां वैज्ञानिक ज्ञान की सापेक्ष स्वाधीनता समय-समय पर प्रकट होती रहती है और वैज्ञानिक पूर्वानुमान भी घटनाओं से पहले चलता है। सामाजिक विकास के नियमों का ज्ञान होने पर वर्तमान में भविष्य के तत्वों का अध्ययन करके भविष्य की रूपरेखा बनाना संभव है।

इस प्रकार, सैद्धांतिक विज्ञानों और व्यवहार के बीच संबंध अनेक मध्यवर्ती कड़ियों से गुजरता हुआ अत्यंत जटिल हो सकता है और व्यावहारिक क्रियाकलाप पर मात्र अपने निष्कर्षों की बदौलत में और वह भी काफी समय बीतने के बाद ठोस प्रभाव डालता है।

विकास के किसी भी अन्य रूप की भांति विज्ञान के विकास की भी दोहरी प्रकृति होती है: क्रमविकासीय और क्रांतिकारी। विज्ञान के क्रमविकासीय विकास में सातत्य बिल्कुल स्पष्ट होता है। इसके

साथ ही, जब चितन मे सामाजिक क्रातियों के फलस्वरूप विज्ञान को वे निष्कर्ष त्यागने पड़ते हैं जो उस समय तक अपरिवर्तनीय जान पड़ते थे, तब हमें इससे कहीं बडी कठिनाई का सामना करना पडता है और उस निर्माण स्थल पर एक नयी सरचना खडी करनी पड़ती है जो वास्तव मे पुराने सिद्धातो के ध्वसावशेष होते है। इस तरह अवसरो पर विश्व के बारे मे मानव ज्ञान की सापेक्ष प्रकृति अत्यत सुस्पष्टता से दिखायी देती है। और ऐसे ही मौको पर कुछ अनुसंधानकर्ता इस सापेक्षतावाद से निरपेक्ष की रचना कर देते है, जिसके कारण वे अतत या तो अज्ञेयवाद पर पहुंच जाते हैं या विभिन्न प्रत्ययवादी निष्कर्षों पर।

लेकिन जैसा कि लेनिन ने कहा था, द्वद्ववाद को, जिसमें सापेक्षतावाद शामिल होता है, सिर्फ उसी तक महदूद नही रखा जा सकता है। विज्ञान मे एक क्राति सपूर्ण पुरातन ज्ञान को सिर्फ इसलिए निराकृत नही कर देती कि "सापेक्ष सत्य मनुष्यजाति से स्वाधीन किसी एक वस्तु का सापेक्षत. सही-सही प्रतिबिब होता है," कि "ये प्रतिबिब अधिकाधिक सही होते जाते हैं," और कि "प्रत्येक वैज्ञानिक सत्य मे, उसकी सापेक्ष प्रकृति के बावजूद निरपेक्ष सत्य का एक तत्व होता है,"* इसके बजाय वह नये ज्ञान मे पहले के प्राप्त परिणामो को शामिल करती है।

इस सदर्भ मे सबसे अच्छा उदाहरण एल्बर्ट आइन्स्टीन का सापेक्षता सिद्धान है। आइन्स्टीन ने यह दर्शाने के लिए कि प्रकाश के वेग पर न्यूटन का बलविज्ञान लागू नही होता, विज्ञान के इतिहास के प्रति एक मूलत नया दृष्टिकोण अपनाया इसके सारे मूलभूत नियम एक विशिष्ट दायरे मे ही वैध होते हैं। कालातर मे, क्वाटम बलविज्ञान के उद्भव मे वह सिद्धात, जो सभी पूर्वस्थापित नियमो की सापेक्ष सच्चाई के आइन्स्टीन के सिद्धात मे सम्मिलित था, और भी अधिक पुष्ट हो गया और सैद्धातिक रूप मे "सगतता नियम" बन गया जिन सिद्धातो की वैधता घटनाओ के एक विशेष समूह के सदर्भ मे प्रयोगो द्वारा पहले ही सिद्ध की जा चुकी थी, अपने अनुप्रयोगो के क्षेत्र मे उनका महत्व, नये वैज्ञानिक ज्ञान के कारण, खत्म नही हो रहा था, बल्कि वे नये

---

* इ० लेनिन, 'भौतिकवाद और आनुभविक मीमांसा', १९०८।

सिद्धान्तों के अंतर्गत, अलग-अलग दृष्टांतों के रूप में अस्तित्वमान थे।

१९१३ में नील्स बोर द्वारा सूत्रित तथा प्रारंभ में क्वांटम व क्लासिकी बलविज्ञान के बीच संगतता पर लागू "संगतता नियम" वैज्ञानिक ज्ञान के विकास का एक मूल नियम है।* आधुनिक भौतिकी में क्षेत्र-सिद्धान्त तथा बाद में कई अन्य खोजों के द्वारा इसकी पूर्ण पुष्टि हो गयी थी।**

ज़ाहिर है कि "संगतता नियम" को ज्ञान के सभी क्षेत्रों पर यांत्रिक ढंग से लागू करना गलत होगा, परंतु इसके बावजूद हमारा विश्वास है कि एक मामले में इसका सार्विक महत्व संदेह से परे है – यह इस तथ्य का प्रमाण है कि भौतिकी में, जैसे कि सभी विज्ञानों में होता है सामान्य विश्व के नियमों के प्राधिकारिक तथा, सिद्धांततः, असीमित ज्ञान के अपरिमीम प्रगतिशील विकास की प्रक्रिया के लिए आधार प्रदान करता है, अनिवार्य पूर्वशर्त मुहैया करता है। साथ ही हम यह विश्वास भी करते हैं कि विज्ञान के विकास में सातत्य पर विचार करते समय हमें ग्योडेल के प्रमेय को ध्यान में रखना होता है जो मात्र गणित पर ही लागू नहीं होता संकल्पनाओं की प्रत्येक कमोबेश साधारण श्रेणी में आवश्यक रूप से ऐसी कई समस्याएं होती हैं जिन्हें संकल्पनाओं की उस श्रेणी को विस्तृत बना करके ही हल किया जा सकता है, परंतु इस मामले में संकल्पनाओं की नयी श्रेणी अपनी समस्याएं उत्पन्न कर देगी जिनके लिए नयी स्वयंसिद्धियों की ज़रूरत होगी और यह प्रक्रिया अनंत काल तक जारी रहेगी।

---

* इस नियम के [illegible] सभी मूल-आधार निकोलाई लोबाचेव्स्की के विचारों में पहले ही पाये जा सकते थे। उनकी ज्यामिति में यूक्लिडीय ज्यामिति एक चरम [illegible] उदाहरण के रूप में अंतर्विष्ट है।

** अल्बर्ट आइन्स्टीन तथा लेओपोल्ड इन्फेल्ड की पुस्तक 'भौतिकी का क्रमविकास' [illegible] इस बारे में [illegible] [illegible]

अत, वैज्ञानिक ज्ञान के क्रमविकास मे सातत्य का विशिष्ट गुण यह है कि यह केवल सज्ञान के विषय की वस्तुगत द्वद्वात्मकता मे ही व्युत्पन्न नही होता, बल्कि सारी सज्ञान-प्रक्रिया की "आत्मगत द्वद्वात्मकता" की विशिष्ट प्रकृति से या, दूसरे शब्दो मे, सामाजिक चेतना के एक रूप मे विज्ञान की अनन्यता से भी होता है। बेशक, सामाजिक चेतना का हर रूप वस्तुगत जगत् को प्रतिबिबित करने के अपने ही तरीके का सकेत देता है। इसीलिए सामाजिक चेतना के प्रत्येक विशिष्ट रूप के लाक्षणिक सातत्य की अपनी ही विशिष्टताए होती हैं।

मसलन, वैज्ञानिक, "सकल्पनात्मक" ज्ञान के क्षेत्र मे सातत्य कला के क्षेत्र की तुल्य रूप प्रक्रियाओ से भिन्न होता है, जिसे "कलात्मक बिबो" पर आधारित ज्ञान के रूप मे देखा जाता है। विज्ञान को विभिन्न वैज्ञानिको के अनुसधान तथा खोजो के बीच अनन्य आनुवशिक निर्भरता की आवश्यकता होती है। कला मे भी आनुवशिक सबध दिखायी देता है, लेकिन वह उतना प्रत्यक्ष नही होता, जितना कि विज्ञान मे। कलाकर्मी, जैसे सगीतकार, कलाकार, लेखक, आदि, अपने पूर्ववर्तियो की परपरा को जारी रखते तथा उनका विकास करते हुए, सामान्यत, उन पूर्ववर्तियो की अपूर्ण कृतियो को पूर्ण नही बनाते, बल्कि अपनी ही नयी सिम्फोनियो, चित्रो और कविताओं की रचना करते हैं।

अपने पूर्ववर्तियो की उपलब्धियो तथा विचारो को विरासत मे पानेवाला वैज्ञानिक, कलाकारो के विपरीत, उनके विकास मे नियमत प्रत्यक्ष रूप मे सम्मिलित होता है। पर इससे विज्ञान के विकास मे अप्रत्यक्ष सबधो की उपस्थिति का अपवर्जन नही होता है। यहा सातत्य इस अर्थ मे निर्बाधित भी हो सकता है और बाधित भी कि एक खोज बीन दूसरी से शताब्दियो के फासले पर हो सकती है। परतु विज्ञान मे प्रत्यक्ष किस्म का सातत्य यहा तक प्रबल हो सकता है, जहा तक हम वास्तव मे के बजाय अन्तर्वस्तु मे सातत्य की बात करते है। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि विज्ञान के विकास मे प्रच्छन्न सातत्य नही होता। जो भी हो सातत्य कभी भी अस्तित्वहीन नही हुआ है। वैज्ञानिक सज्ञान की प्रक्रिया अध्ययनाधीन विषय के अन्तर्भूत मूल सारतो व सबधो को सातत्य . आधार पर ही उद्घाटित करती है। और सातत्य ही के ., पूर्वोपलब्ध ज्ञान को नयी प्राक्कल्पनाओं के साथ सतत

पित करके समुचित रूप मे सत्यापित व पर्याप्त रूप से सही निष्कर्ष निकाल सकते हैं और नये व पुराने सिद्धातो को, उनके व्यावहारिक परिणामो मे, सन्निधानित करके वैज्ञानिक पूर्वानुमान लगा सकते हैं।

नया ज्ञान विशेष अन्वेषक के दृष्टिकोण के अनुसार, "खुद ब खुद" प्रकट हो सकता है, लेकिन वास्तव मे यह अनिवार्यत विशेष क्षेत्र मे भी तथा (जैसा अक्सर होता है) विज्ञान की कई परस्पर सबधित शाखाओं मे भी पूर्ववर्ती अन्वेषणो के एक पूरे समुच्चय से सबधित होना है। विचारो के इस कमोबेश प्रत्यक्ष रिश्ते के अतिरिक्त ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे एक भिन्न कोटि के अपने रिश्ते भी होते हैं. विज्ञान की दार्शनिक सकल्पनाओ के बीच ही सपर्क मे नही, बल्कि वैज्ञानिक अन्वेषण की पद्धतियो व उसके औजारो के विशिष्ट समुच्चय मे, गलत निगमनो और प्रयोगो, आदि के नकारात्मक अनुभव मे भी ऐसे रिश्ते होते हैं। यही कारण है कि पूर्वसचित ज्ञान के साथ प्रत्येक नयी खोज का, न सिर्फ अतर्वस्तु से, बल्कि अन्वेषण के रूप और पद्धति से भी, सुस्पष्टत: या अस्पष्टत: अनिवार्य आनुवशिक सबध होता है।

विज्ञान के मार्क्सवादी अध्ययन-पद्धति के आधार मे निहित ये अध्ययन-विधिक सिद्धात हमे वैज्ञानिक ज्ञान मे सातत्य और वर्गीय प्रकृति के सहसबध की समस्या को सही ढग से समझने मे और ऐसे निष्कर्ष निकालने के लिए इसको इस्तेमाल करने मे समर्थ बनाते हैं जो कम्युनिज्म और सास्कृतिक विरासत की इस समस्या के मार्क्सवादी समाधान के लिए आधार का काम देते है।

वैज्ञानिक ज्ञान के विकास मे सातत्य के नियमो के बारे मे हम जो कह चुके हैं उसके आधार पर हम एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं अतर्विरोधी सरचनाओ मे सस्कृति का वर्ग-चरित्र तथा, उसी सिलसिले मे, सस्कृति की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप मे विज्ञान के विकास की वर्ग-प्रकृति वैज्ञानिक ज्ञान के विकास मे सातत्य को बहिष्कृत नही करती, सर्वोपरि रूप मे इसलिए कि प्रत्येक विज्ञान की अपनी ही वस्तुगत अतर्वस्तु होती है जो मूलत वर्गेतर और सार्विक प्रकृति की होती है।

अधिक ठोस रूप मे, विज्ञान मे सार्विक तथा वर्गीय के सहसबध की निम्नांकित प्रकृति है।

तथ्य किसी भी विज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण संघटक अंश होते है। महान रूसी शरीरक्रियाविद अकादमिशियन इवान पाव्लोव ने कहा कि तथ्य वह वायु है जिसमे वैज्ञानिक सास लेता है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि खोजबीन की प्रक्रिया मे प्राप्त तथ्यात्मक सामग्री को एक वैज्ञानिक, चाहे वह किसी भी वर्ग या वर्गीय दिलचस्पी का क्यो न हो, इस्तेमाल कर सकता है। यह बात प्राकृतिक व तकनीकी ही नहीं, बल्कि समाजविज्ञान के लिए भी सत्य है। मिसाल के लिए, यह सभी जानते है कि रूस मे पूजीवादी विकास की प्रक्रियाओ का अध्ययन करते समय लेनिन ने जेम्स्त्वो (स्थानीय सरकारी निकाय) की सास्कृतिक सामग्री का भरपूर उपयोग किया। यहा महत्वपूर्ण चीज वह निष्कर्ष है जिसे वैज्ञानिक कुछ तथ्यो के समाहार के आधार पर निकालता है।

इसके अलावा, विज्ञान मे ढेर सारी तथ्यात्मक सामग्री के अध्ययन के परिणामस्वरूप निगमित नियम होते हैं। वस्तुगत, आवश्यक, मौलिक, स्थायी तथा पुनरावर्तनीय कार्य-कारण सबधो तथा भौतिक जगत् मे विद्यमान रिश्तो के एक प्रतिबिब के नाते ये नियम भी सार्विक महत्व के होते हैं। आर्कीमिदीस का सिद्धात दास-स्वामी समाज की दशाओ मे भी उतना ही सही है जितना कि बाद की सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे। वस्तुओ की मजबूती के कोई सर्वहारा या बुर्जुआ नियम नहीं है, न ही तत्वो की कोई सर्वहारा या बुर्जुआ आवर्त सारणी है, आदि। इसका यह मतलब है कि बुर्जुआ या सर्वहारा भौतिकी, रसायन, गणित, आयुर्विज्ञान, आदि भी नही हैं।

परतु इस बयान के लिए कम से कम दो शर्तों की जरूरत है। पहली, जो सैद्धांतिक सामान्यीकरण ठोस जगत् के वस्तुगत सबधों को, दूसरे शब्दो मे, वैज्ञानिक नियमो, इस शब्द के सही अर्थ मे, को प्रतिबिबित करते है, उनमे एक सार्विक अन्तर्वस्तु होती है। लेकिन वैज्ञानिक भ्राति के परिणामस्वरूप, या तथ्यो के साभिप्राय मिथ्याकरण की वजह से बननेवाले "नियमों" की अन्तर्वस्तु नितान्त भिन्न होती है। पूर्वोक्त मामले मे वैज्ञानिक के क्रियाकलाप पर वर्गीय हितो का अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है (यहा वैज्ञानिक इसके प्रति बेखबर होता है) जबकि परवर्ती [illegible] वर्ग-हित उसके क्रियाकलाप पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते है और [illegible] को उसकी वस्तुगत अन्तर्वस्तु से वचित कर देते है।

दूसरे, वैज्ञानिकगण स्वयं विभिन्न वर्गों के होते हैं, इसलि
अपने-अपने वर्गीय कार्यों की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक जानकारी का
करने की कोशिश करते हैं। परन्तु इसके बावजूद उनके द्वारा
वैज्ञानिक ज्ञान की वस्तुगत अंतर्वस्तु पर वर्गीय रंग का प्रभाव
पड़ता है।

इसके अलावा, प्रत्येक विज्ञान की अपनी ही विशिष्ट अनु
पद्धतियां होती है और उन्हे भी विज्ञान का वर्गीय सघटक अ
माना जा सकता है। रसायन मे गुणात्मक और परिमाणात्मक विश
या खगोलविद्या और चिकित्सीय अनुसधान मे प्रयुक्त पद्धति
अर्थ, उनके किसी भी ऐतिहासिक काल मे होने के बावजूद सभी
तिको के लिए वस्तुगत रूप से सार्विक होता है। परतु, साथ ही
वैज्ञानिक जिस वर्ग के साथ अपनी स्थिति का अभिनिर्धारण कर
वह इस मामले मे अधिक स्पष्टता से प्रकट होता है इस सिल
उन सामूहिक प्रयोगो की याद करना काफी है, जिन्हे नाजियो ने
पर "विज्ञान के नाम पर" किया था।

दुर्भाग्यवश, आधुनिक युग की वास्तविकता हमे वैज्ञानि
सधान की पद्धतियो पर वर्ग-हितो के प्रभाव के नये प्रमाण मुहै
रही है। यह वियतनाम मे अमरीका द्वारा छेडे गये घृणित युद्ध के
पेटागन द्वारा नये जैविक युद्ध के हथियारो की कारगरता के
निक अनुसधान" से सबधित शर्मनाक तथ्यो से खास तौर से
हुआ है।

इसलिए विज्ञान मे वर्ग-प्रकृति तथ्यो या नियमो से अथव
अनुसधान पद्धति से सबधित नही होती, बल्कि, **पहले, वि
विज्ञान द्वारा उपार्जित ज्ञान के व्यावहारिक अनुप्रयोग से और
विश्व दृष्टिकोण से, दार्शनिक सामान्यीकरण से सबधित होती है।**

प्रत्येक अध्येता विज्ञान मे एक विशिष्ट वर्ग का विश्व
लाता है और अपने निष्कर्ष या तो भौतिकवादी, द्वद्वात्मक
निकालता है या प्रत्ययवादी, अधिभूतवादी स्थिति से। समाज
हुए कोई भी व्यक्ति उसके प्रभाव से मुक्त नही रह सकता है,
एक वर्ग-समाज मे प्रत्येक वैज्ञानिक, चाहे उसने अपने आप क
से अलग सात तालो के अदर बद क्यो न रखा हो, प्रयोगो अ

के परिणामो का विश्लेषण करने तथा उन्हे समझने में एक विशिष्ट दार्शनिक स्थिति अपनाता है (जानबूझकर या अनजाने)*, दूसरी तरफ उसकी दार्शनिक स्थिति किसी न किसी रूप मे उसकी वर्ग-चेतना, समाज के जीवन मे उसकी जगह तथा भूमिका (चेतन या अचेतन रूप से अनुभूत) द्वारा निर्धारित होती है।

यही कारण है कि हमे अक्सर एक ऐसी घटना देखने को मिलती है, जो प्रथम दृष्टि मे विचित्र प्रतीत हो सकती है, लेकिन जो वर्गीय समाज के नियमों के पूर्णत अनुरूप होती है, अर्थात् एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक का नितांत मामूली दार्शनिक प्रमाणित होना (देखें, भौतिकविद हेनरी प्वाकेरे तथा रसायनविद विल्हेल्म ओस्त्वाल्ड का लेनिन द्वारा किया हुआ मूल्याकन) एक बडी खोज करने के बाद वह कभी-कभी उसके प्रत्ययवाद या अज्ञेयवाद से, अधिभूतवाद या सकलनवाद से स्पष्ट करने लगता है। इस अर्थ में हमारे "बुर्जुआ विज्ञान", "बुर्जुआ प्राकृतिक विज्ञान", आदि पदो का उपयोग करने के लिए समुचित आधार होता है।

इससे हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुचते हैं **हमें किसी एक वैज्ञानिक द्वारा की हुई खोज की वस्तुगत अंतर्वस्तु को उसके बहुधा भ्रामक दार्शनिक सामान्यीकरणो तथा विशिष्ट व्यावहारिक वर्गीय उद्देश्यों के लिए इस खोज को इस्तेमाल करने की इच्छा से पृथक करने में हमेशा सक्षम होना चाहिए।**

विज्ञान की वस्तुगत अंतर्वस्तु भी, जो मूलतः सार्विक और वर्गेतर होती है, वैज्ञानिक ज्ञान की विकास-प्रक्रिया मे विरासत का मुख्य विषय होती है।

परन्तु, जहा अन्तर्विरोधी समाज की दशाओं मे सामाजिक विकास की सभी वस्तुगत रूप से पैदा समस्याएं केवल वर्ग-संघर्ष के जरिये ही हल की जा सकती है वहा विज्ञान की प्रक्रियाएं वर्ग चेतना के विभिन्न रूपों मे होती है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि

---

* [illegible] (१९६१)।

समाजवाद-पूर्व की सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे वैज्ञानिक ज्ञान के क्षेत्रो के सातत्य को इस ज्ञान की सार्विक अतर्वस्तु ही पर नही, बल्कि विज्ञान के अदर निहित तथा शुद्ध रूप से वर्ग-प्रकृति के विभिन्न वैचारिक अवयवो पर भी आरोपित किया गया। यह बात मुख्य रूप से विज्ञान के विश्व दृष्टिकोण के अवयव से सबधित है। मसलन, १८वी और १९वी सदी के अनेक वैज्ञानिको ने न्यूटनीय बलविज्ञान के मूल नियमो के साथ ही साथ न्यूटन के दार्शनिक भ्रमो (जिसमे "प्रारभिक आवेग" का उनका दावा भी शामिल था) को भी विरासत मे प्राप्त किया। वे भ्रम उस काल के सीमित ज्ञान के उत्पाद ही नही थे, बल्कि कुछ वर्गों का विश्व दृष्टिकोण भी थे।

यहा उपरोक्त मे यह जोडना उचित होगा कि वैज्ञानिक ज्ञान मे (और, फलत, उसके विकास की प्रक्रिया मे) सार्विक और वर्गीय अवयवो का सहसबध प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानो मे एक ही नही होता है।

प्राकृतिक विज्ञान भौतिक उत्पादन से प्रत्यक्षतः तथा वर्ग-हित के साथ अप्रत्यक्षतः जुडे हैं। इसलिए उनकी अतर्वस्तु मे सार्विकता हमेशा अपरिवर्तनीय रूप से प्रबल रहती है और अपनी बारी मे यह प्राकृतिक विज्ञानो मे विरासत की प्रक्रिया के केंद्रबिंदु को निर्धारित करती है। जहा तक विभिन्न वर्गीय पक्षो का प्रश्न है, उन्हे तभी विरासत मे ग्रहण किया जाता है जब वे उत्पादन की प्रक्रिया मे बाधा डालते है। सामाजिक विज्ञान उत्पादन की प्रक्रिया के साथ नियमत अप्रत्यक्षतः सबधित होते है लेकिन इस मामले मे वर्ग-हित अत्यत प्रत्यक्ष रूप से सामने आता है। इसी कारण से वर्ग-समाज मे सामाजिक विज्ञानो मे सातत्य हमेशा वर्गीय स्वार्थों के अधीन रहता है।

इसमे कोई सदेह नही है कि सामाजिक विज्ञानो की वस्तुगत अतर्वस्तु के विकास मे यह सुस्पष्ट वर्ग-प्रकृति न तो वस्तुगत अध्ययनो को प्रतिबाधित करती है, न सातत्य को (मुख्य रूप से उन ऐतिहासिक युगो मे जब तदनुरूप शोषक वर्गों ने प्रगतिशील भूमिका अदा की थी)। कम्युनिज्म के वैचारिक विरोधियो को "पूजीपतियो के वर्ग के विद्वान किरानीदार" की सज्ञा प्रदान करते हुए लेनिन ने यह चेतावनी भी दी कि 'आप इन किरानीदारो की कृतियो का उपयोग किये बिना नयी

आर्थिक घटनाओं की छानबीन मे एकमात्र प्रगति भी नहीं कर सकेंगे।"*
इसके साथ उन्होंने यह माग की कि इन अनुसधानो का उपयोग करने मे हमें "उनकी प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति की काट छाट करने, अपनी खुद की दिशा की ओर चलने और हमारे प्रति शत्रुता रखनेवाली शक्तियों और वर्गों की सारी नीति के खिलाफ लड़ने में सक्षम होना चाहिए।"**

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सस्थापकों ने समाजवादी समाज में विज्ञान और समाजवाद-पूर्व सरचनाओ मे वैज्ञानिक उपलब्धियो के बीच सबंध को परिभाषित करने के लिए मूलभूत महत्व की दो अध्ययन-विधिक अपेक्षाओ को निरूपित किया है।

एक ओर, समाजवादी समाज मे विज्ञान अपनी पूर्ववर्ती वैज्ञानिक खोजबीन के परिणामो को विरासत मे प्राप्त किये बिना सफलतापूर्वक विकसित नही हो सकता। इसका सबध मुख्यतः उन वैज्ञानिक तथ्यो से है, जो तब भी सही रूप मे रहते हैं जब उनकी धारणा को मिथ्या साबित कर दिया जाता है। यह बात वैज्ञानिक नियमो, विनियमो तथा सूत्रो के लिए बिल्कुल सच है और वैज्ञानिक अनुसधान की पद्धतियो के लिए उस सीमा तक सही है, जहा तक कि वे अपनी अतर्वस्तु मे वस्तुगत रहती हैं। दूसरे शब्दो मे, समाजवादी समाज में विज्ञान की विकास-प्रक्रिया में जो कुछ विरासत में ग्रहण किया जाता है, वह विज्ञान की वस्तुगत अंतर्वस्तु है।

यह निष्कर्ष "सर्वहारा विज्ञान" के बारे मे थोथे समाजविज्ञान की अटकलो से कतई मेल नही खाता है। लेनिन ने हमेशा माग की कि विज्ञान की वस्तुगत अतर्वस्तु (विरासत मे प्राप्त तथा विकसित दोनो ही) को वर्ग-प्रकृति के विभिन्न विश्व दृष्टिकोण तथा वैचारिक अध्यारोपण से पृथक किया जाये ("काट-छाटकर" फेंक दिया जाये)। सापेक्षता के सिद्धांत तथा क्वांटम भौतिकी के प्रति, मेंडेल द्वारा खोजे हुए आनुवंशिक नियमो तथा कई अन्य वैज्ञानिक सिद्धातो के प्रति नास्तिवादी रवैये का एकमात्र स्पष्टीकरण यही हो सकता है कि कुछ सिद्धातकारो ने इस मसले पर लेनिन द्वारा निरूपित अपेक्षाओ को नजरअदाज कर दिया था। वैज्ञा-

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'भौतिकवाद और आनुभविक मीमांसा', १९०८।
** वही।

निक सिद्वातो की वस्तुगत सकारात्मक अंतर्वस्तु को विभिन्न बुर्जुआ
ताओ द्वारा अक्सर पेश की गयी व्याख्याओ के तद्रूप मानकर इन सि
कारों ने जाहिर कर दिया कि वे, लेनिन के शब्दों के भावा
के अनुसार सामान्य दार्शनिक और मामूली वैज्ञानिक हैं।

दूसरी तरफ, समाजवादी समाज मे विज्ञान के विकास मे
की समस्या को हल करते समय हमें लेनिन की माग को अपना
बनाना चाहिए· गुज़रे हुए युगो की वैज्ञानिक खोजो की वस्तुगत अ
को स्वीकार करने मे हमें यह ध्यान मे रखना है कि "रसायन, इ
व भौतिकी के विशेष क्षेत्रो मे अत्यत मूल्यवान योगदान करने मे
मे प्रोफेसर जब दर्शन के क्षेत्र मे आते हैं, तो उनमें से एक
रंचमात्र यकीन नहीं किया जा सकता* और उनमे से एक भी
का तब तक उपयोग नही किया जा सकता जब तक उन्हे उनकी
क्रियावादी प्रवृत्तियो से काट-छाटकर अलग न कर दिया गया हो

इससे हम समाजवादी समाज में वैज्ञानिक ज्ञान के विक
सातत्य के विशिष्ट गुणो का अभिनिर्धारण तथा उनके मूलस
निरूपण करने मे समर्थ हो जाते हैं। **ये गुण समाजवादी सम
विज्ञान के विकास से उत्पन्न होते हैं तथा उसी से निर्धारित हैं**
समाजवादी समाज मे विज्ञान द्वद्वात्मक-भौतिकवादी अध्ययन-वि
आधार पर विकसित हो रहा है और लोग, अपने देश के मालिक
के बाद, प्रकृति को तथा इतिहास मे पहली बार स्वय सामाजिक
को बदलने के लिए विज्ञान का उपयोग कर रहे है। सम
समाज मे विज्ञान के सामाजिक कार्यों में गुणात्मक परिवर्तन
अब से अतर्निहित सातत्य के विशिष्ट लक्षण को निर्धारित कर

अतर्विरोधी समाज में वैज्ञानिक ज्ञान के विकास की विर
इस ज्ञान की **वस्तुगत अंतर्वस्तु** तथा **वर्गीय अध्यारोपण** शामि
है, लेकिन उस हद तक जहा तक कि ये अध्यारोपण, चाहे वे
ही गलत क्यो न हो, विरासत पानेवाले वर्ग के लिए किसी
वजह से लाभदायी होते हैं। इसके विपरीत समाजवादी समाज मे
के विकास की विरासत का विषय **मात्र** विज्ञान की वस्तुगत

•

अन्तर्वस्तु तक ही सीमित होना है।

द्वंद्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद की अध्ययन-विधि हमें मानव ज्ञान के शताब्दियों पुराने विकास के दौरान पहले से ही संचित सारी सकारात्मक सामग्री में पारगत होने, उसमें से विभिन्न वर्गीय अध्यारोपणो को "काट छाटकर" निकाल फेंकने तथा इसे नयी वैज्ञानिक खोजो तथा उल्लेखनीय वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए आधार के रूप में इस्तेमाल करने की संभावना प्रदान करती है।

अतीत के युगो की वैज्ञानिक विरासत के मूल्याकन मे समाजवादी देशो के वैज्ञानिको ने यही स्थिति अपनायी है। उस विरासत का ठोस ऐतिहासिक मूल्याकन विश्लेषणो की पूर्वकल्पना करता है पहला, कुछ निश्चित सामाजिक-ऐतिहासिक दशाओ के सिलसिले में प्रत्येक विज्ञान के विशिष्ट विकास का, एक प्रदत्त युग मे उपलब्ध ज्ञान के स्तर और उस युग मे अतर्निहित वर्गीय संबंधो की प्रकृति का विश्लेषण ; दूसरा, वैज्ञानिक ज्ञान की सामान्य प्रणाली मे एक या अन्य विशेष विज्ञान के स्थान का विश्लेषण (जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, इस सिलसिले मे सामाजिक विज्ञानो से प्राकृतिक विज्ञानो के पृथक्कीकरण का विशेष महत्व है) , तीसरा, हर विशेष विज्ञान के लिए खास अतर्विरोधो की विशिष्ट प्रकृति का विश्लेषण और, चौथा, समाज की विभिन्न अवस्थाओ पर उसकी दार्शनिक समझ के स्तर का विश्लेषण।

४. सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया और कला में सातत्य। कम्युनिज्म और कलात्मक विरासत

विज्ञान के विकास की ही भाति, कला मे प्रगति भी सातत्य के बगैर, अतीत के कलात्मक अनुभव, रचनात्मक परपराओ और सौंदर्य के मानको का आलोचनात्मक ढग से पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना अकल्पनीय है। परतु फिर भी कला के विकास मे सातत्य विज्ञान में सातत्य से कई मौलिक तरीको मे भिन्न होता है और इसका मुख्य कारण कलात्मक बिंबों मे विश्व के संज्ञान के रूप में कला का अपना ही मूल सार है। फलत , कला की सांस्कृतिक विरासत में एक और [illegible] पक्ष जुड जाता है।

नहीं है कि कला मे अतर्वस्तु का सातत्य नहीं होता। कला की "शाश्वत समस्याएं" : प्रेम व घृणा, मैत्री व शत्रुता, व्यक्तिगत कर्तव्य का विचार, समाज के प्रति व्यक्ति का फ़र्ज, आदि से लोगों में हमेशा एक भावात्मक अनुक्रिया होती है और भविष्य मे भी हमेशा होगी। प्रत्येक युग की कला इन समस्याओं को अपने ढग से हल करती है, लेकिन अगली पीढ़ी के सामने वे फिर पैदा हो जाती हैं और नयी कलात्मक व्याख्या की माग करती हैं। परतु जहा विज्ञान की विशेषता संकल्पनाओं, विचारों, नियमो, प्रवर्गों, सूत्रो, विनियमों, आदि का, चाहे उन्होंने कोई भी रूप क्यों न ग्रहण किया हो, सातत्य है, वहा कला अपने विकास मे सिर्फ कलात्मक विचारों, रचनात्मक सिद्धांतों तथा सौंदर्यात्मक मानकों को ही नहीं, बल्कि संपूर्ण कलाकृतियों को भी विरासत मे प्राप्त करती है।

कला की असाधारण कृतिया हमेशा अतर्वस्तु और रूप की एकता का सार होती हैं। इसलिए कला मे ऐतिहासिक सातत्य की प्रक्रिया की पड़ताल करते समय हम किसी एक कलाकृति के रूप की उपेक्षा करते हुए उसकी मात्र अंतर्वस्तु पर ही भरोसा नही कर सकते हैं। हम एक कलाकृति, लेखक, कलाकार, सगीतकार, आदि के विचारों का मूल्याकन करने मे कितना ही आलोचनापूर्ण रुख क्यो न अपनाएं, हम उन सबको हमेशा उनकी व्यष्टिक अविभक्तता में, उनकी उस कलात्मक अद्वितीयता मे देखते हैं जिसमें रूप और अतर्वस्तु अपृथक्करणीय होते हैं।

कला के विकास का एक और महत्वपूर्ण लक्षण (विज्ञान के विकास से भिन्न रूप में) यह है कि इसमें सातत्य एक मूलतः भिन्न भूमिका अदा करता है। जहां प्रत्येक युगातरकारी वैज्ञानिक खोज के फलस्वरूप उस काल में प्रभावी रूप से प्रचलित संकल्पनाओ मे आद्योपात संशोधन हो जाता है, जहा विज्ञान की प्रत्येक बड़ी उथल-पुथल पूर्ववर्ती ज्ञान के सारे भडार को विशुद्ध ऐतिहासिक दिलचस्पी की चीज बना देती है (इस शर्त के साथ कि उनकी यौक्तिक अतर्वस्तु तथा उसमे निहित निरपेक्ष सत्य के अश गुणात्मक दृष्टि से नये ज्ञान मे समाविष्ट हो जाते हैं), वहा कला की असली उत्कृष्ट रचनाएं अनतकाल तक जीवित रहती हैं।

यह बात स्वयस्पष्ट है कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया मे कलात्मक

रचनात्मकता की अंतर्वस्तु और पद्धतियो, दोनो को विविध परिवर्तनो से होकर गुजरना पडता है, पर इसके बावजूद एक कलाकृति जब बन जाती है तो उसका सौंदर्यात्मक मूल्य कभी नष्ट नही होता और, फलत, उसका सज्ञानात्मक महत्व भी सदियों तक बरकरार रहता है। महान रूसी कवि अलेक्सान्द्र पुश्किन ने कला की इस विशिष्टता पर गौर किया था, उन्होने लिखा कि जहा प्राचीन खगोलविद्या, भौतिकी, आयुर्विज्ञान और दर्शन के महान प्रतिनिधियों की सफलताए, कृतिया तथा खोजे पुरानी पड़ जाती हैं और रोज ब रोज अन्यो से प्रतिस्थापित होती रहती हैं, वहा सच्चे कवियो की रचनाओ का ताजापन और चिर यौवन अनतकाल तक बना रहता है।

जाहिर है कि कला को विज्ञान तथा सामाजिक चेतना के अन्य रूपो से भिन्न बनानेवाला यह लक्षण वास्तविकता के बिबग्राही प्रतिबिब के रूप मे उसके मूलसार की महज एक और अभिव्यक्ति है। जन जीवन, निश्चित युग के ऐतिहासिक लक्ष्यो, आदि को कलात्मक बिबो के जरिये प्रतिबिबित करते हुए कला (बशर्ते हमारा सबध असली कला से हो) हमेशा सार्विक नियमो पर आधारित होती है और इसीलिए, अपने युग की ऐतिहासिक दशाओ से सीमित होने पर भी यह काल के सदर्भ मे सीमित नही होती, क्योकि राष्ट्र अमर होता है, सामाजिक प्रगति कुछ निश्चित नियमों के अनुरूप होती है और इतिहास का क्रम अपनी पूर्णता मे अविपर्येय होता है।

कला के विकास मे सातत्य का एक और मूल लक्षण (पहले की ही तरह विज्ञान से भिन्न) इस तथ्य मे निहित है कि यहा तकनीकी या वैज्ञानिक क्रातियो जैसे किसी ऐसे आकस्मिक परिवर्तन के लिए कोई जगह नही है, जो सुस्थापित परपरा को खत्म कर देता है। आम तौर पर कला मे एक नयी खोज पहले के सचित मूल्यो को निराकृत नहीं करती है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया मे, किन्हीं निश्चित युगो मे रचित कलाकृतिया नयी वास्तविकता के साथ जोड़ दी जाती हैं और जनता की नयी पीढ़ियों के सामाजिक टकरावो मे सक्रियता से शामिल कर ली जाती है, वे पहले से अज्ञात कुछ पक्षो और सभावनाओ को प्रकट कर देती हैं, नये अर्थ ग्रहण कर लेती है और इस तरह अपनी अक्षय निधियो की पूर्णत: उद्घाटित कर देती हैं।

यह बात अंतर्विरोधी समाजो पर पूर्णत लागू होती है। सामाजिक चेतना के एक वैचारिक रूप मे कला कुछ सामाजिक शक्तियो के वर्ग-हितो के साथ प्रत्यक्षतः जुड़ी होती है और वैचारिक सघर्ष मे सक्रिय रूप से शामिल होती है। कला तथा सामाजिक विज्ञानो मे सातत्य की सीमित और अंतर्विरोधी प्रकृति का स्पष्टीकरण यही है। वर्ग-सघर्ष के मोर्चो से सामाजिक जीवन को अपवर्तित करके कलाकार (चेतन या अवचेतन रूप से) हमेशा कुछ समस्याओ से जूझता है और इन समस्याओ को अपनी समझ के अनुसार अपने युग के सामाजिक आंदोलनो मे शिरकत करता है; इस अर्थ मे उसकी रचनात्मकता कमोबेश सीमा तक किसी एक पक्ष की पोषक है। इसी के अनुसार, कला के विकास में सातत्य भी सुस्पष्ट रूप से पक्षधर प्रकृति का हो जाता है।

अपने लेख 'पार्टी सगठन और पार्टी साहित्य' मे लेनिन ने यह दर्शाया कि बुर्जुआ लेखक, कलाकार या अभिनेत्री की स्वाधीनता धन्ना-सेठो, भ्रष्टाचार या वेश्यागमन पर उनकी सहज छुपी हुई (या पाखड-पूर्वक छुपायी हुई) पराधितता है।

कला तथा प्राकृतिक विज्ञानो को सामाजिक जीवन तथा वर्गीय रिश्तो से जोड़नेवाली कड़ी मे यह फर्क वैज्ञानिक तथा कलाकारो के विचारकलाप की प्रकृति पर ही अपनी छाप छोड देता है प्राकृतिक वैज्ञानिक तथा वर्ग-सघर्ष के बीच सबध अधिकाशत अप्रत्यक्ष होता है, जबकि कला मे यह सबध सामान्यत प्रत्यक्ष होता है। और यह विज्ञान तथा कला मे सातत्य की प्रक्रिया पर असर डाले बिना तथा उन्हे विभिन्न प्रकार के विशेष अर्थाभास प्रदान किये बिना नही रह सकता है।

हमारी राय मे यही वे सर्वाधिक मौलिक लक्षण है जो कला के विकास मे सातत्य को विज्ञान के विकास मे सातत्य से भिन्न बनाते है। परन्तु यह विश्लेषण तब तक अधूरा ही रहेगा, जब तक हम इस तथ्य को साथ ध्यान मे दिखाते कि यह भेद निरपेक्ष नही है और कि उन्हे एक दूसरे के मुकाबले मे खड़ा करना वैसे ही गलत होगा, जैसे कि विज्ञान तथा कला के बीच निरपेक्ष अतर करना। मौलिक ज्ञान की बिम्बात्मक कलात्मक अभिव्यक्ति तथा तार्किक वैज्ञानिक रूपो के बीच कोई अलघ्य दीवार नही है। इसके विपरीत वे सज्ञान तथा व्यावहा-

रिक क्रियाकलाप की एक ही प्रक्रिया मे अविभाज्य रूप से जुड़े हैं। कलात्मक रचनात्मकता के क्षेत्र में खोजबीन का उद्देश्य क्या है? प्रथम एव सर्वोपरि, यह है संपूर्ण प्रगतिशील कलात्मक संस्कृति की यथार्थवादी परंपराएं।

समाजवादी देशों में कला उनकी अपनी जातीय तथा विश्व संस्कृति द्वारा संचित वैचारिक तथा सौंदर्यात्मक निधियो के आधार पर विकसित होती है। इस सबध मे कला की जन-प्रकृति, लोगो के साथ उसके नजदीकी सबध का उसूल विशेष ही नही, बल्कि असाधारण महत्व का है। इस नियम का सार तथा महत् मानवतावादी अर्थ निम्नांकित शब्दों से व्यक्त किया जा सकता है कला निश्चय ही समस्त जनगण की, समस्त पुरुषों और नारियो की होनी चाहिए, इसे उनकी सेवा करनी ही चाहिए।

इसी मे कला का महत् मानवतावादी आशय निहित है। असली कला हमेशा मनुष्य को सबोधित की जाती रही है, हमेशा उसकी आकांक्षाओ, सुखो और दुखो को प्रतिबिबित करती रही है और खुशहाली की ओर उसके मार्ग को रोशन करती रही है।

यह स्पष्टीकरण है कला के तथाकथित "शाश्वत विषयों" जैसे सत्य, प्रेम, न्याय, आदि के अस्तित्व का। मनुष्य को ऊंचा उठानेवाली भावनाओ और आकाक्षाओं की स्तुति करते हुए कला केवल सौंदर्य के आदर्शों को स्थापित नही करती रही है, बल्कि विश्व को सौंदर्य के नियमो के अनुसार बदलने का आह्वान भी करती रही है; इसने मनुष्य का गौरवगान ही नही किया, बल्कि यह माग भी की है कि पुरानी दुनिया पर हावी अमानवीय व्यवस्था को सुदर और सामजस्य के असली मानवीय मानको से प्रतिस्थापित किया जाये।

कला की जन-प्रकृति की उस थीसिस का सार मार्क्सवादियो-लेनिनवादियो के लिए उनकी सौंदर्यशास्त्रीय सकल्पनाओ की आधार-शिला है।

कला की जन-प्रकृति का उसूल समाजवादी यथार्थवाद की आधार-भूमि है और समाजवादी देशों के कलाकार के लिए प्रमुख रचनात्मक सिद्धांत का काम देती है। जनता को सामाजिक विकास की प्रमुख शक्ति के, संस्कृति के सर्जक के रूप में देखनेवाली ऐतिहासिक भौतिकवाद

की सकल्पना पर भरोसा करते हुए लेनिन ने सिखलाया है कि कला जनता की है। उसे अपनी गहरी जडो समेत सर्वसाधारण के हृदयो तक पहुचना ही चाहिए। उसे इस सर्वसाधारण की भावना को, विचार और सकल्प को एक करना तथा उसे ऊचा उठाना ही चाहिए। उसे उसके अदर के कलाकार को जगाना और विकसित करना ही चाहिए।

सामाजिक प्रगति की निर्णायक शक्ति के रूप मे जनता के साथ बहुमुखी सपर्कों मे व्यक्त तथा कलात्मक संस्कृति के स्थायी उसूलो की शक्ल मे सारी उन्नत यथार्थवादी कला मे अतर्निहित सामान्य नियम के रूप मे समाजवादी समाजो मे कलात्मक संस्कृति की जन-प्रकृति मुख्यत इस तथ्य मे प्रकट होती है कि कलाकार इसे, एक तरफ, सामाजिक विकास के नियमो की समझ, ऐतिहासिक विकास की वस्तुगत दिशा तथा जनसमुदायो की भूमिका पर और, दूसरी तरफ, कला के श्रेष्ठ, मानवीय आशय की मान्यता एव उसके द्वारा सपन्न सामाजिक-सौदर्यात्मक कार्य के महत्व पर आधारित अपनी रचनात्मकता के सचेत सिद्धात के रूप मे अपनाता है। दूसरे शब्दो मे, जहां अतीत के प्रगतिशील कलाकार कला की जन-प्रकृति को "सहजज्ञान" से और नियमत स्वत स्फूर्त ढग से समझते थे, वहा समाजवादी यथार्थवाद इस उसूल को अपने एक आधार नियम के रूप मे निरूपित करता है। इस उसूल का अर्थ है जनता के बधुत्व के सिद्धात को कलाकार की विश्व समझ के सार-रूप मे, उसकी सामाजिक और सौदर्यबोधात्मक स्थिति के रूप मे सचेत रूप से अपनाना और लागू करना।

जनता के जीवन मे कला की भूमिका की सामाजिक समझ और नयी दुनिया के निर्माणार्थ अपनी जनता के साथ सक्रिय सहभागिता करते हुए एक व्यक्ति के रूप मे अपने कार्यों के प्रति कलाकार के सचेत रवैये का अर्थ जनता द्वारा अपने लिए निश्चित लक्ष्यो की शीघ्र प्राप्ति के उद्देश्य से कलाकार की रचनात्मकता मे समाजवादी यथार्थवाद के महत्व का मूल्याकन भी है।

जैसा कि सुज्ञात है यथार्थवाद कला के साथ ही विकसित हुआ और यह उसकी प्रकृति के पूर्णत. अनुरूप है। यही कारण है कि सारी विश्व कला के विकास की सामान्य दिशा का प्रतिनिधित्व यदाकदा कुछ "टेढे-मेढे रास्तो" तथा "बवडरो" के बावजूद हमेशा यथार्थवाद

ने ही किया है। यहां वर्गीय समाज में पहले की कला की उत्पत्ति की याद दिलाना काफी होगा। यहां चट्टानों में की गयी चित्रकला तथा आदिम नये श्रम-प्रक्रियाओं और घरेलू संबंधों को प्रतिबिंबित करती थी। या उस दुर्गम मार्ग की याद करना काफी होगा जिससे होकर यथार्थवाद अंतर्विरोधी सरचनाओं में हर प्रकार की बाधाओं (विशेषकर धार्मिक) को पार करते हुए पुनर्जागरण काल में असाधारण उपलब्धियों तक पहुंचा था।

विश्व कला का संपूर्ण इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि यथार्थवाद में प्रगति की असीमित सुप्त संभावनाएं छिपी हैं। यथार्थवाद रचनात्मकता का एक रूप मात्र नहीं है, बल्कि यह उसके वास्तविक सार का प्रतीक है। जीवन को प्रतिबिंबित करने में यथार्थवाद वास्तविकता की मात्र नकल तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह उसके अंदर लगातार कुछ नये पक्षों को खोजता रहता है, उनको विकसित करने का आह्वान करता है और स्वयं अपने विकास की प्रक्रिया में विकासमान अंतर्वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए नये, अधिक पूर्णताप्राप्त रूपों की खोज करता रहता है।

सबसे पहले और सर्वोपरि रूप से, मानव जीवन को व्यक्त करने का प्रयत्न करके यथार्थवाद विभिन्न ऐतिहासिक युगों में सामाजिक प्रगति की खातिर लोगों के संघर्ष के घनिष्ठ संपर्क में विकसित होता रहा है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि पश्चिम में प्रारंभिक बुर्जुआ क्रांतियों के युग में यह (मुख्यत. आलोचनात्मक यथार्थवाद के रूप में) कला के संपूर्ण विकास में परिव्याप्त था। साम्राज्यवाद के युग में इसके खिलाफ कुछ यथार्थवाद विरोधी प्रवृत्तियों, जो अपने सामाजिक सार में जन-भावना की विरोधी थी, को खड़ा करने के विभिन्न प्रयत्नों के विरुद्ध संघर्ष में यथार्थवाद एक ऐसी नयी समाजवादी कला का ध्वज बन गया जो २०वीं सदी के प्रारंभ में जन्मी थी। आज समाजवादी यथार्थवाद का रूप धारण करके यह मनुष्यजाति की कलात्मक संस्कृति में एक नये युग का द्योतक बन गया है।

इससे आगे यह नोट किया जाना चाहिए कि समाजवादी यथार्थवाद को कला में रचनात्मकता की एकमात्र सच्ची तथा फलप्रद पद्धति मानते हुए आज का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन इसे

रचनात्मक सस्कृति मे सातत्य को प्रमाणित करने के लिए ही इस्तेमाल नही करता, बल्कि समाजवादी यथार्थवाद की कला को कलाकारो द्वारा अपने विशेष विषयो व रचनात्मक खोज के, अपनी इच्छाओ, रुचियो और आकाक्षाओ के अनुरूप स्वय छाटे हुए और व्यक्तिगत शैलियो की असीमित विविधता के रूप मे भी देखता है।

अत, समाजवादी यथार्थवाद पूर्ववर्ती युगो मे प्राप्त सारी कलात्मक उपलब्धियो का निषेध करने के बजाय उन्हें और भी ज्यादा विकसित करता है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है, "समाजवादी यथार्थवाद की कला मे, जो जनता की पक्षधरता तथा उसके साथ बधुत्व के उसूलो पर आधारित है, जीवन के कलात्मक चित्रण मे साहसिक नवोन्मेष तथा विश्व सस्कृति की प्रगतिशील परपराओ का सवर्धन और विकास साथ-साथ चलते हैं। लेखको, कलाकारो, सगीतकारो, रगमच तथा फिल्म कर्मियो के सामने बहुविध रूपो, शैलियो तथा विधाओ का उपयोग करते हुए अपनी रचनात्मक पहल तथा कुशलता का प्रदर्शन करने के सारे अवसर हैं।"*

इस सिलसिले मे, हमारे सामने कलात्मक रचनात्मकता मे परपरा तथा नवोन्मेष की द्वद्वात्मकता से सबधित एक महत्वपूर्ण तथा अत्यत दिलचस्प प्रश्न आता है।

इस द्वद्वात्मकता का सार मुख्य रूप से नवोन्मेष तथा परपरा की घनिष्ट अतर्निर्भरता मे, पारस्परिक स्वागीकरण की उनकी प्रवृत्ति मे निहित है। मिसाल के लिए, १९वी सदी की रूसी कविता मे शानदार नवोन्मेष करनेवाले कवि अलेक्सान्द्र पुश्किन ने लोमोनोसोव तथा देर्जाविन की कविता द्वारा स्थापित नियमो का उल्लघन कर दिया, उन्होंने एक ऐसा कविता शैली का समारभ किया जो आडबर, दिखाऊपन तथा पुरातनता से मुक्त थी और कविता की नयी नयी तथा साहित्यिक शैलियो (कवितात्मक उपन्यास, आदि) की रचना की, स्वय अपनी व्यक्तिगत ("पुश्किन की") छदरचना की जो कालातर मे रूसी कविता की सुदर्शित परपरा बन गयी।

रूपवादी आलोचना यह मानता है कि कला का विकास एक द्वद्वा-

---

* सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम १९६१।

ने ही किया है। यहां वर्गीय समाज से पहले की कला की उत्पत्ति ही याद दिलाना काफी होगा। वहां चट्टानो में की गयी चित्रकला तब आदिम लये श्रम-प्रक्रियाओ और घरेलू संबंधो को प्रतिबिंबित करती थी। या उस दुर्गम मार्ग की याद करना काफी होगा जिससे होकर यथार्थवाद अंतर्विरोधी संरचनाओं मे हर प्रकार की बाधाओ (विशेषकर धार्मिक) को पार करते हुए पुनर्जागरण काल मे असाधारण उपलब्धियो तक पहुंचा था।

विश्व कला का संपूर्ण इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि यथार्थवाद मे प्रगति की असीमित सुप्त संभावनाए छिपी हैं। यथार्थवाद रचनात्मकता का एक रूप मात्र नही है, बल्कि यह उसके वास्तविक सार का प्रतीक है। जीवन को प्रतिबिंबित करने मे यथार्थवाद वास्तविकता की मात्र नकल तक ही सीमित नही है बल्कि यह उसके अंदर लगातार कुछ नये पक्षो को खोजता रहता है, उनको विकसित करने का आह्वान करता है और स्वयं अपने विकास की प्रक्रिया मे विद्यमान अंतर्वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए नये, अधिक पूर्णताप्राप्त रूपो की खोज करता रहता है।

सबसे पहले और सर्वोपरि रूप से, मानव जीवन को व्यक्त करने का प्रयत्न करके यथार्थवाद विभिन्न ऐतिहासिक युगों मे सामाजिक प्रगति की खातिर लोगो के संघर्ष से घनिष्ठ संपर्क मे विकसित होता रहा है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नही है कि पश्चिम मे प्रारंभिक बुर्जुआ क्रांतियो के युग मे यह (मुख्यत आलोचनात्मक यथार्थवाद के रूप मे) कला के संपूर्ण विकास मे परिव्याप्त था। साम्राज्यवाद के युग मे इसके खिलाफ कुछ यथार्थवाद विरोधी प्रवृत्तियों, जो अपने सामाजिक सार मे जन-भावना की विरोधी थी, को पैदा करने के विभिन्न प्रयासो के विरुद्ध संघर्ष मे यथार्थवाद एक ऐसी नयी समाजवादी कला का स्रोत बन गया जो २०वी सदी के आरंभ मे जन्मी थी। आज समाजवादी यथार्थवाद का रूप धारण करके यह मनुष्यजाति की कलात्मक प्रगति का एक नये युग का द्योतक बन गया है।

[illegible] यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि समाजवादी यथार्थ-
[illegible] की [illegible]
[illegible] अंतर्राष्ट्रीय ऐतिहासिक [illegible]

कलात्मक संस्कृति में सातत्य को प्रमाणित करने के लिए ही इस्तेमाल नहीं करता, बल्कि समाजवादी यथार्थवाद की कला को कलाकारों द्वारा अपने विशेष विषयों व रचनात्मक खोज के, अपनी इच्छाओं, रुचियों और आकांक्षाओं के अनुरूप स्वयं छांटे हुए और व्यक्तिगत शैलियों की असीमित विविधता के रूप में भी देखता है।

अत, समाजवादी यथार्थवाद पूर्ववर्ती युगों में प्राप्त सारी कलात्मक उपलब्धियों का निषेध करने के बजाय उन्हें और भी ज्यादा विकसित करता है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है, "समाजवादी यथार्थवाद की कला में, जो जनता की पक्षधरता तथा उसके साथ बंधुत्व के उसूलों पर आधारित है, जीवन के कलात्मक चित्रण में साहसिक नवोन्मेष तथा विश्व संस्कृति की प्रगतिशील परंपराओं का संवर्धन और विकास साथ-साथ चलते हैं। लेखकों, कलाकारों, संगीतकारों, रंगमंच तथा फिल्म कर्मियों के सामने बहुविध रूपों, शैलियों तथा विधाओं का उपयोग करते हुए अपनी रचनात्मक पहल तथा कुशलता का प्रदर्शन करने के सारे अवसर हैं।"*

इस सिलसिले में, हमारे सामने कलात्मक रचनात्मकता में परंपरा तथा नवोन्मेष की द्वंद्वात्मकता से संबंधित एक महत्वपूर्ण तथा अत्यंत दिलचस्प प्रश्न आता है।

इस द्वंद्वात्मकता का सार मुख्य रूप से नवोन्मेष तथा परंपरा की घनिष्ट अंतर्निर्भरता में, पारस्परिक स्वांगीकरण की उनकी प्रवृत्ति में निहित है। मिसाल के लिए, १९वीं सदी की रूसी कविता में शानदार नवोन्मेष करनेवाले कवि अलेक्सान्द्र पुश्किन ने लोमोनोसोव तथा देर्जाविन की कविता द्वारा स्थापित नियमों का उल्लंघन कर दिया, उन्होंने एक ऐसा कविता शैली का समारम्भ किया जो आडंबर, दिखाउपन तथा पुरातनता से मुक्त थी और कविता की नयी लयों तथा साहित्यिक शैलियों (कवितात्मक उपन्यास, आदि) की रचना की, स्वयं अपनी व्यक्तिगत ("पुश्किन की") छंदरचना की जो कालान्तर में रूसी कविता की सुस्थापित परंपरा बन गयी।

मार्क्सवादी अवधारणा यह मानता है कि कला का विकास एक द्वंद्वा

---

* 'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम', १९६१।

त्मक प्रक्रिया है यह अनवरत नवीकरण के बिना, अंतर्वस्तु तथा रूप के निरंतर बदलाव के बिना अकल्पनीय है, जबकि अपनी बारी में पश्चोक्त मनुष्यजाति के कलात्मक अनुभव में संचित सौंदर्यशास्त्रीय व रचनात्मक साधनों के सातत्य के बिना, अर्थात्, एक ठोस परंपरा के बिना, अकल्पनीय है। परंपरा और नवोन्मेष की द्वंद्वात्मक अंतर्निर्भरता तथा उनके द्वंद्वात्मक नवोन्मेष के बगैर नयी पीढ़ी के वास्ते कलात्मक विरासत के सच्चे महत्व को सही ढंग से आंकना और, फलतः, नयी, समाजवादी कला के विकास को समझना असंभव होगा।

परंपरा और नवोन्मेष की अंतर्निर्भरता को न समझ पाना कला की अंतर्वस्तु तथा रूप के सह-संबंध की द्वंद्वात्मकता-विरोधी दृष्टि का परिणाम है, कलात्मक रूप की सापेक्ष स्वाधीनता की अधिभूतवादी अवहेलना का परिणाम है, नयी अंतर्वस्तु के विकासार्थ पुराने रूपों के तथा कलात्मक रचनात्मकता के अधिक पूर्ण रूपों की उत्पादक खोज में कला के विकास की हर अवस्था पर कलात्मक परंपरा के महत्व को कम करके आंकने का परिणाम है।

जैसा कि शब्द के अर्थ से जाहिर है, परंपरा और, खास तौर से, कलात्मक परंपरा ऐतिहासिक विकास का फल है। कलात्मक परंपरा में निम्नांकित तत्व शामिल हैं: १. सामान्य सामाजिक चेतना के विशिष्ट रूप में अंतर्निहित तत्व, यानी, निश्चित सौंदर्यात्मक नियम, ठोस कलात्मक रचनात्मक तरीके, आदि जो भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक युगों में भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में समान होते हैं; २. वे तत्व जो कला में विशिष्ट राष्ट्रीय रूपों के साथ संबद्ध होते हैं और एक राष्ट्र विशेष के दायरे के अंदर पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं और ३. वे तत्व जो कला में विशिष्ट स्कूलों के अस्तित्व के लाक्षणिक होते हैं।

कला के विकास की प्रक्रिया में उपरोक्त सभी परंपराएं, जो बहुत लंबे समय में और कभी-कभी शताब्दियों की अवधि में बनीं, सापेक्षतः स्थायी गुणों के एक समुच्चय का निर्माण करती हैं। ये गुण अपने स्थायित्व से लोगों की चेतना और भावनाओं पर प्रभाव डालते हैं। इस प्रभाव का बल कलात्मक परंपराओं में उन प्रवृत्तियों की उपस्थिति के सीधे अनुपात में होता है जो लोगों, उनके जीवन व संघर्ष के निकट होती हैं, यद्यपि जन-जीवन के साथ इस संपर्क के टूट जाने पर परंपराएं

महत्ता खत्म नहीं होती। वे विद्यमान रहती हैं और नयी जीवन-पद्धति को प्रभावित करती रहती हैं। पर इसके बावजूद उन अप्रचलित परंपराओं, जिन्हें संग्रहालयों और अभिलेखागारों में सुरक्षित रखना पड़ता है, का प्रत्येक ठोस ऐतिहासिक युगों में कला के विकास के लिए कोई महत्व नहीं होता है।

कलात्मक परंपरा तथा किसी विशेष कलाकार द्वारा परंपरा के साथ घिरे रहने में बहुत अंतर है। पश्चोक्त के मामले में कलाकार उन अभ्यासगत, स्थायी और, फलतः, अनम्य रचनात्मक टेक्नीकों में बंध जाता है जो नये युग के लिए मृत होती हैं, जबकि परंपरा उसे संसार, कला तथा अपनी रचनात्मकता को अधिक गहराई में समझने और जीवन को उसकी सत्यात्मकता में देखने में समर्थ बना देता है।

आलंकारिक भाषा में एक पारंपरिक कलाकार संग्रहालय की दुनिया का प्राणी होता है। वह अत्यंत ईमानदार तथा चित्रकला की शैलियों में पारंगत हो सकता है, पर इसके बावजूद कला के सार–जीवन के सजीव आवेग–के प्रति बिल्कुल बेखबर हो सकता है। हम उसकी रचनात्मकता की तुलना नवोन्मेष कलाकारों की रचनात्मकता से करने की कोशिश करते हैं। पारंपरिकता के बंधनों को तोड़कर वे गतिशील हरावलवादी कला की परंपरा का विकास करते हैं। इसी में उनकी क्रांति-कारी दर्शन और रचनात्मकता की वास्तविक महत्ता निहित होती है। और इसी विशेष कारण से उनकी रचनात्मकता के उत्पाद ही क्लासिक बन जाते हैं।

परंपरा अत्यंत गतिशील होती है तथा तब भी इसके कार्य विशेष ऐतिहासिक परंपरा तथा कला के विकास की प्रगतिशील प्रवृत्तियों के बीच अनुपात से निर्धारित होते हैं जब भी यह कला के पीछे [illegible] के स्थापत्य व स्वरूप होती है जब भी यह कला के विकास में प्रगति-शील [illegible] करती है। यह स्पष्ट है कि इस मामले में ऐतिहा-सिक परंपरा [illegible] का [illegible] दर्शकों में [illegible] हो [illegible] ऐतिहासिक [illegible] के अनुसार परिवर्तित होती है [illegible] युग [illegible] है।

यही कारण है कि [illegible] व कला के [illegible] [illegible] [illegible] कला के [illegible] [illegible] के '[illegible]

के बारे में विभिन्न "उग्रवामपथी" तथा मूलतः थोथी समाजवैज्ञानिक अटकलो को दृढता से त्याग देते हैं। पूर्व-समाजवादी सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ की सस्कृति के साथ "वर्गीय बेमेलपन" के नाम पर अतीत की सारी कलात्मक परपराओ के परित्याग का उनका आह्वान महज बाहर से ही क्रातिकारी प्रतीत होता है। वास्तव मे यह माग प्रतिगामी है, क्योकि इसके कार्यान्वियन से समाजवादी कलात्मक सस्कृति की प्रगति विलबित हो जाती।

इस आह्वान का प्रतिगामी सार तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब हम यह ध्यान मे रखे कि पूर्व-समाजवादी सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे सामाजिक समुदाय के अन्य रूप विद्यमान होते हैं, मसलन, पूजीवादी समाज की दशाओ के अतर्गत जातीय समुदाय। अतर्विरोधी समाजो मे वर्ग-हित एक दूसरे के कैसे ही विरोधी क्यो न हो, प्रत्येक जाति कुछ ऐसी चीज की रचना करती है, जो आम तौर से जातीय होती है और सस्कृति की अतर्वस्तु मे भी प्रकट होती है तथा रूप में भी।

साहित्य और कला के विकास के मामले मे इन कारको का असर विशेष अधिक होता है। "असली उपन्यास और असली दीर्घ कहानिया," निकोलाई चेर्निशेव्स्की ने अपने उपन्यास 'लघु उपन्यास मे सभी कहानिया' की प्रस्तावना मे लिखा, "परिवेश मे स्थानीय रग तथा उनके पात्रो मे जातीय तत्त्व के बिना सभव नही हो सकती हैं। स्थानीय रग तथा पात्रो के जातीय रिवाजों, विचारो और मुखमण्डल की दशा के बगैर न तो क्रियाव्यापार मे वास्तविकता – सच्चाई – होती है न पात्रो मे सभाव्यता।"

जो अध्येता कथा मे राष्ट्रीय कारक से और, [illegible] समाजवाद के लिए कलात्मक विरासत के महत्व से इनकार करते हैं उनकी [illegible] सबसे बड़ी [illegible] कलात्मक परपराओ का निषेध करना है। यह [illegible] विकासो के अनुक्रम के प्रगतिवादी सिद्धात के विरुद्ध [illegible] एक प्रकार की प्रतिक्रिया है। यह [illegible] कलात्मक परपराओ के [illegible] मूल्य के निषेधीकरण के [illegible] कलात्मक परपराओ की वर्तमान [illegible] युग पर [illegible] उत्पन्न हुई थी। [illegible] "उग्रवामपथी" सिद्धातकार [illegible]

हेतिपिक आलोचकगण समाजवादी संस्कृति के विकास मे कलात्मक
परा की हर भूमिका को नास्तिवादी ढग से अस्वीकार करते हुए
र, इसलिए, अंत में संपूर्ण कला मे जातीय परपरा की भूमिका
इनकार करते हुए अतिवादी स्थिति मे पहुच गये थे।

कलात्मक परपरा को निरपेक्ष बनानेवाली दोनो प्रत्ययवादी विचार
तियो तथा कलात्मक परपरा के महत्व को नकारनेवाले "आर्थिक
तिकवाद" के सिद्धातो के साथ विवाद मे सोवियत कला व साहित्य
मीक्षको ने पिछली पीढ़ियो द्वारा सचित कलात्मक अनुभव के और,
स तौर से, कम्युनिज्म के अतर्गत कला के भविष्य के लिए जातीय
लात्मक परपरा* के विराट मूल्य को उद्घाटित किया।

कला के लिए जातीय कलात्मक परपराओ के महत्व के अपने मूल्याकन
सोवियत सघ के जन-कलाकार तथा सर्वाधिक प्रसिद्ध कलाकार
लिया ग्लाजुनोव** ने दावे से कहा है "जाति तथा जातीय सत्व के
बना कोई कलाकार नही होता है। अंतर्राष्ट्रवाद जातीय कला के
वभिन्न फूलो से निर्मित सुवासित गुलदस्ता है। मैं अपने विश्वास से
अंतर्राष्ट्रवादी हू और मैं प्रत्येक जनगण की जातीय परपराओ और
अनुष्ठान के अधिकतम विकास को कला का लक्ष्य मानता हू। मैं कला
मे किसी भी ऐसी लाभदायक वस्तु के बारे मे नही जानता जो जातीय
रग मे ओतप्रोत हुए बिना अस्तित्व मे हो। इसलिए, जब भी हम किसी
ऐसे निस्तेज मानक को देखते हैं जिसे किसी ने आधुनिक या अतिआधु-
निक कला की सज्ञा दे दी है, तो मैं उसे व्यक्तिगत रूप से एक सनिग्ध
कला मानता हू। यह सबसे ज्यादा उन समीक्षको के छोटे समूह मे चलती
है जो कला को विशिष्ट वर्ग की कला और जनसमुदायो की कला मे
विभाजित करते है और ऐसा करते हुए भारी भ्रम मे हैं। हमारे समसाम-
यिक ऐसी व्यक्तित्वहीन प्रदर्शनियो के प्रति उदासीन हैं। अमूर्तवाद मुर्दा
है।"

---

* वैज्ञानिक ज्ञान के विकास से [illegible] के विपरीत यह कला के विकास मे [illegible] का एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण गुण है।

** सोवियत कलाकार ने ग्लाजुनोव की विराट [illegible] 'विश्व संस्कृति और सभ्यता को सोवियत जन के जनगण की अनुदान' [illegible] को [illegible] में दी जो [illegible] के [illegible] के मुकाबले में [illegible] हुई है।

की समस्या" को अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति सबसे पहले और सर्वोपरि रूप से मनुष्य की उनकी संकल्पना मे, उसके सामाजिक सत्व मे, उसकी सामाजिक आत्मपुष्टि में और उसकी सामाजिक उपलब्धियो मे मिली। इसीलिए रूसी क्लासिकी साहित्य में सामाजिक-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की इतनी बड़ी भूमिका है। इस विश्लेषण का सार मानवीय व्यक्तित्व तथा भूदास प्रथा के बीच पूर्ण अनमेल के उद्घाटन मे, मानव-सम्मान की पुनस्स्थापना की उसकी मांग मे और उन तरीको की इसकी छानबीन मे निहित है जो या तो इस लक्ष्य की ओर जाते हैं या इससे परे।

पूर्ववर्ती युगों की बहुजातीय कला की अंतर्वस्तु से सारी प्रगतिशील प्रवृत्तियो को विरासत मे ग्रहण करनेवाली समाजवादी कलात्मक संस्कृति कला के जातीय रूप की सारी उपलब्धियों की भी वैध वारिस है।

कला के जातीय रूप के विकास मे सातत्य पर विचार करते समय हमे समस्या के सरलीकरण से बचना चाहिए। इसमे कोई संदेह नही है कि हम हर कविता, चित्र, कथा या संगीत की धुन मे "जातीय पृष्ठभूमि" या "जातीय ध्वनि" नही चाहते। हमारा संबंध स्थिर वस्तुओ के चित्रण से, सागर की दृश्यावलि या गीतमय कविता से हो सकता है। या यह किसी अन्य जाति के जीवन से प्रेरित धुन हो सकती है, जैसे कि चायकोव्स्की का 'नियापोलिटन गीत', अथवा रीम्स्की-कोर्साकोव का 'पूर्वी रोमांस'। साफ जाहिर है कि किसी एक विशेष कलाकार की रचनात्मकता को उसकी कृति की महज सतही जांच से उद्घाटित नही किया जा सकता है और न ही उसके संपूर्ण रचनात्मक कृतित्व से पृथक केवल एक कृति के विश्लेषण से ही ऐसा संभव है। उसकी सारी रचनात्मकता को उसके संपूर्ण कृतित्व मे देखना जरूरी है।

साथ ही यह समझना भी बहुत महत्वपूर्ण है कि जातीय रूप स्वयं किसी एक निश्चित स्थायीकृत वास्तविकता से कुछ अधिक का द्योतक होता है। इसमे भी परिवर्तन हो सकते हैं और, यद्यपि वे उतने द्रुत नही होते जितने कि अंतर्वस्तु के परिवर्तन, तथापि कभी-कभी वे भी अत्यंत नाटकीय होते है। ये परिवर्तन उन बड़े कलाकारो की रचनात्मकता मे विशेष स्पष्ट होते है जिन्होंने कलात्मक साधनो के पारंपरिक

तौर का दृष्टा से परिष्कार करके कलाकारो की अनेक पीढ़ियो के
नये मार्ग उपलब्ध किये है।

मिसाल के लिए गोथे, हैगल या मायाकोव्स्की जैसे क्रांति
नवीकरणकर्ताओं द्वारा उठाये गये पहले रचनात्मक प्रयत्न स्वं
नियमो के उल्लंघन या उन जातीय रूपो के पूर्ण अस्वीकरण मे
होते है जिन्हे बनने मे शताब्दियो का समय लगा था। पर इसके बाद
जैसा कि कला-क्षेत्र मे कुछ मार्क्सवादियो का गलत विश्वास है, नवो
का जातीय परपराओ से पूर्ण सबधविच्छेद कभी नही होता
सर्वोन्मेष सांस्कृतिक विकास की एक नयी अवस्था पर जातीय परप
की निरतरता तथा उनको और अधिक समृद्ध बनाने मे निहित
खास तौर से क्रांतिकारी कवि मायाकोव्स्की मजबूती से जातीय धर
पर खड़े थे। उनके नवोन्मेष की महानता रूसी छद के नये रूपो
खोजने के लिए रूसी साहित्य के युगो पुराने अनुभव को उपयोग म
लाने और उनके अपने जनगण की भाषा के भरपूरे खजाने मे छिपी
पूर्णत नयी अज्ञात क्षमता को काम मे लाने की उनकी योग्यता पर
आधारित थी।

जातीय कलात्मक परपराओ के प्रति इस रवैये का अर्थ है कि अपने
तड़क-भड़कदार बिबो और भाषा की आडबरपूर्ण वाग्मिता सहित पूर्वी
कविता को भी सग्रहालय मे बद नही किया जा सकता है। बेशक आज
उसकी अधिक पुरानी विधियो की यात्रिक नकल करना बुद्धिमत्ता नही
होगी। पुरानी चीज की भौंडी नकल कलाकार को नवीन के चित्रण
मे अक्षम ही नही बनाती, बल्कि पुरातन का भी अवमूल्यन कर देती है।

परतु इसका यह मतलब नही है कि हमे पूर्वी कविता की परपराओ
के इस्तेमाल से बचना चाहिए। क्या बुलबुल के बोलो ने मनुष्य को
खुशी देना सिर्फ इसलिए बद कर दिया है कि यह पूर्वी कवियो द्वारा
प्रयुक्त एक स्थायी बिब है? जाहिर है कि यहा समस्या स्वय बिब
नही, बल्कि यह तथ्य है कि यह बिब बहुत घिसा-पिटा हो गया है।
यही बात उन अन्य शैलियों के सारे समुच्चय पर लागू होती है जो
पूर्वी कविता की लाक्षणिक हैं। आजकल उन्हे सोवियत पूर्व के विभिन्न
जनतत्रो के अनेक कवियों द्वारा सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जा रहा
है। और इसमे कोई कृत्रिमता नही है, बशर्ते कि कवि पुराने का ये

...वस्तु में ठूंस या कलात्मक रचनात्मकता के पुराने तरीकों
...की नयी सामाजिक-सौंदर्यात्मक समस्याओं को मानकीकृत कुंजी
...न न करे, बल्कि परंपरा को वास्तविकता के यथार्थवादी चित्रण
...अभिन्न रूप से जोड़े।

...वियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों में संचित समाजवादी
...की कलात्मक संस्कृति के विकास के अनुभव इस तथ्य को
...स्पष्ट रूप से प्रमाणित करते हैं कि जातीय पृथकतावादी
...पर काबू पाने के बाद समाजवादी जातियां अपनी युगों पुरानी
...कलात्मक परंपराओं से सफलतापूर्वक आत्मसात कर रही हैं
...का विकास कर रही हैं, उनमें नयी समाजवादी अंतर्राष्ट्रवाद
...विषु का समावेश कर रही हैं। अतीत के कलात्मक अनुभव से
...ए बिना समाजवादी जातियों के आज का द्रुत कलात्मक उत्थान
...होता।

...संदर्भ में सर्वाधिक उत्तम उदाहरण जार्जियाई कलाकारों की
...ता है, जो जार्जिया के संपूर्ण इतिहास में कारीगरों द्वारा
...अनुभव के आधार पर अपनी जातीय कला के नये रूपों का
...र रहे हैं। मसलन धातु में उकेरने की प्राचीन जातीय कला
...र्जित करते हुए जार्जियाई कलाकारों ने इसे एक नयी दिशा
... है। जहां अतीत में इस किस्म की कला सबसे पहले देव-
...चौखटों तथा गहने बनाने के काम आती थी वहां आज के
...कारीगर विशाल पैनलों के नमूने उकेर रहे हैं। वे विषयवस्तु
...में कितने ही भिन्न क्यों न हों उन सभी की रग में अपनी
...के प्रति प्यार तथा जातीय परंपरागत तत्त्वों को आधुनिक
...कला के साथ समन्वित करने की प्रबल कामना है।

सोवियत लोग रुब्लेव के भित्तिचित्रों, रेम्ब्रां के चित्रों, रोदि
मूर्तियों तथा लेजेर की चीनी मिट्टी की कलाकृतियों को श्रद्धापूर्वक सु
क्षित रखते हैं; वे पुश्किन व लेर्मोतोव की कविताओं को, पेत्रा
सोनेटों को तथा उमर खय्याम की रुबाइयों की प्रतियों का भक्तिपू
पुनर्मुद्रण करते हैं और वे बीथोवन तथा चायकोव्स्की के संगीत का सु
पभोग करते हैं।

लेकिन आज का जीवन हमारे लेखकों, कलाकारों और संगी
कारो के सम्मुख जो काम सौंपता है वे अभूतपूर्व हैं। कला का मु
लक्ष्य विश्व के महान क्रांतिकारी रूपांतरण तथा कम्युनिज्म के निम
मे सक्रिय योगदान करना है। सोवियत साहित्य और कला का क
है कि वे प्रत्येक व्यक्ति को एक सर्जक के रूप मे जगाये, उसमे सम
के हितार्थ काम करने, अपनी सारी योग्यताएं, क्षमताएं तथा प्र
भाएं इसी उद्देश्य को समर्पित करने की इच्छा का संचार करें। इस
तात्पर्य है कि सोवियत कला पहले से ही विकसित सौंदर्यशास्त्रीय नियमों..
रचनात्मक मानकों तथा शिल्पों के मात्र उपयोग तक ही सीमित नहीं
रह सकती। इस काम के लिए परपरा स्वत: अपने आप में पर्याप्त नहीं
है, नये लक्ष्य नये साहसिक निर्णयों की, रचनात्मक खोजो और दिलेरी
की माग करते हैं।

यह इस बात का स्पष्टीकरण है कि सोवियत कला महज नकल,
प्रतिकृति बनाना तथा यांत्रिक उपयोग के द्वारा कलात्मक विरासत का
इस्तेमाल करनेवाली सारी प्रवृत्तियों का विरोध क्यो करती है।

दूसरी तरफ, क्लासिकी कला की उपलब्धियों के रूपवादी परित्याग,
अतीत की यथार्थवादी परपराओं का नास्तिवादी निषेध (अमूर्तवाद,
रूपवादी मशीन, आदि) के साथ अथवा किसी "मौलिक" के पीछे
भागने की प्रवृत्ति और सोवियत कला में नवोन्मेष के बीच कोई भी
समानता नहीं है। हर "मौलिक" वस्तु नयी नहीं होती। हर नये
के लिए जरूरी है कि वह अग्रगामी विकास के वस्तुगत नियमों के
अनुरूप हो। यह जरूरी है कि वह प्रगतिशील और उन्नत हो।

कला मे परपरा और नवोन्मेष के अतःसबध की समस्या कला और
मार्क्सवादी आलोचना के सिद्धान्तकारों का ध्यान आकृष्ट करती रही
है, जो उचित ही है। इसमें सदेह नहीं कि इसका एक कारण उस

आधुनिक लोगो की सैद्धांतिक खोज तथा कलात्मक व्यवहार है जो कला मे प्रगति को कलात्मक परपरा के साथ, अनेक शताब्दियों के दौरान मनुष्यजाति द्वारा सचित संपूर्ण कलात्मक अनुभव के साथ निर्णायक सबधविच्छेद के रूप मे देखते हैं।

परतु, कलात्मक परपरा का परित्याग कलाकृतियो के मूल्याकन मे किन्ही भी वस्तुगत कसौटियो के परित्याग के बराबर है।

सोवियत कला में समाजवादी यथार्थवाद को समृद्ध बनानेवाली साहसिकता तथा अग्रगामिता अतीत की कलात्मक परपराओ के साथ आगिक रूप से घुलमिल जाती हैं। इन यथार्थवादी परपराओ को विकसित करके सोवियत कला विश्व सस्कृति मे **सैद्धांतिक रूप से** भी (समाजवादी यथार्थवाद की वैचारिक कलात्मक सकल्पनाओ के सिद्धात मे नवीनता) और **व्यावहारिक रूप से** भी (वे कलाकृतिया जो कला की विभिन्न विधाओ मे नये मानव के-उभरते हुए कम्युनिस्ट समाज के मानव के-आत्मिक जगत् को उजागर करती है) नये गुणात्मक लक्षणो का समावेश करते हुए उसमे अपना योगदान करती है।

सोवियत कलाकर्मियो के रचनात्मक प्रयत्नो को अपना समर्थन प्रदान करते हुए सोवियत जनता सोवियत कला की यथार्थवादी परपराओं से हटने का, या उसे अर्थहीन सौंदर्यवाद और रूपवादी दुरूहता की ओर ले जानेवाली हर प्रवृत्ति का विरोध करती है। सोवियत कला मे अतीत की जनवादी तथा यथार्थवादी परपराए समाजवादी यथार्थवाद के नवीकरण तथा समृद्धीकरण के साथ पूर्णत घुलमिल जाती हैं। परतु इसका उन प्रयत्नो से कोई वास्ता नही है जिनका मकसद उन घटनाओं को पुनर्जीवित करना तथा उन्हे प्रगतिशील कहकर पेश करना है जो यथार्थवाद से विचलित होती हैं तथा कला को रूपवाद, सौंदर्यवाद की ओर ले जाती हैं तथा उसे श्रेष्ठ विचारो से हीन बनाती हैं।

चूकि समाजवादी कला सत्य ही की कला है, इसीलिए वह कम्युनिज्म के उज्ज्वल विचारो से प्रेरित है और अत्यंत आशावादी है। और यह स्वाभाविक ही है कि यह मानव मस्तिष्क को प्रतिक्रियावादी विचारो से विषाक्त बनाने के हर प्रयत्न का और साम्राज्यवाद के युग मे बुर्जुआ सस्कृति के सकट से जन्मे निराशावाद का विरोध करती है। बुर्जुआ सस्कृति के इस सकट ने कला मे प्रतिक्रियावादी विचारो का एक

द्वारा मनुष्यत्व ही पैदा नहीं किया है, बल्कि इसने इन विचारों के अनुरूप विभिन्न कलात्मक रूपों की उत्पत्ति का निर्धारण भी किया। अपने वैचारिक और सौन्दर्यात्मक सार में समाजवादी कला प्रामाणिक कलात्मक मूल्यों के मुकाबले में घिनौने रूपवादी प्रयोगों को खड़ा करने के प्रयत्नों के साथ कोई समझौता नहीं कर सकती। इसी तरह वह आदिम प्रकृतिवाद भी समाजवादी कला की प्रकृति के लिए इतना ही परकीय है जो कलाकृतियों को उनके श्रेष्ठ वैचारिक आशय से वंचित कर देता है।

यह कहे बिना भी स्पष्ट है कि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सोवियत कला की श्रेष्ठ वैचारिक व जन-प्रकृति की रक्षा का संघर्ष, उसमें अंतर्निहित यथार्थवादी परंपराओं के लिए उसका अविचल समर्थन समस्त वास्तविक रचनात्मक कलाओं के सुदृढ़ीकरण की चिंता पर आधारित है और उसका आत्मगत मूल्यांकनों और अयोग्य सलाहों से कुछ भी वास्ता नहीं है। लेनिन ने लिखा था, "साहित्य यांत्रिक समायोजनों या स्तरों के समानीकरण का, अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों के शासन का विषय नहीं है। इस क्षेत्र में व्यक्तिगत पहलकदमी, व्यष्टिक रुझानों, चिंतन व कल्पना, रूप व अंतर्वस्तु के लिए निश्चय ही बृहत्तर क्षेत्र प्रदान किया जाना चाहिए।"*

समाजवादी क्रांतिकारी कला की उन्नत परंपराएं अतीत में नहीं, वर्तमान में ही हैं। वास्तविक नवीकरण जाति के उन्नत कलाकारों की पूर्ववर्ती पीढ़ियों के अनुभव पर आधारित होता है। मसलन, स्तानिस्लाव्स्की और नेमिरोविच-दान्चेंको, मेयरहोल्ड और ताईरोव के अग्रगामी काम ने रूसी रंगमंचीय कला के भावी विकास पर अत्यंत उत्पादक प्रभाव डाला, क्योंकि यह, अन्य चीजों के अलावा, श्चेप्किन, ओस्त्रोव्स्की तथा गोगोल द्वारा संचित अनुभव पर आधारित था। आधुनिक सोवियत रंगमंचीय कला के उस्तादों की कलात्मक उपलब्धियां और सोवियत जनों के जातीय थियेटर के प्रतिभावान अभिनेताओं तथा प्रस्तुतकर्ताओं की बहुमुखी रचनात्मकता ने मिलकर रंगमंचीय कला के और अधिक विकास के लिए एक सर्वाधिक विश्वसनीय पूर्वाधार बना

---

* [illegible], 'पार्टी संगठन और पार्टी साहित्य' १९०५।

दिया है। नवोन्मेषी रगमचीय कला जनगण के क्रातिकारी रचनात्मक प्रयत्नो से मूलत अभिन्न है और यह इसे निर्भीक, रचनात्मक दिलेरी और मौलिकता प्रदान करता है।

ऐसी ही प्रक्रियाए, मिसाल के लिए, सोवियत ओपेरा, सिम्फनी और चैम्बर सगीत मे भी जारी है। सगीत की विरासत के अपने रचनात्मक विकास मे सेर्गेई प्रोकोफियेव, दिमत्री शोस्ताकोविच, अराम खचातुर्यान, तिख्रोन ख्रेन्निकोव, दिमत्री कबालेव्स्की जैसे तथा अन्य असाधारण सगीतकारो ने ऐसी शानदार कृतियो की रचना की है जो अभी से सोवियत क्लासिकी कला बन गयी है। इस बात पर गौर करना सुखद है कि सगीतकारो की एक नयी पीढी, अपने गुरुजनो तथा ज्येष्ठ साथियो के योग्य उत्तराधिकारियो के रूप मे पुरानी पीढी का स्थान ग्रहण करने के लिए निरतर आगे बढ रही है। समसामयिक सोवियत सगीत मे महान प्रतिभाओ के हिताधिकारियो के रूप मे वे सगीत कला मे अपने ही अद्वितीय पथ को खोजते हुए यथार्थवादी परपराओ का रचनात्मक ढग से विकास कर रहे हैं।

मिसाल के लिए, महान प्रतिभाशाली सगीतकार तथा सगीत कला प्रवीण रोदिओन श्चेद्रिन ने कुछ ही समय पहले बडी रचनाओ की एक पूरी शृखला की रचना की है जिसे, उसके सर्वथा योग्य, व्यापक लोकप्रियता मिली है।

नयी पीढी के एक अन्य सोवियत सगीतकार मिखाइल वेनबर्ग की, मुख्य रूप से उनकी छठी और आठवी सिम्फनी की, भी अनुशसा की जा सकती है। उनकी अतर्वस्तु, सबसे पहले, गहन रूप से भावनात्मक है क्योकि वे उनको युद्धकालीन व्यथाओ को अभिव्यक्त करती हैं (युद्धकाल मे उनकी मा, पिता तथा बहिन मौत के शिकार हो गये थे)। उनकी इन दोनो सिम्फनियो का आवर्ती-भाव फासिज्म के प्रति सगीतकार की घृणा और मानवजाति के शानदार भविष्य पर उसकी दृढ आस्था है। वेनबर्ग भी पुराने सगीतात्मक रूपो की ओर मुडते हैं, लेकिन श्चेद्रिन की तरह यह उन्हे रूढ शैली के सामान्य अनुकरण की ओर नही ले जाता है। उनका सगीत सच्चे अर्थो मे समसामयिक नाटकीय और, साथ ही, गहन रूप से लयात्मक है।

सगीत के विशेषज्ञो के अनुसार, आन्द्रेई एश्पाई का सिम्फनी सगीत

उनकी विराट प्रतिभा को उजागर करता है। एनपाई, जो मारि वर्गी के हैं, मारि लोकधुनो का खुलकर उपयोग करते हैं।

हमे यह स्वीकार करना पड़ता है कि कुछ युवा सोवियत संगीतकारो मे कभी-कभी अवागार्दवादी (अग्रगामी), सामूहिक "अतिआधुनिक" सगीत के तौर-तरीकों की तरफ आकर्षित होने की अस्वास्थ्यकर प्रवृत्तिया दिखायी पड़ती हैं। कई मामलों मे तो यह आकर्षण भी नही होता, बल्कि उसके बजाय फैशन के प्रति एक अपरिष्कृत और असभ्य प्रशस्ति होती है। पर जीवन के बगैर और मनुष्य के बगैर कोई कला नही होती।

स्पष्ट है कि सोवियत कला ने उल्लेखनीय कलात्मक अनुभव प्राप्त कर लिया है, जो समाजवादी यथार्थवाद के पथ पर और अधिक विकास के लिए एक भरोसेमन्द आधार का काम करता है। अमर, शास्त्रीय रूप मे आधुनिक लोकप्रिय परपरा के प्रति अविचल अडिग अनुरक्ति, श्रेष्ठ कम्युनिस्ट विचारधारा तथा उत्कट नागरिक भावना सोवियत कलात्मक संस्कृति के प्रमुख जीवन-अभिप्रेत ... का निर्धारण करती है'

लेनिन के सांस्कृतिक कार्यक्रम का व्यावहारिक रूप

> समाजवाद वास्तविक ऐतिहासिक महत्व की एक समस्या को हल करने में सफल हो गया है - हजारों लाखों श्रमजीवी जनों को संस्कृति की उपलब्धियां प्रदान करना, प्रत्येक व्यक्ति के लिए, चाहे उसकी सामाजिक हैसियत व जातीयता कुछ भी क्यों न हो, ज्ञान के समस्त स्रोतों को सुलभ बनाना। देश में समस्त जातियों और उपजातियों की संस्कृति के फलने-फूलने तथा विज्ञान व कला में सर्वसाधारण के रचनात्मक क्रियाकलाप के लिए व्यापक अवसर पैदा कर दिये गये हैं।*

१. रूस में सांस्कृतिक क्रांति के लिए लेनिन की योजना के आधार सिद्धांत

अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद समाजवादी सांस्कृतिक निर्माण के क्षेत्र में लेनिन तथा कम्युनिस्ट पार्टी के क्रियाकलाप के महत्व को पूर्णतः समझने तथा उनका मूल्यांकन करने के लिए इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि, एक तरफ तो, यह पहले से ही विकसित सैद्धांतिक उसूलों पर निश्चय ही आश्रित था और, दूसरी तरफ, यह रूस में समाजवादी क्रांति की विजय की ऐतिहासिक दशाओं के अनुरूप इन सैद्धांतिक उसूलों के और अधिक विकास की ही नहीं, बल्कि इनके कार्यान्वयन के वास्ते एक बड़े कार्यक्रम के निरूपण की मांग भी करता था, क्योंकि जैसा कि लेनिन ने लिखा था, अतीत की संस्कृति को आत्मसात करने की आवश्यकता का सैद्धांतिक ज्ञान एक चीज है और समस्या का व्यावहारिक समाधान दूसरी। उन्होंने कहा, "एक सामान्य सूत्र में, अमूर्त विवेचन में ऐसा करना आसान है, लेकिन पूंजीवाद के, जो तुरत नहीं मरता, बल्कि घोर प्रतिरोध करता है, खिलाफ संघर्ष में, यह काम ऐसा है जो जबरदस्त कोशिशों की मांग करता है।"**

---

* 'सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना की ५०वीं जयंती पर' सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के प्रस्ताव से।

** व्ला० इ० लेनिन, 'आर्थिक परिषदों की पहली अखिल रूसी कांग्रेस में दिया गया भाषण', २६ मई, १९१८।

इस प्रकार लेनिन और कम्युनिस्ट पार्टी को, जिन्होंने महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के बाद सर्वथा अछूते पथ पर कदम रखे थे, अनेकों अति जटिल राजनीतिक, आर्थिक, सैनिक, आदि समस्याओं की शृंखलाओं के बीच, सर्वोपरि रूप से, सांस्कृतिक समस्याएं भी हल करनी थी जो, जैसा कि व्यवहार से ज्ञात हुआ, विशेष महत्व की थी।

सैद्धांतिक पक्ष में लेनिन के सामने सर्वप्रथम प्रश्न सोवियत रूस में सांस्कृतिक क्रांति की तथा उससे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं की अपनी विशिष्टता थी।

प्रश्न की सामान्य रूपरेखा (सांस्कृतिक क्रांति की वस्तुगत आवश्यकता और उसका आम महत्व) स्पष्ट थी मार्क्सवाद के संस्थापकों की रचनाओं के आधार पर लेनिन ने इस शताब्दी के प्रारंभ में बोल्शेविज्म के उद्‌भवकाल में ही यह भविष्यवाणी कर दी थी कि समाजवादी क्रांति का अर्थ होगा "समाज के समस्त सदस्यों के पूर्ण कल्याण तथा मुक्त, सर्वतोमुखी विकास के उद्देश्य से संपूर्ण समाज द्वारा वस्तुओं के उत्पादन से पूंजीवादी पण्य-उत्पादन की प्रतिस्थापना।"* दूसरे शब्दों में मार्क्स और एंगेल्स का अनुसरण करते हुए लेनिन ने यह पूर्वकल्पना की कि रूस इस सामान्य नियम का अपवाद नहीं होगा कि लोगों की रचनात्मक क्षमताओं को अत्यंत सीमित करनेवाली निजी स्वामित्व की बेड़ियों से मानव मुक्ति की प्रक्रिया और आत्मिक संस्कृति के क्षेत्र में मनुष्य के क्रियाकलाप के विकृत रूपों का क्रांतिकारी निष्कासन इसके स्वाधीन रचनात्मक क्रियाकलाप में परिवर्तन की ओर ले जायेगा और सामंजस्यपूर्ण तथा पूरी तरह से विकसित व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया बन जायेगा।

लेनिन के अनुसार इसका अर्थ कम्युनिज्म के आदर्शों की उपलब्धि होगा मनुष्य अपने पहले के निर्धन सांस्कृतिक मूल्यों के समर्थ से [illegible] तथा अपने रचनात्मक क्षमता के पूरे पैमाने के साथ नये सांस्कृतिक मूल्यों की रचना में लग सके व आन्तरिक तथा अविभाज्य [illegible]

---

* [illegible]

प्राप्त कर लेगा यानी स्वतंत्रतापूर्वक भाग ले सकेगा।

इससे एक संदेहरहित निष्कर्ष निकलता है सांस्कृतिक विरासत का स्वांगीकरण कम्युनिस्ट संस्कृति की रचनार्थ एक आवश्यक शर्त है तथा सांस्कृतिक क्रांति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है।

जैसा कि हम जानते हैं, इतिहास में ऐसा हुआ कि समाजवादी क्रांति सबसे पहले केवल एक देश में विजयी हुई और, वह भी, ऐसे देश में जो तकनीकी तथा आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत कम विकसित था।

विकसित पूंजीवादी देशों के मुकाबले क्रांतिपूर्व रूस के तकनीकी-आर्थिक पिछड़ेपन का चित्रण करते हुए लेनिन ने लिखा "रूस अभी भी अविश्वसनीय अभूतपूर्व रूप से पिछड़ा, निर्धन, अर्धसभ्य देश है, जिसकी दशा उत्पादन के आधुनिक साधनों के संदर्भ में ब्रिटेन के मुकाबले चार गुना, जर्मनी के मुकाबले पांच गुना और अमरीका के मुकाबले दस गुना खराब है।" *

जनता के सांस्कृतिक मानकों के संदर्भ में सुविकसित पूंजीवादी देशों के मुकाबले में रूस का पिछड़ापन भी बहुत महत्वपूर्ण था। इस मुद्दे पर लेनिन ने क्रांति से पहले की अवधि में लिखा "यूरोप में रूस के सिवा ऐसा और कोई देश नहीं बचा है जो इतना बर्बर हो और जिसमें जनसाधारण शिक्षा, प्रकाश और ज्ञान के मामले में इस तरह से लुटे हुए हों

"नयी पीढ़ी के चार-बटा-पांच रूस की सामंती राज्य प्रणाली के कारण निरक्षर रहने को विवश है

"सभ्य देशों में, जैसे कि स्वीडेन और डेन्मार्क में, निरक्षर कोई है ही नहीं या केवल एक-दो प्रतिशत लोग हैं, जैसे स्विट्जरलैंड या जर्मनी में।" **

यह नितांत स्पष्ट है कि इन सब परिस्थितियों का तकाजा था कि सांस्कृतिक क्रांति के सिद्धांत और व्यवहार में मूलत नये प्रश्नों की एक शृंखला को सुलझाया जावे।

---

* व्ला० इ० लेनिन रूस में प्रति व्यक्ति उत्पादन कैसे बढ़ाया जा सकता है १९१३।

** व्ला० इ० लेनिन जन शिक्षा मंत्रालय की नीति के प्रश्न पर १९१३।

एक प्रश्न खास तौर से महत्वपूर्ण था: क्या एक ऐसे अपेक्षाकृत पिछड़े हुए देश में, जैसा कि उस काल में रूस था, सांस्कृतिक क्रांति प्रारंभ करना तथा उसे चलाना संभव था?

इस मुद्दे पर (जैसे कि कई अन्य पर) लेनिन और कम्युनिस्ट पार्टी को द्वितीय इंटरनेशनल के नेताओं द्वारा निरूपित कई सैद्धांतिक मताग्रहों का प्रतिकार करना पड़ा। इनमें से एक मताग्रह यह था कि "एक निश्चित सांस्कृतिक स्तर को प्राप्त किये बगैर" सर्वहारा सत्तासीन नहीं हो सकता, कि इसी कारण से रूस समाजवादी क्रांति के लिए "परिपक्व" नहीं था।

लेनिन ने रूस में समाजवादी क्रांति के दौरान ऐसे अभिमत को प्रस्तुत तथा प्रमाणित किया जो मार्क्सवाद में नया था। इसके अनुसार, एक समाजवादी क्रांति को शुरू करने के लिए ऊंचा सांस्कृतिक स्तर अपरिहार्य नहीं है। "यदि समाजवाद के निर्माणार्थ संस्कृति का एक निश्चित स्तर चाहिए (यद्यपि यह कोई नहीं कह सकता है कि 'संस्कृति का वह निश्चित स्तर' क्या है, क्योंकि यह हर पश्चिम यूरोपीय देश में भिन्न है), तो हम पहले संस्कृति के उस निश्चित स्तर की पूर्वशर्तों को क्रांतिकारी ढंग से हासिल करके, और फिर, मज़दूर और किसानों की सत्ता और सोवियत प्रणाली की सहायता से अन्य राष्ट्रों से आगे बढ़ने की शुरूआत क्यों नहीं कर सकते?" *

इस महत्वपूर्ण सैद्धांतिक अभिमत का विकास करते हुए लेनिन ने एक पूरा कार्यक्रम निरूपित किया जिसमें सोवियत जनता के लिए प्रारंभ में, यानी सोवियत सत्ता के प्रारंभिक वर्षों में, तथा दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक निर्माण का एक बड़ा कार्यक्रम शामिल था। इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंश सांस्कृतिक विरासत का स्वामीकरण था।

सोवियत रूस के लिए सांस्कृतिक समस्याओं के विशेष महत्व पर ज़ोर देते हुए लेनिन ने कहा कि "इतिहास में महानतम राजनीतिक क्रांति की समस्या हल करने के बाद हमारे सामने अन्य समस्याएं

* व्ला० लेनिन, 'हमारी क्रांति के बारे में', १९२३।

थी, संस्कृति की समस्याएं।"*

यदि संस्कृति को मात्र अस्तित्व का एक निश्चित रूप तथा आत्मिक मूल्यों के वितरण की प्रणाली माना जाता है तो लेनिन के उपरोक्त विचार की संपूर्ण महत्ता को नहीं समझा जा सकता है।

बेशक "सांस्कृतिक समस्याओं" की चर्चा करते समय लेनिन के दिमाग में निरक्षरता का उन्मूलन भी था तथा सांस्कृतिक-शैक्षिक संस्थानों की संख्या में वृद्धि भी, यानी, वे रूस के पिछड़ेपन को दूर करने को एक प्राथमिक काम मानते थे, क्योंकि यह सफल समाजवादी निर्माण के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा थी। यदि इस बात को याद रखा जाये कि क्रांति की पूर्ववेला में रूस की ७६ प्रतिशत आबादी न लिख सकती थी न पढ़ सकती थी, तो निरक्षरता के विरुद्ध संघर्ष का महत्व स्पष्ट हो जाता है। निरक्षरता को खत्म किये बगैर क्रांतिकारी जनगण के सम्मुख खड़ी समाज के समाजवादी पुनर्निर्माण की समस्या को हल करने के बारे में सोचना भी संभव नहीं था। और सांस्कृतिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए, शब्दश, "क ख ग से" शुरू करना अनिवार्य था क्योंकि "एक निरक्षर व्यक्ति राजनीति के बाहर खड़ा होता है, उसे सबसे पहले क ख ग सीखने होते हैं।"**

परंतु लेनिन ने निरक्षरता के विरुद्ध संघर्ष तथा ज्ञानोदय के कुछ अन्य कार्यों को, चाहे वे कितने ही क्रांतिकारी क्यों न हो, समाजवादी सांस्कृतिक विकास की मुख्य अंतर्वस्तु कभी नहीं माना, क्योंकि अपने मूलसार में वे तब भी बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्य थे, और उन्हें सिद्धांतत, पर्याप्त दृढ़ता से न किये जाने पर भी, बुर्जुआ समाज की दशाओं में पूरा किया जा सकता था।

सांस्कृतिक क्रांति की लेनिन की योजना शिक्षित लोगों के दायरे को बढ़ाने, जनसाधारण द्वारा ज्ञान व कुशलताओं, आदि की एक निश्चित मात्रा के स्वांगीकरण, यानी, मौजूदा मूल्यों के सीधे पुनर्वितरण तक ही सीमित नहीं थी। मार्क्सवाद के अनुसार, पूरे पैमाने पर पुनर्वि-

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'नयी आर्थिक नीति और राजनीतिक शिक्षा विभाग के कार्य', १९२१।
** वही।

तरण खुद ही आत्मिक उत्पादन की, मानव चेतना के उत्पादन की, समूची प्रणाली के गुणात्मक परिवर्तन के आधार पर ही संभव है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक तथा प्रचार साहित्य में अभी भी विद्यमान इस दृष्टिकोण से सहमत होना असंभव है कि सांस्कृतिक क्रांति मुख्यतः शैक्षिक तथा सांस्कृतिक प्रबोधन संस्थानों तथा सामाजिक संस्थाओं के क्रियाकलाप के अंदर संपन्न होनेवाले मानवीय पुनर्गठनों (सुधारों) के समकक्ष है। यह दृष्टिकोण, चाहे इसके अनुयायी चाहें या न चाहें, सांस्कृतिक क्रांति को सिर्फ "पुनर्वितरण" या ज्ञानोदय के कार्यों, सांस्कृतिक स्तर को बढ़ाने, आदि के काम में परिणत कर देता है।

वास्तव में, यह परिवर्तन, यद्यपि सांस्कृतिक क्रांति के दौरान संपन्न होते हैं, तथापि वे उसके सार को कदापि निर्धारित नहीं करते।* उपरोक्त दृष्टिकोण श्रमजीवी जनों के संबंध में सांस्कृतिक उपलब्धियों की नयी स्थिति को सही ढंग से प्रतिबिंबित करता है, लेकिन संस्कृति के प्रति उनके गुणात्मक दृष्टि से नये संबंध को नहीं देख पाता है।

'सभी रूस में निरक्षरता के उन्मूलन पर' जन-कमिसारों की परिषद की २६ दिसंबर, १९१९ की आज्ञप्ति में जोर दिया गया था कि जनतंत्र की सारी जनता का देश के राजनीतिक जीवन में सचेत रूप से भाग लेना संभव बनाने के लिए सारी जनता को पढ़ना-लिखना सिखाना जरूरी है। परन्तु यह स्पष्ट है कि निरक्षरता का उन्मूलन [illegible] वस्तु-निष्ठ सारवस्तु के सार्विक नियम के रूप में सांस्कृतिक क्रांति के मूलसार को नहीं दर्शाता है। इस समस्या का समाधान सांस्कृतिक क्रांति के लक्ष्यों को हासिल करने की एक प्रारंभिक शर्त मात्र है। एक निरक्षर देश में समाजवाद का निर्माण असंभव है, लेकिन प्राथमिक साक्षरता भी इस काम को करने के लिए अपर्याप्त है। लेनिन ने लिखा था "मार्क्सवाद

---

* इस निष्कर्ष से [illegible] लेनिन ने सांस्कृतिक तथा [illegible]

[illegible]

... आवश्यक है और उसके लिए अकेली साक्षरता बहुत दूर तक नही ले जायेगी।*

सोवियत रूस मे सांस्कृतिक क्रांति को सपन्न करने के लिए एक ...ना तैयार करते हुए लेनिन ने निरक्षरता-उन्मूलन तथा सिलसिलेवार ... सांस्कृतिक तथा प्रबोधक पुनर्संगठनो (मसलन, चर्च को राज्य ...लग करना और स्कूल को चर्च से पृथक करना, आदि) को नयी ...ति की रचना के लिए आवश्यक पूर्वाधार के रूप मे देखा, लेकिन ...ने सांस्कृतिक क्रांति को महज उन्ही तक कतई सीमित नही किया। ... चाहिए कि हम किसी भी परिस्थिति मे अपने को उसी लक्ष्य ...महदूद न रखे। हमे हर हालत मे इससे परे जाना तथा यूरोपीय ...गतिशील विज्ञान मे सचमुच मूल्यवान हर चीज को निश्चय ही अपना-...ाहिए।' **

...कृति सांस्कृतिक क्रांति समाज मे आत्मिक उत्पादो के वितरण तथा ...ग की प्रणाली का आमूल पुनर्निर्माण मात्र नही, बल्कि, सबसे ... स्वयं आत्मिक उत्पादन की प्रकृति का, उसके आधारो व सि-...तों और रचनात्मक प्रक्रिया मे जनगण की प्रत्यक्ष सहभागिता ...ाम का क्रांतिकारी रूपांतरण है, इसलिए लेनिन मेहनतकशो की ... को ऊंचा उठाने तथा उनकी राजनीतिक शिक्षा के बीच आंगिक ... को यह कहते हुए सांस्कृतिक और ज्ञानोदय का काम मानते थे ...म राजनीति से अलग-थलग शैक्षिक कार्य नही चला सकते है।"***

...निन ने संस्कृति के सार की रचना को समाजवाद व कम्युनिज्म ...र्माण की अवधि मे, जनगण की रचनात्मक, निर्माणात्मक शक्तियो ...र्शित करनी मे, ऐतिहासिक रचनात्मकता मे प्रत्येक व्यक्ति की ...दृष्टि मे, सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया मे जनगण को वास्त-...कर्ता मे रूपांतरित होने मे देखा था।

---

* व्ला० इ० लेनिन 'सभी अखिल रूसी ... और राजनीतिक शिक्षा विभाग के ... १९२१।

** व्ला० इ० लेनिन 'कम, पर अच्छा' १९२३।

*** व्ला० इ० लेनिन 'गुबेर्निया तथा उयेज़्द राजनीतिक शिक्षा विभागों के शिक्षा कार्यकर्ताओं के अखिल रूसी सम्मेलन मे दिया गया भाषण', १९२०।

दूसरे शब्दों में, लेनिन ने समाजवाद और कम्युनिज्म-निर्माण के सांस्कृतिक कार्यों की संकल्पना सामाजिक संबंधों की प्रणाली में मनुष्य की जगह तथा भूमिका, दोनों के आमूल परिवर्तन के रूप में, जनगण के क्रियाकलाप की प्रकृति में ही आमूल परिवर्तन के, इस क्रियाकलाप के द्रुत, सचेत व वास्तविक रूप से रचनात्मक कार्य में परिवर्तन के रूप में की थी। इस प्रकार क्रांतिकारी संस्कृति का काम राजनीतिक क्रांति को "संपूरित करते हुए" श्रमजीवी जनों को जीवन के समस्त क्षेत्रों में सचेत, रचनात्मक क्रियाकलाप में लगाना होता है। और वह सांस्कृतिक क्रांति जितने अधिक लोगों को अपने दायरे में लाती है, उतनी ही गहनतर और तीव्रतर होती है, समाज का आर्थिक और राजनीतिक विकास जितना सचेत और कारगर होता है, "द्रुत, वास्तविक, सच्ची सामुदायिक अग्रगति, पहले बहुसंख्या को, फिर सार्वजनिक व निजी जीवन के समस्त क्षेत्रों में संपूर्ण आबादी को आवेष्टित करती हुई," * उतनी ही तीव्रतर हो जाती है।

१९१७ की अक्तूबर क्रांति के बाद लेनिन ने समाजवाद के निर्माण में रचनाधीन संस्कृति तथा अतीत के युगों की संस्कृति के बीच मूलभूत अंतर के मामले को विस्तार से निरूपित किया। उन्होंने इस मौलिक अंतर को सबसे पहले नयी संस्कृति की वैचारिक अंतर्वस्तु तथा सामाजिक कार्यों में देखा, जो "अपने अधिनायकत्व की सफल उपलब्धि के लिए सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष की भावना से" ** निश्चय ही ओत-प्रोत होनी चाहिए।

समाजवादी संस्कृति तथा अंतर्विरोधी संरचनाओं की संस्कृति के बीच मूलभूत अंतरों का विश्लेषण नये समाज की रचना-प्रक्रिया में सांस्कृतिक विरासत के स्वांगीकरण के वस्तुगत नियम की समस्या को सोवियत रूस में इस प्रक्रिया की विशेषताओं तथा कम्युनिस्ट पार्टी के लिए उसके कारण उत्पन्न होनेवाले कार्यों के गहन सैद्धांतिक स्पष्टीकरण को रेखांकित करता है।

लेनिन ने सिखाया है कि समाजवादी क्रांति निजी संपत्ति पर आधा-

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'राज्य और क्रांति' १९१७।
** व्ला० इ० लेनिन 'सर्वहारा संस्कृति के बारे में' १९२०।

रित पुराने समाज को अस्वीकार करती है। तदनुसार, सास्कृतिक क्राति मानव क्रियाकलाप के अन्यसंक्रामित रूप पर आधारित पुरानी सस्कृति का निषेध करती है। लेकिन यह द्वद्वात्मक निषेध होता है। अपनी अनेक रचनाओ और भाषणो मे लेनिन ने बल देते हुए कहा है कि गुणात्मक दृष्टि से एक नयी सस्कृति की रचना करते हुए समाजवादी क्राति पुराने समाज की सस्कृति को परे नही फेकती है, बल्कि उसे व्यवहार मे लागू करती है। मार्क्स और एगेल्स के विचारो को विकसित व ठोस रूप प्रदान करते हुए, लेनिन ने यह सिद्ध किया कि समाजवादी सस्कृति शून्य से प्रकट नही होती, कि इसके प्रकट होने की तैयारी मानव-समाज के शताब्दियो पुराने इतिहास के द्वारा तथा उस विश्व सस्कृति के दीर्घ विकास द्वारा हो रही है जिसकी वैध उत्तराधिकारी समाजवादी सस्कृति है।

लेनिन ने बल दिया है कि पूजीवादी समाज मे जो कुछ भी मूल्यवान है उस सबको इस्तेमाल किये बगैर समाजवाद सफलतापूर्वक विकसित नही हो सकता है। उन्होने कहा, "हमे पूजीवाद द्वारा विरासत मे छोडी हुई सपूर्ण सस्कृति को निश्चय ही ग्रहण करना चाहिए और उसके आधार पर समाजवाद का निर्माण करना चाहिए। हमे उसके सपूर्ण विज्ञान, टेक्नोलाजी, जानकारी और कला को ग्रहण करना चाहिए।"*

इस प्रकार, लेनिन ने नयी सस्कृति की रचना का गहन द्वद्वात्मक विश्लेषण पेश किया। इस सस्कृति को, एक तरफ़ तो, पुरानी से आमूल भिन्न होना चाहिए और, दूसरी तरफ, उसकी सारी उपलब्धियो को आत्मसात करना चाहिए।

इस सिलसिले मे गौर किया जाना चाहिए कि सास्कृतिक क्राति तथा सास्कृतिक विरासत के स्वागीकरण की (इसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक के रूप मे) लेनिन की योजना मे बुर्जुआ बुद्धिजीवियो के प्रति रवैये का प्रश्न विशेष, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि असाधारण महत्व का था। गुजरे जमाने की सास्कृतिक उपलब्धियो को अधिकतम सभव सीमा तक जनता की सेवा मे लगाने के लिए प्रयत्नशील लेनिन पुराने बुद्धिजीवी सवर्गों को क्राति के पक्ष मे लाने तथा उनके ज्ञान

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'सोवियत सत्ता की सफलताएं और कठिनाइयां', १९१९।

का इस्तेमाल करने को विशेष महत्व देते थे। उन्होंने कहा, "कम्युनिज्म का निर्माण ज्ञान, टेक्नीक और संस्कृति के बिना नहीं हो सकता है और यह ज्ञान बुर्जुआ विशेषज्ञों के पास है। उनमें से अधिकांश सोवियत सत्ता से सहानुभूति नहीं रखते हैं, फिर भी हम उनके बिना कम्युनिज्म का निर्माण नहीं कर सकते हैं। यह लाज़िमी है कि उनके गिर्द साथीपन का वातावरण बनाया जाये, उन्हें कम्युनिस्ट कार्य की भावना में घेर दिया जाये और मजदूर तथा किसानों की सरकार के पक्ष में लाया जाये।"* इसके साथ ही लेनिन ने पुराने विशेषज्ञों पर अंधविश्वास के खिलाफ आगाह भी किया था।

लेनिन के ये आदेश पार्टी की उस व्यावहारिक नीति का आधार हैं जिसका लक्ष्य बुर्जुआ बुद्धिजीवियों का अधिकाधिक संभव उपयोग करना था। चूंकि पुराने समाज के अनेक बुद्धिजीवियों ने सोवियत सरकार द्वारा किये गये प्रयत्नों का सक्रिय या निष्क्रिय विरोध किया, इसलिए बुर्जुआ बुद्धिजीवियों को नये वर्ग की सेवा में लगाने का संघर्ष सोवियत सत्ता के प्रारंभिक वर्षों में सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष का एक रूप होने की वजह से बहुत तीव्र हो गया था।

सत्तासीन होने के बाद भी अर्थव्यवस्था के प्रबंध में सर्वहारा का अनुभव व ज्ञान अपर्याप्त था। इस ज्ञान को वस्तुतः एक ही झटके में तुरंत हासिल करना असंभव था। अतः, समस्या को निम्न प्रकार से निरूपित किया गया "प्रतिरोध का मात्र दमन ही नहीं, मात्र तटस्थीकरण ही नहीं, बल्कि उन्हें काम पर लगाना भी, सर्वहारा की सेवार्थ बाध्य करवाना भी," ** यानी उन इंजीनियरों व अध्यापकों, वैज्ञानिकों व अर्थशास्त्रियों को और पुराने राजकीय तंत्र के सैन्याधिकारियों तथा अफसरों को भी जो नवोदित सोवियत राज्य के लिए उपयोगी हो सकते थे। "यदि हम पूंजीवादी संस्कृति की बुद्धिजीवियों जैसी विरासत का उपयोग नहीं करते तो हम इसका (यानी राज्य का – सं०) निर्माण

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'गावों में पार्टी कार्य के संबंध में प्रथम अखिल रूसी सम्मेलन में किया गया भाषण', १८ नवंबर, १९१९।

** व्ला० इ० लेनिन, 'सर्वहारा का अधिनायकत्व', १९१९।

नही कर सकते," लेनिन ने सिखाया।*

वैज्ञानिको की देखभाल तथा उन्हे क्राति के पक्ष मे लाने से प्रश्नो को लेनिन ने किस प्रकार हल किया इसे दर्शानेवाले हजार तथ्यो में से एक निम्नांकित है।

जून, १९२० मे, जब गृहयुद्ध अभी भी जारी था और फस पूर्व रूप से खराब हो गयी थी, जिससे अकाल और भी भ गया था, लेनिन ने पेत्रोग्राद की कार्यकारी समिति के अध्यक्ष पत्र लिखा, जिसमे स्थानीय अधिकारियो का ध्यान इस मुद्दे आकृष्ट किया गया था कि शरीरवैज्ञानिक इवान पाव्लोव "ए धारण सास्कृतिक विभूति हैं" और कहा गया था कि "उ राशन दिया जाये और उनके लिए सामान्यत कमोबेश आराम स्थितिया सुनिश्चित बनायी जाये"।** १९२१ मे जन- की परिषद के कार्य प्रबधक बोंच-ब्रुयेविच के साथ एक बा पाव्लोव की रिहायशी हालतो के विषय पर आते हुए उन्हे "सारे वैज्ञानिको को यह सूचित करना जरूरी है कि हम कि उन सबको निश्चित रूप से सब कुछ मिले – व्यक्तिगत मा से लेकर सर्वोत्तम प्रयोगशालाओ, पुस्तकालयो व अध्ययन-क और हम यह निश्चय ही करेगे। हम ऐसा करने की कोशिश हैं कि हमारा विज्ञान पूजीपतियो पर, उनकी इच्छाओ पर से पूर्णत मुक्त ऐसे फले-फूले जैसे दुनिया मे और नही है विज्ञान सचमुच ही मुक्त होगा अभी हमे धैर्य धारण करना हा युद्ध ने हमे घेर रखा है।"

उसी माह लेनिन ने एक विशेष निर्णय "अकादमिशियन पाव्लोव तथा उनके सहयोगियो के अनुसधान कार्य को सुनिश्चि की दशाओ से सबधित"*** पर हस्ताक्षर किया।

इसके साथ ही, सास्कृतिक विरासत के स्वागीकरण

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'मास्को के पार्टी कार्यकर्ताओ की बैठक' १९१८।

** व्ला० इ० लेनिन, ग० य० जिनोव्येव के नाम', २५ जून, १९२

*** वही।

काम में कई दशक लगेंगे और विराट प्रयत्नों की जरूरत होगी।"*

और यह स्पष्ट है। समाज के संपूर्ण जीवन को आमूलतः परिवर्तित करने, निजी संपत्ति के संबंधों से जन्मे और "अत्यंत दृढ़" आदतों में कायांतरित प्रतिक्रियावादी विचारों व नकारात्मक परंपराओं पर काबू पाने की आवश्यकता थी और इसीलिए "जो लोग शताब्दियों से इन आदतों के अनुसार पले-बढ़े हैं उन्हें पुनर्शिक्षित करना आसान मामला नहीं है और इसमें लंबा समय लगेगा।"**

इसी कारण से, कम्युनिस्ट संरचना के उद्‌भव की संपूर्ण अवधि को आवेष्टित करनेवाली, नये मानव को ढालने की एक ही अविभक्त प्रक्रिया होने की वजह से सांस्कृतिक क्रांति, वस्तुतः, "अवस्था दर अवस्था" में संपन्न होती है।

स्वाभाविक है कि इनमें से प्रत्येक अवस्था के दौरान सांस्कृतिक विरासत के स्वांगीकरण में कम्युनिस्ट पार्टी के कार्य एक दूसरे से काफी भिन्न होते हैं।

सांस्कृतिक क्रांति की पहली समाजवादी अवस्था उन समस्याओं के विशाल समुच्चय के समाधान से संबंधित थी जिन्हें कम्युनिस्ट पार्टी तथा सत्तारूढ़ होनेवाले लोगों को सत्तासीन होने के पहले क्षण में ही हल करना था। इन समस्याओं को संक्रमण की संपूर्ण अवधि के दौरान हल किया जा रहा था। इनमें से प्रमुख को पार्टी की आठवीं कांग्रेस (१९१९) में स्वीकृत कार्यक्रम में निरूपित किया गया था।

उस काल में देश के अंदर भड़कनेवाले तीव्र वर्ग-संघर्ष के संदर्भ में पार्टी ने सर्वहारा की सत्ता को सुदृढ़ बनाने के काम को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना। परंतु अन्य सारे कार्यों को इस मुख्य कार्य के अधीनस्थ रखते हुए भी उसने यह माना कि "जन समुदायों की संस्कृति, संगठन तथा पहल के स्तर को लगातार ऊंचा उठाये बगैर मुख्य समस्या को हल करना असंभव है।"

यदि संक्षिप्त परिभाषा दी जाये, तो संक्रमणकाल की अवधि में

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'सोवियतों की नवीं अखिल रूसी कांग्रेस' दिसंबर, १९२१।

** व्ला० इ० लेनिन, 'मजदूरों किसानों सैनिकों और लाल सेना के प्रतिनिधियों की सोवियतों की पांचवीं अखिल रूसी कांग्रेस', ४-१० जुलाई १९१८।

काम मे कई दशक लगेगे और विराट प्रयत्नो की जरूरत होगी।"*

और यह स्पष्ट है। समाज के सपूर्ण जीवन को आमूलत परिवर्तित करने, निजी सपत्ति के सबधो से जन्मे और "अत्यत दृढ" आदतो मे कायातरित प्रतिक्रियावादी विचारो व नकारात्मक परपराओ पर काबू पाने की आवश्यकता थी और इसीलिए "जो लोग शताब्दियो से इन आदतो के अनुसार पले-बढे हैं उन्हे पुनर्शिक्षित करना आसान मामला नही है और इसमे लबा समय लगेगा।"**

इसी कारण से, कम्युनिस्ट सरचना के उद्भव की सपूर्ण अवधि को आवेष्टित करनेवाली, नये मानव को ढालने की एक ही अविभक्त प्रक्रिया होने की वजह से सास्कृतिक क्राति, वस्तुत, "अवस्था दर अवस्था" मे सपन्न होती है।

स्वाभाविक है कि इनमे से प्रत्येक अवस्था के दौरान सास्कृतिक विरासत के स्वांगीकरण मे कम्युनिस्ट पार्टी के कार्य एक दूसरे से काफी भिन्न होते हैं।

सास्कृतिक क्राति की पहली समाजवादी अवस्था उन समस्याओ के विशाल समुच्चय के समाधान से सबधित थी जिन्हे कम्युनिस्ट पार्टी तथा सत्तारूढ होनेवाले लोगो को सत्तासीन होने के पहले क्षण से ही हल करना था। इन समस्याओ को सक्रमण की सपूर्ण अवधि के दौरान हल किया जा रहा था। इनमे से प्रमुख को पार्टी की आठवी काग्रेस (१९१९) मे स्वीकृत कार्यक्रम मे निरूपित किया गया था।

उस काल मे देश के अदर भडकनेवाले तीव्र वर्ग-सघर्ष के सदर्भ मे पार्टी ने सर्वहारा की सत्ता को सुदृढ बनाने के काम को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना। परतु अन्य सारे कार्यो को इस मुख्य कार्य के अधीनस्थ रखते हुए भी उसने यह माना कि "जन समुदायो की सस्कृति, सगठन तथा पहल के स्तर को लगातार ऊचा उठाये बगैर मुख्य समस्या को हल करना असभव है।"

यदि सक्षिप्त परिभाषा दी जाये, तो सक्रमणकाल की अवधि मे

---

* व्ला० इ० लेनिन 'सोवियतो की नवी अखिल रूसी काग्रेस', दिसबर, १९२१।

** व्ला० इ० लेनिन, 'मजदूरो, किसानो, सैनिको और लाल सेना के प्रतिनिधियो की सोवियतो की पाचवी अखिल रूसी काग्रेस', ४-१० जुलाई, १९१८।

सास्कृतिक निर्माण के क्षेत्र की पार्टी की मुख्य समस्याएं निम्नाकित थी: आर्थिक, राजकीय तथा सामाजिक जीवन के प्रबध मे प्रत्यक्ष भाग लेने के लिए आवश्यक ज्ञान की प्राप्ति मे जनसाधारण को समर्थ बनाने के लिए सपूर्ण जन-शिक्षा व्यवस्था का पुनर्गठन करना; विश्व सस्कृति की उपलब्धियो को देश के अदर बुर्जुआ विचारधारा के अभी भी काफ़ी बचे हुए प्रभाव के विरुद्ध सघर्षरत सर्वसाधारण की पहुंच के अदर लाना; एक नयी, जनता की बुद्धिजीवी श्रेणी को प्रशिक्षित करना। इसके अलावा, सोवियत रूस मे इन सारे कार्यों की पूर्ति (जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं) जारशाही से विरासत मे प्राप्त भयावह सास्कृतिक पिछडेपन को दूर करने से संबधित थी।

यहा इस प्रक्रिया के ठोस ऐतिहासिक क्रम की विस्तार से चर्चा करने के लिए न तो जगह है, न आवश्यकता। हम सिर्फ इतनी बात कहेगे कि सक्रमण की अवधि के दौरान पार्टी के क्रियाकलाप समाजवादी समाज के आधारो की रचना के लक्ष्य से किये गये विराट रचनात्मक कार्य के एक अभिन्न पक्ष के रूप मे सामने आये। यह काम अक्तूबर क्राति के प्रारभिक दिनो मे ही शुरू हो गया था।

यहा एक और ब्यौरा पेश किया जाता है जो रूस मे क्राति की विजय के बाद पहली रात को दर्ज, अनातोली लुनाचार्स्की के सस्मरणो मे से लिया गया है "बाद मे, मैं स्मोल्नी के गलियारो में लेनिन से मिला। उनका चेहरा अत्यन्त गभीर था, उन्होंने मुझे इशारे से बुलाया और कहा, 'अच्छा तो, अब मेरे पास आपको आपके नये कर्तव्यों की प्रकृति के बारे मे* निर्देश देने का वक्त नही है। यह जाहिर है कि बहुत कुछ पूर्णत बदलना होगा, नये ढग से सवारकर नये रास्तो मे रचना होगा एक चीज निश्चित है यह जरूरी है कि उच्च शिक्षा सस्थानो तक आवाम की, खास तौर से युवा मजदूरों की, पहुच को आसान बनाया जाये। मैं पुस्तकालयों को बहुत महत्व देता हू। एक पुस्तक का अवगन्तन्य प्रभाव पड़ता है। पाठकों के लिए बड़े वाचनालयों की और तथा पुस्तकों के प्रसारण की भी, जो स्वय पाठकों तक पहुंचे, व्याप-

* जन-कमिसारों की परिषद (सोवियत सरकार) में यह काम उसी समय था लुनाचार्स्की को शिक्षा जन-कमिसारियत का प्रधान नियुक्त किया गया।

पूर्णरूपेण शोषकों के कब्जे में पड़ी कला-निधियों को खोलने तथा सुलभ बनाने की आवश्यकता के बारे में, इस अज्ञानतापूर्ण आत्मप्रवचना के खिलाफ संघर्ष के महत्व के बारे में कहा गया था कि गोया मेहनतकश बुर्जुआ विशेषज्ञों से सीखे बगैर, उन्हें इस्तेमाल किये बगैर, उनके साथ-साथ दीर्घकालिक काम के प्रशिक्षण के बगैर ही पूंजीवाद पर काबू पा सकते हों, इसके अलावा देहातों में कृषि-वैज्ञानिक ज्ञान के विस्तार के बारे में कहा गया था।

कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में निरूपित कार्यों की पूर्ति के लिए किये गये संघर्ष के दौरान निरक्षरता का उन्मूलन कर दिया गया, सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का पुनर्निर्माण कर दिया गया, एक नया समाजवादी बुद्धिजीवी समुदाय बना दिया गया, विज्ञान तेज़ी से विकसित होने लगा और समाजवादी कला का जन्म हुआ तथा वह फलने-फूलने लगी।

सोवियत संघ के जातीय जनतंत्रों में सांस्कृतिक क्रांति के दौरान उपलब्ध सफलताएं विशेष बड़ी थीं। समस्त जातियों ने, जिनमें लगभग ५० के पास क्रांति से पहले अपनी लिपि तक नहीं थी, शताब्दियों पुराने सांस्कृतिक पिछड़ेपन को खत्म करना शुरू कर दिया।

सोवियत संघ में सांस्कृतिक क्रांति की पहली अवस्था का मुख्य परिणाम गुणात्मक दृष्टि से नयी समाजवादी संस्कृति की पुष्टि तथा द्रुत विकास था। इस संस्कृति के विशिष्ट लक्षण हैं, वैज्ञानिक विश्व दृष्टि, जनता से लगाव, समाजवादी मानवतावाद, सामूहिकतावाद, समाजवादी देशभक्ति और अंतर्राष्ट्रवाद तथा कम्युनिस्ट आकांक्षाएं।

सांस्कृतिक क्रांति की पहली अवस्था में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा अपने हाथ में लिए हुए इस विराट कार्य का समाहार करते हुए सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में नोट किया गया कि सांस्कृतिक निर्माण के इन वर्षों के दौरान पार्टी ने श्रमजीवी जनों को भावात्मक गुलामी तथा अज्ञान से मुक्त कराया और मनुष्यजाति द्वारा संचित सांस्कृतिक मूल्यों को उनके लिए सुलभ बनाया।

ज़ोर दिये हुए शब्दों पर गौर कीजिये वे वस्तुतः सांस्कृतिक क्रांति के कार्यों की "पुनर्वितरणात्मक" श्रेणी से संबंधित हैं, संस्कृति पर काबू करने से संबंधित हैं। लेकिन संस्कृति पर काबू पाने और उसके

की एक आतरिक जरूरत, उनकी जीवन पद्धति, उनके ठोस अस्तित्व से पैदा होनेवाली आवश्यकता मे तबदील होने लगी।

मनुष्य की आत्मिक सस्कृति उसके वास्तविक सामाजिक सबधो पर पूरी तरह से निर्भर है। दूसरे शब्दो में, मनुष्य की आत्मिक आवश्यकताए समाज द्वारा अपने एक अश के रूप मे उसमे की गयी मांगो द्वारा, यानी सामाजिक सबधो की प्रणाली मे व्यक्ति की स्थिति द्वारा निर्धारित होती हैं।

इससे यह नतीजा निकलता है कि सास्कृतिक क्राति की सारी समस्याओ का समाधान उसकी अगली, द्वितीय अवस्था मे ही सभव है जो समाजवाद से कम्युनिज्म मे सक्रमण की सपूर्ण अवधि मे होती है।

सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रचना कार्य मे सोत्साह व सक्रिय सहभागिता ही सस्कृति को एक आवश्यकता मे परिणत करती है क्योंकि यह मनुष्य मे अनवरत आत्मिक वृद्धि की माग करती है, उसे रचनात्मक क्रियाकलाप का आदी बनाती है। अत, आत्मिक क्षेत्र मे रचनात्मकता की अभिव्यक्ति श्रम मे तथा सामाजिक कार्यों मे आदमी की सक्रियता की, समाज के सभी पक्षो के प्रगतिशील विकास मे उसकी जीवन दिलचस्पी की पूर्वापेक्षा करती है। अर्थव्यवस्था और सामाजिक सबधो के विकास मे जनता के काम जितने ज्यादा उत्तरदायित्वपूर्ण होते है, उनकी सास्कृतिक आवश्यकताए उतनी ही गहनतर, आत्मिक दुनिया उतनी ही समृद्धतर होती है। और महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के समाधान मे लोगो की जितनी बडी सख्या शामिल होती है उतनी ही पूर्णता, तीव्रता तथा गहराई मे सपूर्ण सस्कृति का विकास होता है।

क्लारा ज़ेटकिन के साथ अपनी एक बातचीत मे इस अन्तर्संबध पर बल देते हुए लेनिन ने कहा कि "आज अक्तूबर ने अभूतपूर्व पैमाने पर सास्कृतिक क्राति का मार्ग प्रशस्त कर दिया है, जिसे आर्थिक क्राति तथा उसके साथ अनवरत अन्तर्क्रिया सहित सम्पन्न किया जा रहा है। सोवियतो द्वारा सत्ता की विजय के बाद से हमारे पास सास्कृतिक क्राति के लिए सर्वोत्तम महत्वपूर्ण पूर्वापेक्षा पहले से विद्यमान है, अर्थात् जनसमुदाय का जागरण, [illegible] संस्कृति के लिए उनकी आकाक्षा।" [illegible] के दौरान लेनिन ने और कहा कि नई सास्कृतिक आवश्यक

ऐतिहासिक रचनात्मकता में शामिल होते जाते हैं, जबकि लोगों का "विशिष्ट वर्ग" तथा जनमाधारण, आत्मिक मूल्यों के सर्जकों और उपभोक्ताओ मे विभाजन धीरे-धीरे खत्म होता जाता है। कम्युनिज्म के अतर्गत इन मूल्यों का वितरण और उपभोग केवल व्यक्ति के रचनात्मक रुख से ही निर्धारित होगा और इस प्रकार आत्मिक उत्पादन की प्रणाली मे तत्वों के बीच के पहलू गायब हो जायेंगे क्योकि उनमे सामाजिक दृष्टि से व्यष्टिक, स्वाधीन प्रकृति नहीं रहेगी।

इस सिलसिले मे सास्कृतिक क्राति की सर्वोपरि विशेषता आत्मिक उत्पादन की प्रणाली मे श्रमजीवियों की बदलती हुई भूमिका व जगह तथा, फलत. उत्पादन की सरचना मे आमूल परिवर्तन है। प्रसगत, इसको सपन्न करने मे एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण सर्वतोमुखी सामाजिक क्रियाकलाप में, समाज के सारे मामलों के प्रबध मे समस्त **श्रमजीवी जनों** की प्रत्यक्ष सहभागिता है।

इनमे से पश्चोक्त का कार्यान्वयन वास्तविक मानव सबधो की समृद्धि की सर्वाधिक सुस्पष्ट अभिव्यक्ति है जिसमे सास्कृतिक विरासत के स्वागीकरण के आधार पर इन सबधो में शामिल होनेवाले हरेक सामाजिक व्यक्तित्व के व्यापक सवर्धन की पूर्वकल्पना की गयी है। इससे यह प्रकट होता है कि सामाजिक सबध अतत मनुष्य के लिए परकीय शक्ति का, उससे बाहर की शक्ति का अर्थ गवा देते हैं और पूरे पैमाने पर उसकी अपनी शक्ति बन जाते हैं। केवल इसी आधार पर सामाजिक तथा व्यक्तिक का ऐसा आतरिक सामजस्य पैदा हो सकता है जो सर्वतोमुखी, सामजस्यपूर्ण रूप से पूर्ण विकसित चरित्रवान व्यक्ति का लाक्षणिक गुण होता है।

जैसा कि पहले जोर दिया गया था, सास्कृतिक क्राति का सार व्यापक रूप से विकसित व्यक्ति के निर्माण मे सकेंद्रित होता है, इसके सारे प्रमुख काम इसी बड़े लक्ष्य की ओर अभिसरित होते हैं। यह बिल्कुल साफ है कि यह लक्ष्य कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के दौरान ही प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि ज्ञात है, समाजवाद के सारे पक्षों– [illegible], राजनीतिक, नैतिक और बौद्धिक–मे पुराने समाज के चिह्न [illegible] है और पुराने श्रम-विभाजन, ममलन, शहर व देहात के बीच, अवशेष बचे होते हैं।

मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच अनिवार्य अतरो का बचा रहना उस सामाजिक असमानता की एक अभिव्यक्ति है जो समाजवाद के अदर बरकरार रहती है। यह सुज्ञात है कि व्यापक रूप से विकसित व्यक्तित्व के निर्माण की एक महत्वपूर्ण शर्त है काम को मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता मे परिवर्तित करना, जो, मानसिक व शारीरिक श्रम के प्रति लोगो की सबद्धता के अनुसार, उनके बीच सामाजिक भेदभाव के उन्मूलन की पूर्वकल्पना करती है।

इस विभाजन का उन्मूलन केवल भौतिक प्राचुर्य की उपलब्धि के फलस्वरूप उत्पादन की विराट वृद्धि के ही द्वारा हो सकता है, केवल तभी हो सकता है जब मनुष्य की जीवनक्रिया के ये दो रूप विभिन्न सामाजिक समूहो के हाथो मे न रहे, यानी जब मनुष्य के क्रियाकलाप के स्वाधीन रूपो की हैसियत से शारीरिक व मानसिक श्रम का अस्तित्व खत्म हो जाये और जब समाज के प्रत्येक सदस्य का श्रम रचनात्मक हो जाये।

मार्क्सवादी यह मानते है कि समाज मे एक स्वतत्र समूह के रूप मे बुद्धिजीवियो का अस्तित्व अस्थायी है। इसकी आवश्यकता समाजवाद को पूजीवाद से विरासत मे मिले पुराने श्रम-विभाजन और सामाजिक असमानता की कुछ मात्रा के बने रहने से पैदा होती है। कम्युनिस्ट संस्कृति इस असमानता के उन्मूलन, मानसिक और शारीरिक श्रम के विलयन व मेल की पूर्वकल्पना करती है, जिससे एक अलग-थलग विशेष सामाजिक समूह के रूप मे बुद्धिजीवियो के अस्तित्व का समापन हो जायेगा। सांस्कृतिक क्राति के दौरान मानसिक और शारीरिक कार्यों के अनुसार सामाजिक विभेदीकरण को दूर किया जा रहा है और जनता के समाजवादी बुद्धिजीवियो का निर्माण इस लक्ष्य की प्राप्ति मे एक कदम मात्र है, जो सांस्कृतिक क्राति की पहली अवस्था के लिए लाक्षणिक है।

पार्टी सारे श्रमिको, सारे किसानो को शब्द के व्यापकतम अर्थ मे बुद्धिजीवी बनाने के लिए, उन्हे अपनी रचनात्मक क्षमताओ को पूर्णत उपयोग मे लाने मे सक्षम बनाने और समाज के आत्मिक जीवन मे उनकी सक्रिय सहभागिता के लिए प्रयत्नशील है। बेशक यह सब खुद ब खुद नही होगा। यहा पार्टी और राज्य के सोद्देश्य कार्यकलाप आवश्यक है।

द्वारा, सार्विक अनिवार्य माध्यमिक शिक्षा के व्यापक विकास द्वारा, पाठ्येतर, पत्राचार और सायंकालीन शिक्षा के विकास द्वारा, विद्यार्थियों के लिए राज्य की ओर से छात्रवृत्ति और अनुदानों तथा अन्य सुविधाओं के प्रावधान द्वारा, स्कूली पाठ्य-पुस्तकों के निःशुल्क वितरण द्वारा, स्कूलों में मातृभाषा में पढ़ाई का अवसर सुलभ कर और स्वशिक्षा की सुविधाओं की व्यवस्था द्वारा सुनिश्चित है।"

बेशक शिक्षा स्वयं संस्कृति नहीं है, पर साथ ही शिक्षा के बिना संस्कृति नहीं हो सकती, यानी, न तो भौतिक उत्पादन के क्षेत्र में श्रम के प्रति सच्चा रचनात्मक रवैया हो सकता है, न ही सामाजिक-राजनीतिक जीवन में पूर्णतः दायित्वपूर्ण क्रियाकलाप हो सकते हैं और न विज्ञान व कला के विकास में लाखों श्रमजीवी जनों की सुयोग्य तथा लगातार बढ़ती हुई प्रत्यक्ष सहभागिता हो सकती है। सामाजिक समूहों के बीच सांस्कृतिक विभेद को पूर्णतः मिटाकर तथा मार्क्सवादी-लेनिनवादी वैज्ञानिक विश्वदृष्टिकोण को समाज के प्रत्येक सदस्य का दृढ़ विश्वास बनाकर ही प्रत्येक व्यक्ति अपने सामाजिक संबंधों को ईमानदारी से बनाता हुआ भविष्य के ऐतिहासिक निर्माण में सक्रिय सहभागी बन सकता है। केवल तभी, आम तौर से, संपूर्ण समाज के और, खास तौर से, प्रत्येक व्यक्ति के क्रियाकलाप नानाविध अंधविश्वासों से पूर्णतः मुक्त होंगे और मनुष्य की कल्पनाशील रचनात्मकता में परिवर्तित हो जायेंगे।

यह आवश्यकता के जगत् से वास्तविक स्वतंत्रता के जगत् में मनुष्य का संक्रमण होगा। यह वह कार्य है जिसे सांस्कृतिक क्रांति की दूसरी अवस्था में पूरा किया जा रहा है।

यही कारण है कि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का पिछला कार्यक्रम कम्युनिज्म की विजय के लिए सभी आवश्यक वैचारिक और सांस्कृतिक दशाओं के निर्माण को सांस्कृतिक क्रांति की अंतिम अवस्था की अंतर्वस्तु मानता है।

आज समाजवादी संस्कृति के सामने मौजूद इन कार्यों को पूरा करके सोवियत जन मनुष्यजाति के द्वारा शताब्दियों में संचित सांस्कृतिक विरासत को प्रत्येक व्यक्ति की संपदा, उसकी आंतरिक दौलत बनाने की दिशा में एक नया कदम उठा रहे हैं। यह ध्येय, जो अपने महत्त्व में सचमुच ऐतिहासिक है, सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की २६वीं कांग्रेस

इस दिशा मे क्या किया जा रहा है?

श्रम तथा रहन-सहन की दशाओ, सोवियत समाज के विभिन्न सामाजिक सस्तरो के कल्याणकार्यों व सस्कृति के स्तरो को समान बनाने, उत्पादन के व्यापक यत्रीकरण व स्वचालितीकरण को पूरा करने, मजदूर वर्ग व सामूहिक फार्मों के किसानो के सास्कृतिक व तकनीकी स्तर को लगातार बढाने, लडके-लड़कियो के लिए *निशुल्क सार्विक माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था मे सक्रमण करके उच्च शिक्षा सस्थानो तथा विद्यार्थी निकायो के जाल को लगातार फैलाने के ध्येय से* पिछली पार्टी काग्रेसो के निर्णयो को लागू करते हुए सोवियत जन सोवियत सघ मे *सास्कृतिक क्राति के अतिम लक्ष्य हासिल करने के लिए* एक और बडी छलाग के वास्ते वस्तुगत पूर्वाधारो की रचना कर रहे हैं।

इस प्रक्रिया को सुस्पष्ट करने के लिए चद आंकडे इस प्रकार हैं। सोवियत सघ मे १६३६ की जनगणना के अनुसार महज २४२ प्रतिशत कार्यशक्ति माध्यमिक (पूर्ण व अपूर्ण) तथा उच्च शिक्षा प्राप्त थी और देहातो मे इससे भी कम—६ ३ प्रतिशत थी; लेकिन आज लगभग ८० प्रतिशत कार्यशील आबादी माध्यमिक (पूर्ण व अपूर्ण) तथा उच्च शिक्षा प्राप्त है। १६६६-१६८० की अवधि ही मे ६०३ लाख लडके-लडकियो ने माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की, जो सोवियत सत्ता के इससे *पहले के सारे वर्षों की तुलना मे २ २ गुना अधिक है।*

यह सभी जानते हैं कि सोवियत सघ के विद्यार्थी अपनी शिक्षा के लिए कुछ खर्च नही करते और, इससे भी बडी बात, विद्यार्थियो की बहुत बडी सख्या को उनके अध्ययनकाल मे राजकीय अनुदान मिलता है। यहा प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सास्कृतिक विरासत के स्वागीकरण मे समाजवाद के फायदे खास तौर से स्पष्ट हैं समाजवाद जनसाधारण के व्यापक अचलो के लिए शिक्षा को सुलभ बनाता है और इस तरह *हर सामाजिक सस्तर के बच्चो के लिए उच्च शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर प्रदान करता है।*

सोवियत सघ मे उसके नये सविधान के अनुच्छेद ४५ को इसी तरह से लागू किया जा रहा है। इस अनुच्छेद मे कहा गया है

"सोवियत सघ के नागरिको को शिक्षा का अधिकार है।

"यह अधिकार सभी प्रकार की शिक्षा की *निशुल्क* व्यवस्था

के निर्णयों में प्रतिबिंबित हुआ है। इस कार्यक्रम में संस्कृति के क्षेत्र के प्रमुख कार्यों को निम्नांकित ढंग से निरूपित किया गया: "जनगण के सामंजस्यपूर्ण बौद्धिक जीवन के लिए और सांस्कृतिक मूल्यों तक सारी आबादी की पहुंच के लिए संभावनाओं को व्यापक बनाना, शिक्षा और संस्कृति के और अधिक उत्थान को सुनिश्चित बनाना।"

३. सोवियत जनगण की संस्कृतियों के फलने-फूलने और पारस्परिक अभिवृद्धि की प्रक्रिया में सांस्कृतिक विरासत का स्वांगीकरण

विश्व संस्कृति के विकास में आम तौर से आज के जमाने में सांस्कृतिक विरासत की समस्याओं का विश्लेषण करते समय इससे संबंधित मामलों के विचार-विमर्श को मात्र ऐतिहासिक "विरासतगत पक्ष" तक ही सीमित रखना गलत होगा। समस्या का अधिक सही तथा अधिक व्यापक विश्लेषण मामले के "समकालीन पक्षों" के अध्ययन की मानो एक ही ऐतिहासिक युग में रहनेवाले अलग-अलग जनगण की संस्कृतियों की अन्तर्क्रिया से संबंधित सांस्कृतिक विरासत के स्वांगीकरण की प्रक्रिया के अध्ययन की भी पूर्वकल्पना करता है। ये जनगण एक-दूसरे से किसी न किसी तरह से परस्पर संपर्क कायम करते हैं, [illegible] विभिन्न सांस्कृतिक प्रभावों का अनुभव करते हैं। और ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में विभिन्न जनगण के बीच और तदनुसार उनकी संस्कृतियों के बीच [illegible]

[illegible]

[illegible]

... सांस्कृतिक सम्पत्ति के विकास में अनित
, जो यह और कुछ नहीं तो, कम से कम, आश्चर्य की बात अवश्य
। इन सबसे जातीय संस्कृति को कोई नैतिक क्षति नहीं होती,
इसके विपरीत ये सब बातें उसके महान् रचनात्मक बल को,
जनगण की सांस्कृतिक परंपराओं में जीवन रस को आत्मसात
और अपने ही मौलिक आधार पर विकसित होने की उसकी
को प्रमाणित करती है।

विचारों के प्रवासन" के तुलनात्मकतावादी सिद्धान्त का दिवा-
न ऐसे 'प्रवासन" के तथ्य कथन में नहीं, बल्कि एक अन्य चीज
न है, अर्थात् जातीय कलात्मक संस्कृतियों के इतिहास को किसी
जनगण की वस्तुगत जीवन-दशाओं से पृथक करना, जनगण के
वस्तु-गुणों को नज़रअन्दाज़ करना, जातीय संस्कृतियों की जटिल
या को अन्तहीन "ऋण-ग्रहण" में परिणत करना।

, यह बात कितनी ही विरोधाभासी क्यों न जान पड़े, तुलनात्मक-
... संस्कृति की वस्तुगत, वास्तविक अन्तर्वस्तु तथा जातीय
... को दृष्टिगत न कर, वस्तुतः, संस्कृतियों की अन्तर्क्रिया के
... पूर्णतः उन्मूलन कर देते हैं। जहां रचना का जातीय आधार,
... जनगण की सार्वजनिक मौलिकता का अस्तित्व नहीं होता,
... पर अन्य जनगण की संस्कृति का कोई प्रभाव नहीं होता,
... असर नहीं होता। इस प्रकार के आदिम दृष्टिकोण
... स्थिर ही सम्पर्कों से संस्कृति का विभाजन ही हो सकता
... संस्कृति जो अन्य को दबाती है और "दुर्बल" संस्कृ-
... "सबल" द्वारा आत्मसात् हो जाती है। साथ ही यह स्पष्ट
... जनगणों की संस्कृतियों की अन्तर्क्रिया उनकी प्रगतिशील
... कारक होती है।

... संस्कृति के इतिहास में ऐसे अनेकानेक उदाहरण हैं जो विविध
... संस्कृतियों की पारस्परिक सम्बद्धता, उनके सांस्कृतिक सम्पर्कों
... ... को ... हैं। विभिन्न जनगणों
... संस्कृतियों के ... उन्हें अधिक समृद्ध बनाती है तथा
... के कारण होते हैं। ... इस या उस देश में, इस या
... ... , कला,

के दौरान हो रही है। इस पुस्तक का अन्तिम भाग इन्ही प्रश्नो से सब
धित है।

प्रत्येक जनगण की कला और क्रमानुसार प्रत्येक सास्कृति
व्यक्तित्व की रचनात्मकता का विकास बाहरी प्रभावों के बजाय आतरि
जातीय तथा विशिष्ट ऐतिहासिक रीतिरिवाजों पर आधारित होत
है। प्रत्येक जनगण की आत्मिक सस्कृति के प्रगतिशील विकास क
वास्तविक कारण, सही आधार उसका अपना जीवन होता है। जह
तक अन्य जनगण की सस्कृतियो के प्रभाव का सबध है, वह कितन
ही अनुकूल क्यो न हो, सस्कृति के विकास मे निर्धारक भूमिका कभ
अदा नही करता है, क्योकि प्रत्येक जनगण अन्य जनगण की उप
लब्धियो को अपने ही ढग से स्वीकारते हैं, यानी "जातीय" ढग से
(बेलीस्की)।

सुज्ञात सोवियत लेखक यूरी बोंदारेव ने इस सबध मे यह सटीक
बात कही है कि "वास्तविक कला हमेशा जातीय होती है, इसके
निर्माण का पात्र हमेशा अपनी ही मडैय्या तले होता है। साथ ही म
दौलत सारी दुनिया की होती है, क्योकि एक जाति के आत्मिक मूल्
भौगोलिक सीमाओ के अदर बद नही रहते।"

इसी कारण से जातीय सस्कृति को अन्य जनगण की सस्कृतियो
के सम्मिश्रण की शक्ल मे पेश करना सिद्धातत गलत होगा। यह प्रधा
रूप से इस विशेष जाति की सस्कृति है, क्योकि यह अपने ही जनगण
के जीवन को प्रतिबिबित करती है, उसकी जडे राष्ट्रीय परपराओ
मे गहरी पैठी हुई होती हैं।

तुलनात्मकतावादी-ऐतिहासिक पद्धति (जान डनलप, थियोडो
बेन्फी, वेसेलोव्स्की-बधु, आदि) की भ्रामकता विभिन्न जनगण क
सास्कृतिक विरासत मे एक-समान विषयो और रूपो की खोज मे कत
निहित नही है। ऐसी समानता का, बेशक, अस्तित्व होता है, इस
बचा नही जा सकता, क्योकि किसी भी जनगण की सस्कृति का विका
जातीय रिक्तता मे नही होता। प्रत्येक जनगण की अपनी ही अटि
ऐतिहासिक नियति होती है, अपने इतिहास के दौरान वे अन्य जनग
के साथ हमेशा आर्थिक और राजनीतिक ही नही, बल्कि सास्कृति
सपर्क भी कायम करते हैं। यदि ये सपर्क जनगण के आत्मिक जीव

के ढेर की आड़ मे रचनात्मक प्रयत्नों को मुश्किल से ही देखा जा सकता है। विनाशकारी युद्ध, अन्य देशो व जनगण पर जबरन कब्जा, उपनिवेशी लूट बहुधा सपूर्ण सभ्यताओ का उच्छेदन कर देती है, मिसाल के लिए, जैसा कि अफ्रीका या लैटिन अमरीका मे हुआ।

अतर्विरोधी सरचनाओ के अतर्गत सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के लिए लाक्षणिक वस्तुगत अतर्विरोध क्राति-पूर्व रूस के अदर जातीय सस्कृतियो के विकास मे अत्यत स्पष्ट थे। इसमे शक नही कि सस्कृतियो की अतर्क्रिया होती थी, लेकिन रूसी जारशाही की उपनिवेशवादी नीति जातीय सस्कृतियो के विकास मे बाधक थी। एक तरफ, इसने अल्पसख्यक जातियो को अन्य जनगण की, मुख्यत रूसियो की सास्कृतिक उपलब्धियो से अवगत कराने की सभावनाओ को अत्यधिक घटा दिया। दूसरी तरफ, इसने रूसी साम्राज्य मे अन्य जनगण की सास्कृतिक उपलब्धियो से रूसी जनगण की सस्कृति की अभिवृद्धि करने मे भारी कठिनाइया पैदा कर दी।

एक उदाहरण प्रस्तुत है जो वस्तुत लाक्षणिक है। पिछली सदी के अत मे प्रसिद्ध रूसी कवि कोन्स्तातीन बाल्मोन्त ने एक समुद्री जहाज मे, जो कैनारी द्वीपो से होता हुआ जा रहा था, इत्तफाक से अपने एक सहयात्री से 'व्याघ्र-चर्मधारी सूरमा' शीर्षक कविता के बारे मे सुना। प्रसिद्ध जार्जियाई कवि शोता रुस्तावेली की इस शानदार रचना के, जिसका अग्रेजी अनुवाद उनके इस सायोगिक सहयात्री की बहिन मार्जोरी स्कॉट-वार्ड्रा ने किया था, प्रूफ पढते समय बाल्मोन्त इस कविता के सगीत से, जिसका उन्होने पहले नाम भी नही सुना था, इस कदर अभिभूत हो गये कि रूस वापस आकर उन्होने उसका रूसी मे अनुवाद कर दिया (और यह उसका पहला रूसी अनुवाद था)। क्राति-पूर्व रूस के साहित्य जगत् मे यह बात विरोधाभासी भी थी और लाक्षणिक भी कि लोग एक दूसरे की सास्कृतिक उपलब्धियो के बारे मे बहुधा अप्रत्यक्ष तरीके से ही जानते थे।

समाजवाद के युग मे जातीय सस्कृतियो की अतर्क्रिया मे नाटकीय रूपातरण हो गया है।

महान अक्तूबर समाजवादी क्राति ने, जिससे पहले रूस के जनगण सास्कृतिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं मे खडे थे, राजनीति,

12*

दर्शन, आदि की उपलब्धियों को अन्य जातियो द्वारा सफलता से इस्तेमाल व विकसित किया जा सकता है।

सस्कृतियो की यह पारस्परिक अभिवृद्धि और अन्य आत्मिक प्रक्रियाए अतर्विरोधी वर्ग सरचनाओ मे निजी सपत्ति के सामाजिक सबधो पर आधारित सामाजिक सत्व की अतर्विरोधी प्रकृति को प्रतिबिबित करती हुई अनन्य रूप धारण करती हैं।

कुछ देशो के शासक वर्ग अन्य जातियो को अपने शोषण क्षेत्र मे मिलाकर उसका विस्तार करते हैं और हथियारो के बल पर उन जातियो के ऊपर अपने लिए लाभदायी आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था ही नहीं थोपते, बल्कि अपनी भाषा, धर्म और आत्मिक जीवन पद्धति भी थोप देते हैं और इसके साथ ही विजित जनगण के सास्कृतिक विकास को मद (और कई मामलो मे नष्ट) कर देते हैं। अपनी बारी मे, यह अधराष्ट्रवादी विस्तारवादी नीति जातीय प्रवृत्तियो के रूप मे स्वभावत प्रतिक्रिया को जन्म देती है जो आत्मिक क्षेत्र मे अक्सर विजित जनो मे विजेताओ की सस्कृति से, चाहे वह उनसे श्रेष्ठ ही क्यो न हो, अपने को पूर्णत विलग कर लेने की इच्छा पैदा कर देती है। इससे सस्कृतियो की पारस्परिक अभिवृद्धि की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है और उनका प्रगतिशील विकास मद पड जाता है।

अतर्विरोधी सरचनाओ की सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया का यह विशिष्ट अतर्विरोध पूजीवाद के युग मे विशेष स्पष्ट है।

जातियो के बीच सक्रिय सपर्कों का विकास, जातीय विभाजनो का टूटना तथा पूजी की और सामान्यत आर्थिक जीवन एव नीति की, विज्ञान, कला, आदि की अन्तर्राष्ट्रीय एकता – पूजीवादी समाज मे अतर्निहित सभी प्रवृत्तियो मे से केवल एक है। दूसरी वस्तुगत प्रवृत्ति पृथकतावादी है। पहली की ही भाति यह भी स्वय पूजीवाद की प्रकृति से जुडी है, जो जातियो को शस्त्रबल से एक करता है, पूजीवादी सबधो के क्षेत्र मे लाये जानेवाले लोगो को लूटता तथा उनका दम घोटता है।

पूजीवाद के युग मे जब अतर्राष्ट्रीय सपर्क अपरिमित रूप मे विस्तृत हो जाते हैं, तब यह प्रक्रिया कई जनगण के लिए महाविपत्ति का सकेत होती है। अतर्राष्ट्रीय सपर्कों को ऐसी बर्बर पद्धतियो से फैलाया जाता है कि अक्सर, जैसा कि मार्क्स ने ध्यान दिलाया है, स्वभावतोगो

ाब सभी जनतत्रो मे उनके अपने बुद्धिजीवी हैं। बहुजातीय सो-
जनगण के अभूतपूर्व ऊचे बौद्धिक मानको को प्रमाणित करनेवाले
सचमुच ही आश्चर्यजनक हैं। सोवियत सघ के जनगण की बीसियो
ो मे अखबार तथा पत्रिकाए प्रकाशित की जाती हैं और रेडियो
लीविजन कार्यक्रम भी अनेक भाषाओ मे प्रसारित किये जाते है।
पनी-अपनी मातृभाषाओ मे पुस्तको, अखबारो तथा पत्रिकाओ
ादान सोवियत जनगण के जीवन का अग बन गया है। हर साल
पुस्तक-पुस्तिकाओ की कुल दो अरब प्रतियो का छपना एक ऐसा
जो सोवियत सघ मे पुस्तक प्रकाशन के अति विराट परास का
है। इसलिए यह अकारण नही था कि १९७६ मे बहुभाषी देशो
भिन्न भाषाओ मे पुस्तको के प्रकाशन पर यूनेस्को द्वारा आयोजित
ीय गोष्ठी सोवियत सघ मे की गयी थी। इसके सहभागियो
ायत जनगण की जातीय अनन्यता के "अतिक्रमण" के बारे मे
प्रचारको की कपोलकथाओ की झूठ को खुद अपनी आखो से

ाम, किरगीज, ताजिक, तुर्कमेन, दग्गीर, याकूत तथा कई
नगण ने अपने जातीय थियेटर पहली बार सोवियत सरकार
मे खोले।

ती पाठको को इन तथ्यो के महत्व को भली भाति समझने
करने के लिए हम इतना और कहेगे कि क्राति से पहले कई
की जातीय सस्कृतियो का विकास विभिन्न धार्मिक निषेधो तथा
से भी अवरुद्ध था।

नन, इस्लामी मत को माननेवाले लोगो (मुख्यत मध्य एशियाई
जैसे उज्बेक, कज़ाख, किरगीज, आदि) का न कोई थियेटर
ऑपेरा, न कोई नृत्य रचना। और उनकी कला सजावटी व्याव-
पो तक ही सीमित थी।

वयत सत्ताकाल मे उन्होने रगमचीय कला का विकास किया
जातीय नाटक, ऑपेरा, बैले और सिने-कला की रचना की।
सोवियत जनगण के जो नाटककार, कलाकार, सगीतकार

र्वतंत्र तथा संस्कृति में विद्यमान असमानता को मिटाने के पर्याप्त
वसर प्रदान कर दिये। जातीय जनतंत्रों को सोवियत सत्ताकाल में
र्मित, नये आर्थिक आधार पर तेज़ी से विकसित होने में समर्थ
ना दिया गया। ज़ारशाही के अंतर्गत जिन जनगण को संस्कृति से
ब्दशः महरूम कर दिया गया था उन्हें मनुष्यजाति की सांस्कृतिक विरा-
त से अवगत होने और समाजवादी अंतर्वस्तु तथा जातीय रूप में अपनी-
पनी संस्कृतियों का शीघ्र विकास करने के लिए सभी आवश्यक सुवि-
एं दे दी गयीं। महासत्तावादी अधराष्ट्रवाद तथा स्थानीय राष्ट्रवाद
विरुद्ध अपने संघर्ष में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने पहले के
छड़े हुए लोगों की संस्कृतियों के विकास में, समाजवादी संस्कृति के
र्माण में और उसे सोवियत संघ के समस्त जनगण की संपत्ति बनाने
विराट सफलताएं हासिल की है।

रूसी जनगण की बिरादराना सहायता का लाभ उठाते हुए सोवियत
नगण ने अपने सदियों पुराने पिछड़ेपन को समाप्त कर दिया है।
नमें से अनेक, जो पहले संस्कृति के तत्वों तक से वंचित थे, अब अपने
क्षिक मानकों में पश्चिम यूरोपीय देशों से आगे हैं।

मसलन, क्रांति से पहले के किरगीज़िया में कुछ ही लोग माध्य-
क व उच्च शिक्षा प्राप्त थे। आज किरगीज़ जनतंत्र में निरक्षरता का
मोनिशान नहीं है और उनकी आबादी के प्रति हज़ार पीछे उतने ही
द्यार्थी हैं जितने फ्रांस में और पश्चिम जर्मनी की तुलना में यह अनुपात
गुना है। जिन जनगण के पास पहले अपनी लिखित भाषा भी नहीं
, वे आज अपने साहित्य और अपनी कला की रचना कर रहे हैं।
निन पुरस्कार विजेता चिंगीज़ आइत्मातोव, राजकीय पुरस्कार विजेता
ोल्वाई सादीबेकोव, एक लोककवि आली तोकोम्बायेव तथा किरगीज़
हित्य की अन्य विभूतियों की रचनाएं सारे सोवियत संघ में लोकप्रिय हैं।

सोवियत संघ के जिस इलाके में आज संघ जनतंत्रों में से आधे
अधिक बसे हुए हैं (अज़रबैजान, कज़ाखस्तान, ताजिकिस्तान,
र्कमेनिस्तान, उज़्बेकिस्तान, किरगीज़िया, आदि) वहां क्रांति से
हले एक भी उच्च शिक्षा संस्थान नहीं था। अब वहां ऐसे २०० से
ी अधिक संस्थान काम कर रहे हैं, जिनमें लगभग १० लाख विद्यार्थी
ढ़ते हैं। मिसाल के लिए, आज उज़्बेकिस्तान में ४३ उच्च शिक्षा

ममलन, हार्वर्ड विश्वविद्यालय (बोस्टन, अमरीका) मे प्रोफेसर, सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्याविद, बुखारा, ईरान, आदि के इतिहास की पुस्तको के लेखक रिचर्ड फाये की साक्षी प्रस्तुत है। सोवियत सघ के आरपार एक लबी यात्रा करने के बाद उन्होने लिखा: "आज बाकू, ताशकद और समरकद महज विचित्र नगर नही रह गये हैं। सोवियत सघ की अनेकानेक जातिया अपनी समृद्ध जातीय परपराओ तथा जातीय भाषाओ को सुरक्षित रखते हुए सोवियत राज्य के ढाचे मे पूरी तरह से सामजस्यपूर्ण एकीकरण पर पहुच गयी हैं।"

सोवियत बहुजातीय सस्कृति की एक उल्लेखनीय उपलब्धि सोवियत जनगण के महाकाव्यो का स्वाङ्गीकरण है। उनकी महानतम सपदाओ मे प्रमुख हैं अनेक पीढियो के अनाम लोकगायको द्वारा शताब्दियो की अवधि मे सर्जित कवित्वमय सस्कृति के अमर स्मारक। रूसी बिलीना, उक्राइनी गाथागीत, काकेशिया के लोगों का महाकाव्य 'नार्ती', तुर्कमेनी 'केर-ओग्ली', ताजिक 'गूर-गूली', कज़ाख 'कोब्लादी बातीर', याकूत पुराणकथाए ओलोखो, आर्मीनियाई 'डेविड सासून्स्की', मोल्दावियाई वीरगीत, किरगीज़ 'मानस', लाटवियाई 'लाचप्लेसिस', कराकल्पाकीय 'चौर्क कीज़', बश्कीरियाई 'कुज़ी कुर्पिस' और 'मायन सीलू' अल्ताई 'माअदाई कारा' तथा मौखिक कविता के अन्य महाकाव्य सोवियत जनता की आत्मिक सस्कृति की महान सपदा की रचना करते हैं जो शताब्दियो की बुद्धिमत्ता, विगतकाल की जन-स्मृति तथा बेहतर भविष्य के शाश्वत सपनो का सार-सक्षेपण है।

यह तथा रूसी जनगण की अनेकानेक अन्य रचनाए अकसर विविध रूपो मे अस्तित्वमान थी और शताब्दियो तक मौखिक रूप से (स्वभावत इन जनगण की अपनी भाषाओ मे) पीढी दर पीढी हस्तातरित होती रही। इस मौखिक महाकाव्य का काफी बडा भाग पूर्णत लुप्त हो गया, क्योकि, नियमत इन लोगो की अपनी लिखित भाषा भी नही थी और (जो सबसे महत्वपूर्ण है) यह अन्य जनगण को अनुपलब्ध था।

अक्तूबर क्राति की विजय के बाद इन महाकाव्यो को खोजने, दर्ज करने तथा प्रकाशित करने के लिए विराट काम किया गया और अनुवादो के द्वारा वे समस्त सोवियत जनगण को उपलब्ध कराये गये। सोवियत सघ मे रहनेवाले अनेक जनगण द्वारा शताब्दियो मे सचित

तथा प्रस्तुतकर्ता मास्को, लेनिनग्राद, कीएव, येरेवान तथा अन्य नगरों से इन जनतंत्रों में आये, उन्होंने इस मामले में विशेष सहायता की।

सर्वोत्तम कला मंडलियों, खास तौर से, बोल्शोई, लेनिनग्राद और कीएव ओपेरा तथा बैले थियेटरों, मास्को, लेनिनग्राद तथा कीएव संगीतविद्यालयों की सर्वोत्तम परंपराओं को आत्मसात करके, रंगमंचीय कला के अखिल संघीय संस्थान, सिने-कला के अखिल संघीय संस्थान मास्को कला थियेटर स्टुडियो, आदि में अध्ययन करके मध्य एशिया के (और बेशक तातार, बश्कीर, याकूत तथा कोमी स्वायत्त जनतंत्रों, आदि के भी) कलाकर्मी घर की (मुख्यत: रूसी) तथा विश्व संस्कृति की संपदा से पूर्णत: परिचित हो गये और अपनी अद्वितीय व मौलिक पुरानी परंपराओं (कवित्वमय लोक साहित्य व लोकगीत, आदि) का उपयोग करके अपनी समृद्ध जातीय संस्कृति का विकास करने में समर्थ हो गये।

उपरोक्त बातें रूपकात्मक ललित कला से भी संबंधित हैं जो पहले अपने व्यावसायिक रूपों में देश के अनेक लोगों के लिए अज्ञात थी क्योंकि इस्लाम में मानवाकृतियों तथा चेहरों का चित्रण करना मना था। जब जुलाई १९८१ में मास्को के केंद्रीय प्रदर्शनी हॉल में पहली जातीय प्रदर्शनी 'कज़ाख़स्तान की रूपकात्मक ललित कलाएं' का उद्घाटन हुआ तो सर्वाधिक परिष्कृत कला-पारखी भी तेल्जानोव की मोहक कृति 'प्रभात', तेनायेव के अपनी मातृभूमि में शांति का यशोगान करनेवाले ओजस्वी वीरगाथापूर्ण चित्रों तथा माम्बायेव की अद्भुत रंगमय कलाकृतियों को देखकर अभिभूत हो गए। प्रदर्शनी का जो प्रभाव पड़ा उसके बारे में सबकी एक राय थी, सोवियत सरकार के वर्षों में कज़ाख़ सोवियत रूपकात्मक ललित कला के जातीय स्कूल की स्थापना हो चुकी है। जो स्वयं इस प्रक्रिया का इतिहास जानते हैं, उन्होंने यह भी कहा कि अभी चित्रकला तथा शिल्प कला की समृद्ध परंपराओं का अध्ययन करने के बाद कज़ाख़स्तान की धरती पर जातीय कला का कुछ [illegible] है।

[illegible]

ममलन, हार्वर्ड विश्वविद्यालय (बोस्टन, अमरीका) मे प्रोफेसर, सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्याविद, बुखारा, ईरान, आदि के इतिहास की पुस्तको के लेखक रिचर्ड फ्राये की साक्षी प्रस्तुत है। सोवियत सघ के आरपार एक लबी यात्रा करने के बाद उन्होंने लिखा "आज बाकू, ताशकद और समरकद महज विचित्र नगर नही रह गये हैं। सोवियत सघ की अनेकानेक जातिया अपनी समृद्ध जातीय परपराओ तथा जातीय भाषाओ को सुरक्षित रखते हुए सोवियत राज्य के ढाचे मे पूरी तरह से सामजस्यपूर्ण एकीकरण पर पहुच गयी हैं।"

सोवियत बहुजातीय सस्कृति की एक उल्लेखनीय उपलब्धि सोवियत जनगण के महाकाव्यो का स्वागीकरण है। उनकी महानतम सपदाओ मे प्रमुख है अनेक पीढियो के अनाम लोकगायको द्वारा शताब्दियो की अवधि मे सर्जित कवित्वमय सस्कृति के अमर स्मारक। रूसी बिलीना, उक्राइनी गाथागीत, काकेशिया के लोगो का महाकाव्य 'नार्ती', तुर्कमेनी 'केर-ओग्ली', ताजिक 'कुर-गुली', कज़ाख 'कोब्लादी बातीर', याकूत पुराणकथाए ओलोखो, आर्मीनियाई 'डेविड सासूस्की', मोल्दावियाई वीरगीत, किरगीज़ 'मानस', लाटवियाई 'लाचप्लेसिस', कराकल्पाकीय 'कोर्क कीज़', बश्कीरियाई 'कुज़ी कुर्पिस' और 'मायन सीलू', अल्ताई 'माअदाई कारा' तथा मौखिक कविता के अन्य महाकाव्य सोवियत जनता की आत्मिक सस्कृति की महान सपदा की रचना करते हैं जो शताब्दियो की बुद्धिमत्ता, विगतकाल की जन-स्मृति तथा बेहतर भविष्य के शाश्वत सपनो का सार-सक्षेपण है।

यह तथा रूसी जनगण की अनेकानेक अन्य रचनाए अक्सर विविध रूपो मे अस्तित्वमान थी और शताब्दियो तक मौखिक रूप से (स्वभावत इन जनगण की अपनी भाषाओ मे) पीढी दर पीढी हस्तातरित होती रही। इस मौखिक महाकाव्य का काफी बडा भाग पूर्णत लुप्त हो गया, क्योकि, नियमत, इन लोगो की अपनी लिखित भाषा भी नही थी और (जो सबसे महत्वपूर्ण है) यह अन्य जनगण को अनुपलब्ध था।

अक्तूबर क्राति की विजय के बाद इन महाकाव्यो को खोजते, दर्ज करने तथा प्रकाशित करने के लिए विराट काम किया गया और अनुवादो के द्वारा वे समस्त सोवियत जनगण को उपलब्ध कराये गये।

सोवियत सघ मे रहनेवाले अनेक जनगण द्वारा शताब्दियो मे सचित

तथा प्रस्तुतकर्ता मास्को, लेनिनग्राद, कीएव, येरेवान तथा अन्य नगरो से इन जनतत्रो मे आये, उन्होने इस मामले में विशेष सहायता की।

सर्वोत्तम कला मडलियों, खास तौर से, बोल्शोई, लेनिनग्राद और कीएव ओपेरा तथा बैले थियेटरो, मास्को, लेनिनग्राद तथा खार्कोव सगीतविद्यालयो की सर्वोत्तम परपराओ को आत्मसात करके, रगमचीय कला के अखिल सघीय सस्थान, सिने-कला के अखिल सघीय सस्थान, मास्को कला थियेटर स्टुडियो, आदि मे अध्ययन करके मध्य एशिया के (और बेशक तातार, बश्कीर, याकूत तथा कोमी स्वायत्त जनतत्रो, आदि के भी) कलाकर्मी घर की (मुख्यत. रूसी) तथा विश्व सस्कृति की सपदा से पूर्णत परिचित हो गये और अपनी अद्वितीय व सदियो पुरानी परपराओ (कवित्वमय लोक साहित्य व लोकगीत, आदि) का उपयोग करके अपनी समृद्ध जातीय सस्कृति का विकास करने मे समर्थ हो गये।

उपरोक्त बाते रूपकात्मक ललित कला से भी सबधित हैं, जो पहले अपने व्यावसायिक रूपो मे देश के अनेक लोगो के लिए अज्ञात थी क्योकि इस्लाम मे मानवाकृतियो तथा चेहरो का चित्रण करना मना था। जब जुलाई, १६८१ मे मास्को के केद्रीय प्रदर्शनी हॉल मे पहली जातीय प्रदर्शनी 'कज़ाखस्तान की रूपकात्मक ललित कलाए' का उद्घाटन हुआ, तो सर्वाधिक परिष्कृत कला-पारखी भी तेल्जानोव की मोहक कृति 'जमाल', ऐतायेव के अपनी मातृभूमि में शाति का यशोगान करनेवाले ओजस्वी वीरगाथापूर्ण चित्रो तथा माम्बायेव की अद्भुत गीतमय कलाकृतियो को देखकर अभिभूत हो गये। प्रदर्शनी का जो प्रभाव पड़ा, उसके बारे में सबकी एक राय थी सोवियत सरकार के वर्षों मे कज़ाख सोवियत रूपकात्मक ललित कला के जातीय स्कूल की स्थापना हो गयी है। जो लोग इस प्रक्रिया का इतिहास जानते हैं, उन्होने यह भी कहा कि रूसी चित्रकला तथा विश्व कला की समृद्ध परपराओ को आत्मसात करने के बाद कज़ाखस्तान की धरती पर जातीय कला का वृक्ष फल देने लगा है।

सोवियत समाजवादी जातियो के सास्कृतिक विकास की आश्चर्य-जनक सफलताओं को सभी विदेशी प्रेक्षको ने, बशर्ते उनमे रचमात्र भी वस्तुपरकता हो, सराहा है।

पलन, हार्वर्ड विश्वविद्यालय (बोस्टन, अमरीका) मे प्रोफेसर,
' प्राच्यविद्याविद, बुखारा, ईरान, आदि के इतिहास की पुस्तको
क रिचर्ड फ्राये की साक्षी प्रस्तुत है। सोवियत सघ के आरपार
ी यात्रा करने के बाद उन्होने लिखा "आज बाकू, ताशकद
मरकद महज़ विचित्र नगर नही रह गये हैं। सोवियत सघ की
क जातिया अपनी समृद्ध जातीय परपराओ तथा जातीय भाषाओ
क्षित रखते हुए सोवियत राज्य के ढाचे मे पूरी तरह से सामज-
एकीकरण पर पहुच गयी है।"

वेयत बहुजातीय सस्कृति की एक उल्लेखनीय उपलब्धि सोवियत
के महाकाव्यो का स्वागीकरण है। उनकी महानतम सपदाओ
हैं अनेक पीढियो के अनाम लोकगायको द्वारा शताब्दियो की
' मर्जित कवित्वमय सस्कृति के अमर स्मारक। रूसी बिलीना,
गायागीत, काकेशिया के लोगो का महाकाव्य 'नार्ती', तुर्कमे-
-ओग्ली', ताजिक 'गुर-गुली', कज़ाख 'कोब्लादी बातीर',
राणकथाए ओलोखो, आर्मीनियाई 'डेविड सासूस्की', मोल्दा-
वीरगीत, किरगीज़ 'मानस', लाटवियाई 'लाचप्लेसिस',
वीय 'कीर्क कीड', कबर्दीरियाई 'कुज़ी कुर्सि' और 'मायन
अल्ताई 'माअदाई कारा' तथा मौखिक कविता के अन्य महा-
वियत जनता की आत्मिक सस्कृति की महान सपदा की रचना
जो शताब्दियो की बुद्धिमत्ता, विगतकाल की जन-स्मृति तथा
विष्य के शाश्वत सपनो का सार-सश्लेषण है।

तथा रूसी जनगण की अनेकानेक अन्य रचनाए अक्सर विविध
म्मिलमात थी और शताब्दियो तक मौखिक रूप से (स्वभावत
न की अपनी भाषाओ मे) पीढी दर पीढी हस्तातरित होती
मौखिक महाकाव्य का काफी बड़ा भाग पूर्णत लुप्त हो गया,
नियमत, इन लोगो की अपनी लिखित भाषा भी नही थी
(सबसे महत्वपूर्ण है) यह अन्य जनगण को अनुपलब्ध था।
र क्रांति की विजय के बाद इन महाकाव्यो को खोजने,
तथा प्रकाशित करने के लिए विराट काम किया गया और
ि द्वारा वे समस्त सोवियत जनगण को उपलब्ध कराये गये।
इन सघ मे रहनेवाले अनेक जनगण द्वारा शताब्दियो मे सचित

तथा प्रस्तुतकर्ता मास्को, लेनिनग्राद, कीएव, येरेवान तथा अन्य नगरो से इन जनतत्रो मे आये, उन्होंने इस मामले मे विशेष सहायता की।

सर्वोत्तम कला मडलियों, खास तौर से, बोल्शोई, लेनिनग्राद और कीएव ऑपेरा तथा बैले थियेटरो, मास्को, लेनिनग्राद तथा खार्कोव संगीतविद्यालयों की सर्वोत्तम परपराओं को आत्मसात करके, रगमचीय कला के अखिल सघीय सस्थान, सिने-कला के अखिल सघीय सस्थान, मास्को कला थियेटर स्टुडियो, आदि मे अध्ययन करके मध्य एशिया के (और बेशक तातार, बश्कीर, याकूत तथा कोमी स्वायत्त जनतत्रो, आदि के भी) कलाकर्मी घर की (मुख्यत रूसी) तथा विश्व सस्कृति की सपदा से पूर्णत परिचित हो गये और अपनी अद्वितीय व सदियो पुरानी परपराओ (कवित्वमय लोक साहित्य व लोकगीत, आदि) का उपयोग करके अपनी समृद्ध जातीय सस्कृति का विकास करने मे समर्थ हो गये।

उपरोक्त बाते रूपकात्मक ललित कला से भी सबधित हैं, जो पहले अपने व्यावसायिक रूपो मे देश के अनेक लोगो के लिए अज्ञात थी क्योकि इस्लाम मे मानवाकृतियो तथा चेहरो का चित्रण करना मना था। जब जुलाई, १९८१ मे मास्को के केंद्रीय प्रदर्शनी हॉल मे पहली जातीय प्रदर्शनी 'कजाखस्तान की रूपकात्मक ललित कलाए' का उद्घाटन हुआ, तो सर्वाधिक परिष्कृत कला-पारखी भी तेल्जानोव की मोहक कृति 'जमाल', ऐतायेव के अपनी मातृभूमि मे शांति का यशोगान करनेवाले ओजस्वी वीरगाथापूर्ण चित्रो तथा माम्बायेव की अद्भुत गीतमय कलाकृतियो को देखकर अभिभूत हो गये। प्रदर्शनी का जो प्रभाव पडा, उसके बारे मे सबकी एक राय थी सोवियत सरकार के वर्षों मे कजाख सोवियत रूपकात्मक ललित कला के जातीय स्कूल की स्थापना हो गयी है। जो लोग इस प्रक्रिया का इतिहास जानते हैं, उन्होंने यह भी कहा कि रूसी चित्रकला तथा विश्व कला की समृद्ध परपराओ को आत्मसात करने के बाद कजाखस्तान की धरती पर जातीय कला का वृक्ष फल देने लगा है।

सोवियत समाजवादी जातियो के सास्कृतिक विकास की आश्चर्यजनक सफलताओ को सभी विदेशी प्रेक्षको ने, बशर्ते उनमे रचमात्र भी वस्तुपरकता हो, सराहा है।

मसलन, हार्वर्ड विश्वविद्यालय (बोस्टन, अमरीका) में प्रोफेसर, सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्याविद्, बुखारा, ईरान, आदि के इतिहास की पुस्तकों के लेखक रिचर्ड फ्राये की साक्षी प्रस्तुत है। सोवियत संघ के आरपार एक लंबी यात्रा करने के बाद उन्होंने लिखा: "आज बाकू, ताशकंद और समरकंद महज विचित्र नगर नहीं रह गये हैं। सोवियत संघ की अनेकानेक जातियां अपनी समृद्ध जातीय परंपराओं तथा जातीय भाषाओं को सुरक्षित रखते हुए सोवियत राज्य के ढांचे में पूरी तरह से सामजस्यपूर्ण एकीकरण पर पहुंच गयी हैं।"

सोवियत बहुजातीय संस्कृति की एक उल्लेखनीय उपलब्धि सोवियत जनगण के महाकाव्यों का स्वांगीकरण है। उनकी महानतम संपदाओं में प्रमुख हैं अनेक पीढ़ियों के अनाम लोकगायकों द्वारा शताब्दियों की अवधि में सर्जित कवित्वमय संस्कृति के अमर स्मारक। रूसी बिलीना, उक्राइनी गाथागीत, काकेशिया के लोगों का महाकाव्य 'नार्ती', तुर्कमेनी 'केर-ओग्ली', ताजिक 'कुर-गुली', कज़ाख 'कोब्लांदी बातीर', याकूत पुराणकथाएं ओलोंखो, आर्मीनियाई 'डेविड सासूनकी', मोल्दावियाई वीरगीत, किरगीज़ 'मानस', लाटवियाई 'लाचप्लेसिस', कराकल्पाकीय 'कीर्क कीज़', बश्कीरियाई 'कुज़ी कुर्पिस' और 'मायमीनू', अल्ताई 'माअदाई कारा' तथा मौखिक कविता के अन्य महाकाव्य सोवियत जनता की आत्मिक संस्कृति की महान संपदा की रचना करते हैं, जो शताब्दियों की बुद्धिमत्ता, विगतकाल की जन-स्मृति तथा बेहतर भविष्य के शाश्वत सपनों का सार-संक्षेपण है।

यह तथा रूसी जनगण की अनेकानेक अन्य रचनाएं अक्सर रूपों में अस्तित्वमान थीं और शताब्दियों तक मौखिक रूप में (इन जनगण की अपनी भाषाओं में) पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित रहीं। इस मौखिक महाकाव्य का काफ़ी बड़ा भाग पूर्णतः लुप्त हो क्योंकि, नियमतः, इन लोगों की अपनी लिखित भाषा भी न और (जो सबसे महत्वपूर्ण है) यह अन्य जनगण को अनुपलब्ध

अक्तूबर क्रांति की विजय के बाद इन महाकाव्यों को दर्ज करने तथा प्रकाशित ... , ... अनुवादों के ...

अन्य सभी सास्कृतिक मूल्य भी सपूर्ण सोवियत जनता की संपदा बन गये।

जन-सचार साधनो तथा सस्कृति की भौतिक व तकनीकी सुविधाओं के विकास से इसको और भी अधिक बढ़ावा मिला। देश मे १९८१ में १,३१,००० पुस्तकालय काम कर रहे थे। पाठकगण पुस्तकें तथा पत्रिकाए पढने के लिए घर ले जा सकते हैं। इन्हें सोवियत जनो की ८९ भाषाओ और विदेशी भाषाओ मे प्रकाशित किया जाता है।

पिछली पचवर्षीय योजना अवधि (१९७६-१९८०) एक उदाहरण का काम दे सकती है. जहा १९७५ मे सस्कृति तथा शिक्षा पर ४७ अरब रूबल की धनराशि आवटित की गयी थी, वहां १९७९ में वह बढ़कर ५८ अरब रूबल हो गयी थी। इस अवधि में लगभग २० थियेटरो, ६ सर्कसो तथा अनेक प्रदर्शनी व सगीत-भवनो का निर्माण किया गया, जिनमे से अधिकाश जातीय जनतत्रो मे बनाये गये। लगभग ४,००० पुस्तकालयो के लिए नये भवनो तथा अन्य सुविधाओं का निर्माण हुआ तथा छोटे बड़े अनेक सोवियत नगरो व बस्तियो मे सास्कृतिक उद्देश्यो के लिए शानदार इमारते बनायी गयी। उनके भौगोलिक वितरण पर गौर कीजिये। मास्को मे ससार के पहले बाल-थियेटर से लेकर चार्दजोऊ (किरगीजिया) के थियेटर तक, विलन्यूस ओपेरा व बैले थियेटर से लेकर उक्राइन व बेलोरूस, आदि के देहाती क्षेत्रो के सस्कृति प्रासादो तक।

हाल के वर्षों मे अनेक प्रमुख सास्कृतिक कर्मियो की जयन्तियां खूब जोरशोर से मनायी गयी. अलेक्सान्द्र पुश्किन, लेव तोल्स्तोय, मक्सिम गोर्की, अलेक्सान्द्र ब्लोक, अबू अली इब्न सिना (अविसिना), अबू अल-रेयहन मुहम्मद इब्न-अहमद अल-बिरूनी, डेविड अनाम्न (अविजेय), येगिशे चारेन्त्स, आन्द्रेई उपित्स, मार्तिरोस सारियन तथा अलेक्सेई वेनेत्सिआनोव। उनकी उत्कृष्ट रचनाएं सभी जातियों के सोवियत जनगण को प्रिय हैं।

ये उदाहरण दर्शाते हैं कि सोवियत सघ मे प्रत्येक जातीय सस्कृति के मूल्यवान गुण तथा परपराए सोवियत बहुजातीय सस्कृति की अभिवृद्धि करते हैं। कोई भी एक सोवियत जातीय सस्कृति केवल अपने ही साधनो का उपयोग नहीं करती, बल्कि अन्य बिरादराना सोवियत जातियों की सास्कृतिक निधियों का भी उपयोग करती है और अपनी बारी में इन सस्कृतियों मे योगदान तथा उनकी अभिवृद्धि करती है।

इस तरह समाज की समाजवादी पुनर्रचना से सास्कृतिक विकास के नये प्रकारो का जन्म होता है।

इनमे से एक है समस्त सोवियत जातियो व उपजातियो की द्रुत सास्कृतिक उन्नति। उनमे से प्रत्येक को अपनी उन क्षमताओ को उद्घाटित व विकसित करने की अधिकतम सभावनाए प्राप्त हो जाती है जिन्हे शताब्दियो से दबा दिया गया था या जिनका नामनिशान भी शेष नही रहा था। और यह नितात स्वाभाविक है कि यह विकास जातीय रूपो मे होता है, यानी जातीय सास्कृतिक विरासत, जातीय भाषाओ, जातीय परपराओ, आदि के आधार पर होता है।

और चूकि समाजवादी उत्पादन-सबध, शोषण मुक्त श्रमजीवी जनो के सबध ही सोवियत जनो की सस्कृतियो की इस प्रवृत्ति का आधार है, इसलिए विभिन्न सोवियत जातियो और उपजातियो की सस्कृतियो के अतर्सबध मूलत नयी प्रकृति के हो जाते है आतरिक वर्गीय विरोधो का उन्मूलन करने के बाद वे पूर्णत. नये सिद्धातो पर अपने सबधो का निर्माण करती है।

इससे समाजवादी समाज के आत्मिक जीवन मे **समाजवादी जातियों तथा उपजातियों की सस्कृतियों के अभिसरण और पारस्परिक अभिवृद्धि** जैसे एक महत्वपूर्ण नियम का आविर्भाव भी हो जाता है।

केवल समाजवादी समाज ही उस सच्चे बिरादराना, स्वैच्छिक तथा उदार सहयोग को जन्म दे सकता है जो सोवियत जनगण की बहुजातीय सस्कृति के विकास की लाक्षणिक विशेषता है। समाजवादी बहुजातीय सस्कृति के विकास का अर्थ जातीय सस्कृतियो का मात्र पारस्परिक प्रभाव ही नही है, बल्कि उनकी सक्रिय पारस्परिक अभिवृद्धि भी है, क्योकि वे ऐसे समान जनगण की है जो अपने सबधो को मैत्री व बिरादराना सहयोग, पारस्परिक सम्मान और साथियो जैसी पारस्परिक सहायता के आधार पर बनाते है।

बेशक, जातीय सस्कृतियो के फलने-फूलने तथा पारस्परिक अभिवृद्धि की इस प्रक्रिया पर उसके ऐतिहासिक विकास मे, अवस्था दर अवस्था विचार किया जाना चाहिए।

समाजवादी निर्माण की पहली अवस्था पर प्रमुख काम पहले के पिछडे हुए जनगण की सस्कृति के क्षेत्र मे उनकी वास्तविक असमानता

को दूर करना था, यानी उनकी अपनी लिखित भाषा, माध्यमिक व उच्च शिक्षा संस्थानो, थियेटरो व साहित्य का निर्माण करना, उनके वैज्ञानिको को प्रशिक्षण देना और जातीय बुद्धिजीवी श्रेणी की रचना करना था। स्पष्ट है कि उस अवधि मे उस सहायता पर ध्यान केंद्रित था जो अधिक विकसित जनगण, मुख्यत रूसी जनगण, ने पहले के पिछडे हुए लोगो को प्रदान की। इस कारण से सोवियत संस्कृति के विकास की प्रारंभिक अवस्था मे रूसी संस्कृति पर जातीय संस्कृतियो का प्रतिप्रभाव, मुख्यत विज्ञान मे, महत्वहीन था। कला तथा साहित्य मे यह प्रतिप्रभाव अधिक था, परतु मुख्य रूप से उन रूसी लेखको, कलाकारो तथा सगीतकारो की कृतियो मे व्यक्त होता था जो बीसोतरी तथा तीसोत्तरी दशको मे जातीय सामग्री का अपेक्षाकृत अधिक उपयोग कर रहे थे।

तीसोत्तरी दशक के मध्य तथा उत्तरार्ध मे हर चीज उल्लेखनीय रूप से बदल गयी, तब सघ जनतत्रो मे जातीय बुद्धिजीवियो का आविर्भाव हो चुका था। ऐसा मुख्यत. रूसी, उक्राइनी तथा अन्य जनगण की बिरादराना सहायता से हुआ। १९४० से शुरु होनेवाले दशक मे सभी जनतत्रो मे कैंडीडेट आफ साइस तथा डाक्टर आफ साइस की पदवी प्राप्त लोग थे और उन्हे अपनी ही विज्ञान अकादमियो तथा सोवियत विज्ञान अकादमी की शाखाओ की जरूरत महसूस होने लगी थी। पचासोत्तरी दशक मे सभी जनतत्रो की अपनी-अपनी विज्ञान अकादमिया बन गयी।

इन परिस्थितियो मे स्थानीय वैज्ञानिक समुदाय देश के वैज्ञानिक जीवन मे अधिकाधिक बडी भूमिकाए अदा करने लगे है। समाजवादी जातीय संस्कृतियो के फलने-फूलने से बिरादराना जनगण के बीच वैज्ञानिक सहयोग के नये रूपो का विकास होता है।

सोवियत विज्ञान अकादमी तथा जातीय जनतत्रीय विज्ञान अकादमियो के बीच और जातीय जनतत्रीय अकादमियो तथा विभिन्न वैज्ञानिक व शैक्षिक संस्थानो के बीच वैज्ञानिक सहयोग तथा सूचना विनिमय के विभिन्न रूप हाल के वर्षों मे बहुत कारगर हो गये है। सरसरी, सभी जनतत्रीय अकादमियो के वैज्ञानिक सोवियत सघ मे एक एकीकृत [illegible] के निर्माण की समस्या को मिलकर हल कर रहे है।

उक्राइन, जार्जिया और उज़्बेकिस्तान की वैज्ञानिक कार्य की समष्टिया बीजो को बोने से पहले उनके विकिरण-उपचार का मिलकर अध्ययन कर रहे हैं। मध्य एशियाई जनतन्त्रो के वैज्ञानिक सस्थान रेगिस्तानो मे जीवन का सचार करने की तथा सौर ऊर्जा के उपयोग की समस्याओ को सयुक्त रूप से हल करने मे जुटे हुए हैं।

कला के क्षेत्र मे भी यही बात सच है। यहा जातीय सस्कृतिया समस्त समाजवादी जातियो की कला मे सर्वनिष्ठ समाजवादी यथार्थवाद की पद्धतियो के उपयोग से एक दूसरे के निकटतर आती हैं। वैज्ञानिक क्षेत्र की ही तरह इस क्षेत्र मे भी साहित्यो और कलाओ की पारस्परिक अन्तर्क्रिया और पारस्परिक अभिवृद्धि के दो पहलू हैं।

उनमे से एक पहले के पिछडे हुए जनगण की सस्कृतियो पर सुविकसित जातीय संस्कृतियों का जीवनदायी प्रभाव है।

परन्तु बाद मे, जब ये भूतपूर्व पिछडी हुई सस्कृतिया परिपक्वता की एक निश्चित अवस्था मे पहुच जाती हैं, तो वे खुद रूसी जनता तथा विकसित सस्कृतियो वाले अन्य सोवियत जनगण के साहित्य व कला पर अधिकाधिक प्रभाव डालने लगती है।

क्रान्ति से पहले रूसी साम्राज्य के दायरे मे बद जनगण की सस्कृतियो के ऐसे रचनात्मक प्रभाव की कल्पना भर की जा सकती थी। सुप्रसिद्ध रूसी आलोचक विस्सारिओन बेलीन्स्की ने पूर्वकल्पना की थी कि एक ऐसा समय आयेगा जब रूस के जनगण, जिनके सबध १९वी सदी मे बहुत नाजुक थे, अपनी जातीयता की आत्मिक निधि मे बधुत्वपूर्ण साझेदारी करेंगे।

जारशाही साम्राज्य मे जो मात्र एक सपना था, वह जातियो के समाजवादी समुदाय मे साकार हो गया है। सोवियत सघ मे जातियो के बीच भौतिक और आत्मिक निधियो का विनिमय अधिकाधिक तीव्र होता जाता है, प्रत्येक जाति की सास्कृतिक निधि उन रचनाओ मे अधिकाधिक समृद्ध होती जाती है जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति की बन जाती हैं।

यह अन्तर्क्रिया सर्वोपरि इस तथ्य मे व्यक्त होती है कि किसी एक जनगण की जिन्दगी तथा प्रगतिशील लोगो के बिबो को भिन्न जातीयता के लेखको द्वारा चित्रित किया जा रहा है। यहा वस्तुत विषयो और रूपकों का विनिमय होता है। ममलन, बेलोरूसी लेखक एदुआर्द सामुइ-

लेनोक ने जार्जिया मे समाजवाद के सघर्ष पर एक उपन्यास लिखा और जार्जियाई लेखक कोस्तांतीन लोर्दकीपानीद्जे ने बेलोरूसी सामूहिक किसानो के बारे मे एक कथा माला लिखी। उक्राइनी लेखक इवान ले कृत उपन्यास 'पर्वतो के बीच' उज्बेक जीवन पर आधारित था। मिकोला बजान तथा पाव्लो तिचीना की कई कविताओं मे आर्मीनियाई मूल-भावो को सुना जा सकता है और जार्जियाई कवि सिमोन चिकोवानी की कुछ गीतात्मक कविताए उक्राइन को समर्पित हैं।

यह बात ललित कलाओ, सगीत, थियेटर, सिनेमा, आदि के लिए भी सच है।

जातीय कला के दशको, माहो, बिरादराना सस्कृतियों के उत्सवो के दौरान अधिकाधिक होनेवाले प्रत्यक्ष सबधो से और जातीय रेडियो व टेलीविजन के विकास, जातीय प्रकाशको और अनुवादको के व्यापक क्रियाकलाप से भी सास्कृतिक विनिमयो को बहुत बढावा मिलता है।

सास्कृतिक अतर्सबधो का एक सर्वाधिक सक्रिय रूप सोवियत जनतत्रो के प्रमुख कला-कर्मियो, वैज्ञानिको तथा शिक्षाविदो के प्रतिनिधिमडलो का आदान-प्रदान है। जातीय थियेटर रूसी नाटककारो के सर्वोत्तम नाटको का मचन करते हैं। मास्को, लेनिनग्राद तथा रूसी सघ के अन्य थियेटर उक्राइन, काकेशिया, बाल्टिक तटीय जनतत्रो व मध्य एशिया, बेलोरूस तथा मोल्दाविया के नाटककारो की रचनाओ को महत्वपूर्ण स्थान देते है। क्लासिकी तथा आधुनिक लेखको की पुस्तके अनेक भाषाओ मे प्रकाशित की जाती हैं उनके प्रमुख पात्रो की छवियां और विचार करोडो श्रमजीवियो की आत्मिक सपदा बन गये हैं। जातीय साहित्य, सगीत, सिनेमा और चित्रकला के क्षेत्रो के कई असाधारण व्यक्तित्वो के नाम सारे सोवियत सघ में सुज्ञात हैं।

इससे पहले जातीय साहित्य रूसी साहित्य को उसके लिए नये विषयो और मूलभावो से समृद्ध बनाता था (मसलन, बीसोत्तरी व तीसोत्तरी दशको मे रूसी लेखको के दल मध्य एशिया की यात्रा पर गये और वहा से नयी और बहुमूल सामग्री लेकर आये)। आज जातीय लेखक भी अपने अनुभव और सौदर्यात्मक खोजो को अपने रूसी सहयोगियो तक पहुचाते है।

सभी तथ्य यह दर्शाते है कि अब सोवियत सघ में एक नयी

परपरा बन गयी है जिसका मूलसार यह है कि विभिन्न जातियो और उपजातियो के सास्कृतिक कर्मी सास्कृतिक मूल्यों के एक सर्वनिष्ठ भंडार की रचना करते हैं जो समस्त जातियो के सोवियत जनगण के लिए ज्ञान और भावनाओ का एक जीवनदायी स्रोत है और अपनी अन्तर्वस्तु तथा महत्व मे अतर्राष्ट्रीय है।

उज्बेक लेखक शराफ रशीदोव ने कहा "मातृभूमि को दिली प्यार, कम्युनिस्ट भविष्य का सजीव सपना हमे अपनी दोस्ती को और भी ज्यादा मजबूत बनाने के लिए प्रेरित करता है, क्योकि यह हमारी सफलताओ की गारटी है। हमारी दोस्ती हमे प्यारी है, क्योकि यह ठोस फल देती है, हमारे साहित्यो मे पारस्परिक अभिवृद्धि करती है।

"आज मैं मुश्किल से ही कल्पना कर सकता हू कि मैं याकूब कोलास, विलिस लात्सिस, आन्द्रेई उपित्स, मुख्तार औएज़ोव और गुमार बशीरोव की रचनाओ को जाने बिना कैसे लिख सकता था। हमारे जातीय साहित्यो के पारस्परिक प्रभाव का मूल्याकन करना वस्तुत कठिन है – यह अनुसधानकर्ताओ का काम है। मगर इसमे तिल भर भी सदेह नही कि पारस्परिक प्रभाव का अस्तित्व है और हमारे युवा लेखक केवल अपने अधिक परिपक्व सहयोगियो से ही नही, अपने ज्येष्ठ बधुओ – महान रूसी लेखको–से ही नही सीखते, बल्कि वे समस्त सोवियत जनगण के साहित्यो मे सचित निधियो का भी उपयोग करते हैं।"

इस अतर्सबध का एक अत्यत महत्वपूर्ण गुण, बहुजातीय सोवियत सस्कृति के फलदायी विकास की उल्लेखनीय सपदा यह है कि इसकी उपलब्धिया तत्काल समस्त सोवियत जनगण के सास्कृतिक जीवन मे और प्रत्येक जनगण के सास्कृतिक जीवनो मे अलग-अलग शामिल हो जाती हैं। मनुष्य की क्षमताओ की पूर्ण अभिव्यक्ति तथा सामजस्यपूर्ण व्यक्ति के निर्माण व अधिकतम विकास के लिए इस लाभदायी प्रक्रिया की जरूरत है।

अत, सोवियत सघ के सास्कृतिक विकास ने समस्त जातीय सस्कृतियो और जातीय भाषाओ के एक सस्कृति व एक भाषा द्वारा स्वागीकरण की उस प्राक्कल्पना को गलत साबित कर दिया जिसे कभी कार्ल काउत्स्की ने पेश किया था। इसके विपरीत उसने यह सिद्ध किया कि रूप मे जातीय, अन्तर्वस्तु मे समाजवादी सस्कृतियो का सर्वतोमुखी विकास

ही यह तरीका है जिससे समाजवाद के युग मे संस्कृति का विकास होता है।

हम यह बात ध्यान मे रखते हुए इस प्रश्न पर सविस्तार विचार करेंगे कि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की "रूसीकरण नीति" पर यौनिम कम्युनिस्ट विरोधियो तथा सोवियत सत्ता के हर प्रकार के विरोधियो का एक व्यापक लाञ्छनापूर्ण आरोप है जिसे वे ऐसी अविचलता से बकते फिरते हैं जिसका कोई बेहतर उपयोग हो सकता है।

वे "बदनामी पर बदनामी करते जाओ तो कुछ न कुछ चिपका रह जायेगा" के सिद्धान्त के अनुसार तथ्यो को तोड-मरोड़कर यह आरोप लगाते हैं कि सोवियत सघ मे रूसी सस्कृति तथा रूसी भाषा द्वारा जातीय सस्कृतियो तथा जातीय भाषाओ का स्वयं मे विलयन किया जा रहा है, रूसी नमूने के अनुसार सस्कृति का निर्मम केंद्रीकरण व मानकीकरण जारी है, कि सोवियत कम्युनिस्ट, अभिकथित रूप में, सोवियत समाज की भावी सस्कृति को पूर्णत. रूसी सस्कृति के रूप में देखते हैं, आदि, आदि।

इसके सदर्भ मे हम क्या कह सकते हैं?

सबसे पहले सिर्फ इतना कि किसी भी सोवियत जनतत्र मे चले जाइये और खुद अपनी आखो से देखिये कि प्रत्येक जातीय सस्कृति वास्तव मे कैसे विकसित हो रही है उस विशेष जाति की भाषा में कितनी पुस्तके, अखबार और पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित हो रही हैं; उस जनतत्र मे उसकी अपनी भाषा मे कितने स्कूल और उच्च शिक्षा सस्थान काम कर रहे है, रेडियो और टेलीविजन किस भाषा मे प्रसारण कर रहे हैं, वहा कितने जातीय थियेटर काम कर रहे हैं, आदि, आदि।

जहा तक रूसी सस्कृति तथा सोवियत सघ मे उसके प्रभाव का प्रश्न है, वह व्यक्ति निश्चय ही अत्यत सकीर्ण विचारों का होगा जो यह नही जानता कि रूसी सस्कृति, पुश्किन और तोल्स्तोय, चायकोव्स्की और ग्लीन्का, रेपिन और लेवितान की सस्कृति विश्व के सास्कृतिक मूल्यो का महानतम स्रोत है। यही कारण है कि उसके शताब्दियों पुराने (जैसे कि अन्य महान विश्व सस्कृतियों से) परिचय [illegible] के अधिक तीव्र विकास के लिए आवश्यक [illegible] अभी जोर देकर कहा था, यह सोवियत सघ के

अन्य जनगण, उक्राइनी व आर्मीनियाई, बाल्टिक व मध्य एशियाई, आदि की सास्कृतिक विरासत के उपयोग को किसी भी हालत मे बहिष्कृत नही करता, बल्कि उसकी पूर्वापेक्षा करता है।

इसके साथ ही, यह स्पष्ट है कि सोवियत सघ मे राष्ट्रीय सस्कृतियो की पारस्परिक अभिवृद्धि में कई कठिनाइया हैं, उनमे एक भाषा की बाधा है। जहा सोवियत जनगण की सगीत व रूपकात्मक ललित कलाओ को सीधे-सीधे इस्तेमाल किया जा सकता है, वहा साहित्यिक रचनाओ या परपराओ के मामले मे ऐसा नही होता है। मसलन, रमूल गम्जातोव एदुआर्दस मेजेलाइतिस की रचनाओ से किस प्रकार परिचित हो सकते हैं? लिथुआनियाई भाषा से सीधे अवार भाषा मे अनुवाद के द्वारा? बेशक पारस्परिक अनुवाद वर्जित नही हैं, लेकिन हर सोवियत नागरिक के लिए सोवियत जनगण के और विश्व साहित्य से भी परिचित होने का प्रमुख रास्ता रूसी भाषा के द्वारा है। बहुजातीय सोवियत राज्य की विशिष्ट ऐतिहासिक दशाओ के अतर्गत रूसी भाषा ऐसी भाषा बन जाती है जो सोवियत जनगण की सस्कृतियो के बीच सपर्क मे सहायता करती है और उनके आत्मिक पुनर्मेल व सास्कृतिक मूल्यो के विनिमय को त्वरण प्रदान करती है।

रूसी सस्कृति और रूसी भाषा की मुख्य भूमिका यह है कि वे सोवियत सघ की सारी जातीय सस्कृतियो को एक दूसरे की अभिवृद्धि करने और इस तरह उनके विकास को बढावा देने में मदद करती हैं।

सोवियत जनगण १०० से भी अधिक भाषाओ मे बाते करते है। इस तरह जीवन स्वय ही उनके सामने यह समस्या पेश करता है कि एक दूसरे को कैसे समझा जाये।

जारशाही के समय रूसी बोल्शेविकों के बीच उपदामपथी "अतर्राष्ट्रवादी" थे जो समाजवादी क्राति की विजय के बाद रूसी भाषा को सबके लिए अनिवार्य करना और रूस में सारी जातियों के जनगण को एक करने के नाम पर उसे राजकीय भाषा बनाना चाहते थे। वे वकालत करते हुए इस "सास्कृतिक" तर्क का उपयोग करते थे कि महान और सशक्त रूसी भाषा "परकीयों" के साहित्य को समृद्ध बनायेगी और उन्हे असाधारण सास्कृतिक मूल्यो का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ बनायेगी।

लेनिन ने उन सबको इस प्रकार उत्तर दिया : "हम आप से ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि तुर्गेनेव, तॉल्स्तोय, दोब्रोल्युबोव और चेर्निशेव्स्की की भाषा महान और सशक्त है। हम आप से कहीं ज्यादा यह चाहते हैं कि रूस में रहनेवाली सारी जातियों के उत्पीडित वर्गों के बीच किसी भी भेदभाव के बगैर घनिष्टतम संभव अंतर्क्रिया और बिरादराना एकता स्थापित हो। और हम, बेशक, इस बात के पक्ष मे हैं कि रूस के रहनेवालों को महान रूसी भाषा सीखने का अवसर प्रदान किया जाये।

"हम जो नही चाहते, वह है **जोरजबरदस्ती**। हम जनगण को लाठी से हाककर बिहिश्त मे नहीं ले जाना चाहते ; क्योंकि "संस्कृति" के बारे में आप कैसे ही बढ़िया शब्दो का उच्चारण क्यों न करें, एक **अनिवार्य** सरकारी भाषा में जोरजबरदस्ती निहित है, लाठी का उपयोग निहित है। हम यह सोचते हैं कि महान और सशक्त रूसी भाषा को किसी के द्वारा **निरी विवशता** से अपना अध्ययन कराने की जरूरत नहीं है... जिन लोगो के जीवन और काम की दशाए उनके लिए रूसी भाषा को जानना जरूरी बनाती हैं, वे इसे बिना जोरजबरदस्ती के सीखेंगे।"*

ये शब्द १९१४ मे लिखे गये थे। आज यह बुद्धिमत्तापूर्ण कथन बहुजातीय समाजवादी संस्कृति के संपूर्ण विकास द्वारा पूरी तरह से सही सिद्ध हो गया है।

रूसी भाषा के माध्यम से सोवियत जनगण विश्व सास्कृतिक मूल्य की रचनाओं से फ़ौरन और उस कृति का अपनी भाषा मे अनुवाद होने से पहले ही परिचित हो जाते हैं।

मसलन, १९७७ मे सोवियत संघ मे 'विश्व साहित्य का पुस्तकालय' के शीर्षक से एक अद्वितीय पुस्तकमाला का प्रकाशन कार्य पूरा हुआ। इस पुस्तकमाला के २०० खडो मे ८० से भी अधिक देशों के ३,२३५ लेखकों की २५,८०० कृतियां प्रकाशित की गयी। जाहिर है कि इतनी बड़ी पुस्तकमाला को सोवियत संघ मे रहनेवाली १०० से भी अधिक जातियों की भाषाओं में प्रकाशित नहीं किया जा सकता था। लेकिन

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'क्या अनिवार्य सरकारी भाषा की आवश्यकता है?', ८।

ो भाषा जाननेवाले हर व्यक्ति के लिए यह एक असली महानिधि है। इस सबसे यह ज़ाहिर हो जाता है कि सोवियत जनगण ने अंतर्जा- संचार के लिए रूसी भाषा ही को स्वेच्छा से क्यो अपनाया।

यह जीवन ही की एक अपेक्षा है। मसलन, विभिन्न जातियो के , उक्राइनी, लाटवियाई, काल्मीक, तातार, आदि कज़ाखस्तान परती ज़मीन या बाइकाल-आमूर रेलमार्ग जैसी अखिल संघीय योजनाओ मे आ मिलते हैं। प्रश्न यह है कि वे किस भाषा मे बाते ? बेशक, रूसी मे। यही कारण है कि आज सोवियत संघ के प्रतिशत लोग रूसी भाषा का अच्छा ज्ञान रखते हैं।

उपरोक्त बातो मे निम्नांकित को जोडना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी सोवियत जनगण की जातीय संस्कृ- के विकास को और खास तौर से उनकी पारस्परिक वृद्धि को तम बढ़ावा देने के साथ ही साथ इस सिद्धात का दृढता से पालन ी है कि न जातीय गुणो की अवहेलना करने दी जायेगी और न बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने दिया जायेगा। "अतर्जातीय" की व्याख्या तीय" के अभाव के रूप मे करने तथा सोवियत जातियो की संस्कृ- के विकास मे "जातीय" की भूमिका की अतिशयोक्ति करने के दो प्रयत्नो के विरुद्ध संघर्ष करते हुए कम्युनिस्ट पार्टी विश्व संस्कृ- के विकास मे वस्तुगत नियमो के मार्क्सवादी विश्लेषण पर भरोसा ी हुई भविष्य की ओर देखती है और संस्कृति के विकास मे एक न्य प्रवृति के दर्शन करती है।

परिपक्व समाजवाद की अवस्था मे सोवियत जनगण की संस्कृति विविध जातीय रूपो मे विद्यमान है जो सब मुख्य बात मे एकीकृत ानी सोवियत जनगण मे निहित सर्वनिष्ठ लक्षण—समाजवादी जीवन— निबिंबित करने में। यह नितांत स्वाभाविक है कि समस्त सोवियत ग के एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ने के साथ ही इस अन्तर्राष्ट्रीय त का महत्व बढ रहा है और यह सोवियत जनगण की संस्कृति ी महत्वपूर्ण होता जायेगा। लेनिन ने इस प्रक्रिया की अनियमित को महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति से पहले ही समझ लिया उन्होंने लिखा: "हमारा काम जातियो का पृथक्कीकरण नही, सब जातियो के श्रमिको को एकजुट करना है। हमारे ध्वज

मे "जातीय सस्कृति" का नही, बल्कि अतर्जातीय संस्कृति (अतर्राष्ट्रीय) का नारा है जो सारी जातियो को उच्चतर, समाजवादी एकता में बाधता है और उसका मार्ग पूजी के अंतर्राष्ट्रीय विलयन द्वारा पहले से ही प्रशस्त किया जा रहा है।"*

सोवियत सघ मे समाजवादी जातियो के बीच जो नये प्रकार के आर्थिक और राजनीतिक सबध बने हैं, जिस नये सामाजिक-ऐतिहासिक समुदाय – सोवियत जनगण – की रचना हुई है उसकी विशेषता सास्कृतिक विकास की नयी प्रवृत्तिया हैं।

इनमे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि सोवियत संघ की जातियो के अधिकाधिक पुनर्मेल का तार्किक परिणाम समाजवादी अंतर्वस्तु मे **सोवियत जनता की एकीकृत संस्कृति है।**

प्रत्येक जाति की सस्कृतियो से उत्पन्न यह संस्कृति समस्त सोवियत नागरिको के लिए, चाहे उनकी कोई भी सस्कृति क्यो न हो, अत्यत महत्वपूर्ण मूल्यो से समृद्ध हो रही है। उनमे समस्त सोवियत जातियो मे सर्वनिष्ठ क्रातिकारी, देशभक्तिपूर्ण तथा श्रम-परंपराएं हैं।

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, विकसित समाजवाद के अंतर्गत प्रत्येक जाति की सास्कृतिक निधिया अंतर्जातीय प्रकृति, जो सोवियत सघ की सभी जातियो और उपजातियों में सर्वनिष्ठ है, की रचनाओ से समृद्धतर बनायी जा रही हैं और उनके बीच सास्कृतिक मूल्यो का विनिमय विभिन्न जातियो मे सर्वनिष्ठ आत्मिक लक्षणो की रचना को बढ़ावा देता है।

परिपक्व समाजवाद मे जातीय सस्कृतियो का यह पुनर्मेल तथा पारस्परिक अभिवृद्धि और सोवियत जनगण की सस्कृति की अंतर्वस्तु का बढ़ता हुआ अन्तर्जातीयकरण शनै शनै उसके रूप के अंतर्राष्ट्रीयकरण की तरफ़ ले जा रहा है।

यह कैसे व्यक्त होता है? पहले, जातीय रूपों के कई मौलिक तत्व अपनी सकीर्ण सम्प्रदाय सीमाओं को पार करते है और अन्य सो- [illegible] व उपजातियों के लिए महत्वपूर्ण हो जाते हैं; दूसरे, [illegible] रूपों का पारस्परिक सहयोग प्रत्येक जनगण को अन्य जनगण

* लेनिन 'जातियता के अनुसार स्कूलों के पृथक्करण पर', १९१३।

की सांस्कृतिक विरासत के कल्पनाशील उपयोग में समर्थ बनाता है और इस तरह अपने अनुभव से उसकी अभिवृद्धि करता है, तीसरे, अपनी बारी में यह सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ में प्रत्येक जातीय संस्कृति के प्रभाव के परास तथा मात्रा को बढ़ा देता है, चौथे, इसके फलस्वरूप जातीय संस्कृतियों का आम विकास होता है जो मिलकर एक ही अविभक्त सोवियत संस्कृति की रचना करता है (आधुनिक जन-संचार साधनों से इस प्रक्रिया को बहुत बल मिलता है)।

इस तरह सोवियत संस्कृति सोवियत संघ की प्रत्येक जाति व उपजाति के प्रयत्नों से विकसित होती है। यह अंतर्राष्ट्रीय और बहुजातीय है, यह प्रत्येक जातीय संस्कृति की सर्वोत्तम परंपराओं को, विश्व संस्कृति की प्रगतिशील उपलब्धियों को आत्मसात करती है, यह जातीय अलगाव, राष्ट्रवाद तथा महासत्तावादी अंधराष्ट्रवाद का विरोध करती है और चिरस्थायी महत्व के नये मूल्यों, नये मानकों और कम्युनिज्म की भावना से ओतप्रोत परंपराओं का निर्माण करती है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की २६वीं कांग्रेस में प्रस्तुत पार्टी की केंद्रीय समिति की रिपोर्ट में कहा गया था कि अनुभव यह दर्शाता है कि हमारे प्रत्येक जनतंत्र का सघन आर्थिक व सामाजिक विकास उनके एक दूसरे के निकटतर आने की प्रक्रिया को हर क्षेत्र में तेज कर देता है। जातीय संस्कृतियां फल-फूल रही हैं तथा एक दूसरे की अभिवृद्धि कर रही हैं और हम संपूर्ण सोवियत जनगण की—एक नये सामाजिक व अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की—संस्कृति का निर्माण होता हुआ देख रहे हैं। हमारे देश में यह प्रक्रिया ऐसे हो रही है, जैसे समाजवाद के अंतर्गत होना ही चाहिए—समानता, बिरादराना सहयोग और स्वतंत्र इच्छा के आधार पर।

राष्ट्रीय संस्कृतियों का फलना-फूलना और उनकी पारस्परिक अभिवृद्धि तथा पहले किसी भी समय से अधिक अंतर्राष्ट्रीयकरण की यह दोहरी द्वंद्वात्मक प्रक्रिया विश्व संस्कृति के विकास की सामान्य प्रवृत्ति का विशिष्ट गुण है, यानी समस्त जनगण के सांस्कृतिक मानकों को धीरे-धीरे एक स्तर पर लाकर एक ही मानवीय संस्कृति—कम्युनिज्म की संस्कृति—की ओर जाने की प्रवृत्ति का लक्षण है।

परिपक्व समाजवाद की उर्वर भूमि पर सोवियत जनगण की

क्राति की प्रारंभिक अवस्थाओ मे सास्कृतिक विकास की, खास
र पर, सास्कृतिक विरासत के स्वागीकरण की समस्याओ पर हुए
त तीव्र वैचारिक सघर्ष को ले लीजिये। यहा फासिज्म के बचे हुए
ारिक तत्वो जैसे अधराष्ट्रवाद तथा राष्ट्रवाद के विरुद्ध सघर्ष मुख्य
।

यहा इतना और कहना जरूरी है कि इन दो देशो मे से प्रत्येक मे
राष्ट्रवादी तथा राष्ट्रवादी विचारो व मनोभावो के विरुद्ध सघर्ष ने
त विशिष्ट रूप धारण कर लिये थे।

मसलन, जर्मन जनवादी गणतत्र मे यह सघर्ष जर्मनो की "श्रेष्ठतर
·" के सिद्धातो को निकाल बाहर करने तथा फासिस्ट भू-राजनीति
वेभिन्न पुनरावर्तनो के खिलाफ सघर्ष के साथ अभिन्न रूप से जुडा
हिटलरवाद के घिनौने अवशेषो के खिलाफ यह लडाई बहुत
ं ही नही खाती थी, बल्कि अक्सर अनपेक्षित रूप धारण कर लेती
इस तरह जर्मन जनवादी गणतत्र मे सास्कृतिक क्राति की पहली
थाओ मे जर्मन जनता की महान सास्कृतिक विरासत (जो हिटलर
ानाशाही के अतर्गत बहुत हद तक तबाह हो गयी थी) के सही
कन तथा इसके पुनर्जीवन के वास्ते सघर्ष की एक अभिव्यक्ति
ह माग थी कि इस तथ्य पर ध्यान केंद्रित किया जाये, जैसे वाल्टर
लेत ने कहा, कि "हमारे लेखको और कलाकर्मियो का काम अक्सर
ा काल की ओर मुड जाता है, पर इस अर्थ मे नही कि वे सास्कृ-
विरासत का उपयोग तथा विकास करते हैं, बल्कि इस अर्थ मे
ा निम्नबुर्जुआ, व्यक्तिवादी मनोविज्ञान के दायरे मे ही रह जाते
ापद, कठिनाई इस तथ्य मे भी निहित है कि सास्कृतिक कर्मियो
हमारी पार्टी के सदस्यो की एक बहुत बडी सख्या रूपवाद के
प्रभाव के अतर्गत है।"

ंगरी मे भी राष्ट्रवाद अतर्राष्ट्रीय प्रकृति की समाजवादी सस्कृति
ास मे रुकावट डालनेवाली एक सर्वाधिक सुस्पष्ट नकारात्मक
ा था। परंतु वहा राष्ट्रवाद के प्रसार तथा उसके रूपो के कारण
· भिन्न थे। उस देश मे, जिसके जनगण राष्ट्रीय स्वाधीनता के
दियो से प्रयत्नशील थे, राष्ट्रवाद की जडे बहुत गहरी थी
देशी हमलावरो के खिलाफ सघर्ष से जुडा था। इसके ४.

अविभक्त संस्कृति विकसित व सुदृढ़ हो रही है, जो समस्त श्रमजीवियों की सेवा करती है और उनके समान आदर्शों को व्यक्त करती है। यह जातीय संस्कृतियों की उपलब्धियों तथा परंपराओं में से सार्विक महत्व की हर चीज़ को आत्मसात करती है। अंतर्वस्तु मे समाजवादी, जातीय रूपो मे विविधतापूर्ण तथा अपनी भावना व प्रकृति में अंतर्राष्ट्रवादी सोवियत संस्कृति सोवियत संघ की जातियों तथा उपजातियो के वैचारिक और नैतिक एकीकरण के लिए एक सबल शक्ति बन गयी है।

४. समाजवादी समुदाय के देशों की संस्कृतियों के विकास और दृढ़ीकरण की प्रक्रिया में सांस्कृतिक विरासत का स्वांगीकरण

युद्धोत्तर काल की एक महत्वपूर्ण घटना इतिहास मे एक नये सामाजिक समुदाय – राष्ट्रों के समाजवादी समुदाय – का उद्भव और विकास है। स्वामित्व के सामाजिक रूप, समाजवादी जनवाद तथा मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्व दृष्टिकोण इस प्रक्रिया के आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक आधार की रचना करते हैं।

राष्ट्रों के समाजवादी समुदाय के सांस्कृतिक जीवन मे होनेवाले क्रांतिकारी परिवर्तनो के दो पक्ष भी हैं: "विषमस्तरीय" तथा "समस्तरीय।" जहां तक पूर्वोक्त का संबध है, यहा वही नियम काम करते हैं, जो सिद्धांतत. उन्ही नियमों के समान हैं जिन पर सोवियत संघ में सांस्कृतिक क्रांति के मॉडल में विचार किया जा चुका है, यानी उस सब का अधिकतम उपयोग जो उस विशेष राष्ट्र द्वारा शताब्दियों में संचित सांस्कृतिक विरासत मे मूल्यवान है।

बेशक, इसका यह मतलब नही है कि समाजवादी देशो मे सांस्कृतिक विरासत के स्वांगीकरण के दौरान होनेवाली इन प्रक्रियाओं की अपनी कोई विशिष्टताएं नहीं हैं। इसके सर्वथा विपरीत, ये विशिष्टताएं अवश्यभावी हैं जिनका पहला और सर्वाधिक महत्वपूर्ण संबंध इस तथ्य से है कि इन देशों में जारी सांस्कृतिक क्रांतियों में कुछ सामान्य नियम भी हमेशा शामिल होते हैं और कुछ विशिष्ट लक्षण भी।

मिसाल के लिए, जर्मन जनवादी गणतंत्र तथा हंगरी में हुई सांस्-

तिक क्रांति की प्रारंभिक अवस्थाओ मे सास्कृतिक विकास की, खास तौर पर, सास्कृतिक विरासत के स्वांगीकरण की समस्याओ पर हुए अति तीव्र वैचारिक सघर्ष को ले लीजिये। यहा फासिज्म के बचे हुए वैचारिक तत्वो जैसे अधराष्ट्रवाद तथा राष्ट्रवाद के विरुद्ध सघर्ष मुख्य था।

यहा इतना और कहना जरूरी है कि इन दो देशो मे से प्रत्येक मे अधराष्ट्रवादी तथा राष्ट्रवादी विचारो व मनोभावो के विरुद्ध सघर्ष ने अत्यत विशिष्ट रूप धारण कर लिये थे।

मसलन, जर्मन जनवादी गणतत्र मे यह सघर्ष जर्मनो की "श्रेष्ठतर नस्ल" के सिद्धातो को निकाल बाहर करने तथा फासिस्ट भू-राजनीति के विभिन्न पुनरावर्तनो के खिलाफ सघर्ष के साथ अभिन्न रूप से जुडा था। हिटलरवाद के घिनौने अवशेषो के खिलाफ यह लडाई बहुत समय ही नही खाती थी, बल्कि अक्सर अनपेक्षित रूप धारण कर लेती थी। इस तरह जर्मन जनवादी गणतत्र मे सास्कृतिक क्राति की पहली अवस्थाओ मे जर्मन जनता की महान सास्कृतिक विरासत (जो हिटलर की तानाशाही के अतर्गत बहुत हद तक तबाह हो गयी थी) के सही मूल्याकन तथा इसके पुनर्जीवन के वास्ते सघर्ष की एक अभिव्यक्ति की यह माग थी कि इस तथ्य पर ध्यान केंद्रित किया जाये, जैसे वाल्टर उलब्रीख्त ने कहा, कि "हमारे लेखको और कलाकर्मियो का काम अक्सर अतीत काल की ओर मुड जाता है, पर इस अर्थ मे नही कि वे सास्कृतिक विरासत का उपयोग तथा विकास करते हैं, बल्कि इस अर्थ मे कि वे निम्नबुर्जुआ, व्यक्तिवादी मनोविज्ञान के दायरे मे ही रह जाते हैं। शायद, कठिनाई इस तथ्य मे भी निहित है कि सास्कृतिक कर्मियो की, हमारी पार्टी के सदस्यो की एक बहुत बडी सख्या रूपवाद के चालू प्रभाव के अतर्गत है।"

हगरी मे भी राष्ट्रवाद अतर्राष्ट्रीय प्रकृति की समाजवादी संस्कृति के विकास मे रुकावट डालनेवाली एक सर्वाधिक सुस्पष्ट नकारात्मक परपरा था। परतु वहा राष्ट्रवाद के प्रसार तथा उसके रूपो के कारण नितात भिन्न थे। उस देश मे, जिसके जनगण राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए सदियो से प्रयत्नशील थे, राष्ट्रवाद की जडे बहुत गहरी थी वह विदेशी हमलावरो के खिलाफ सघर्ष से जुडा था। इसके

हाप्सबुर्ग शासन के समय से तथा बाद मे होर्थी के राज्य के दौरान देश के जबरन जर्मनीकरण के विरुद्ध लड़नेवाली प्रगतिशील शक्तिया इस झंडे के तले एकजुट हुई। लेकिन उस काल में भी राष्ट्रवाद के नकारात्मक पक्ष, जिनका प्रभावी वर्गों ने बड़ी चालाकी से लाभ उठाया, प्रतिशोध, अन्य राष्ट्रो के प्रति शत्रुता तथा राष्ट्रीय हीन-भावना में पूर्णतः व्यक्त होते थे। होर्थी, जिसने हगरी को सचमुच ही नाज़ी जर्मनी की सेवा मे पेश कर दिया था, ने अपनी आतरिक नीति अंधराष्ट्रवादी तथा नस्लवादी भावनाओ के भी आधार पर बनायी। जनता की चेतना को विषाक्त करनेवाले इस किस्म के राष्ट्रवाद ने, स्वभावतः, हगरी की सस्कृति पर दुष्प्रभाव डाला।

राष्ट्रवाद के विरुद्ध सघर्ष के अतिरिक्त हगरी मे बुर्जुआ जनवादी भ्रमों के विरुद्ध सघर्ष भी विशेष महत्व का था। उसकी जडे भी ऐतिहासिक अतीत मे पायी जा सकती हैं : १९वी सदी के चालीसोत्तरी दशक में हगरी की बुर्जुआ क्राति असफल हो गयी थी, लोग अपने समय में बुर्जुआ जनतत्र बनाने मे विफल रहे, अतः, वे बुर्जुआ जनवादी "स्वाधीनताओ" के "वरदानो" का अनुभव नही कर पाये। इसके फलस्वरूप हगरियाई जनगण कुछ सस्तरों में बुर्जुआ जनवादी भ्रमों से चिपके ही रह गये। उनसे हगरी के कुछ बुद्धिजीवियो के बीच तदनुरूप वैचारिक रुझान, मसलन, नास्तिवाद व वस्तुनिष्ठवाद का जन्म हुआ, जो साहित्य और कला मे खास तौर से प्रतिबिंबित हुए।

यह स्थिति इस तथ्य मे और भी बिगड गयी कि जिस अवधि मे हगरी में सास्कृतिक क्राति शुरू हुई, उसी अवधि में देश में व्यक्तिपूजा के प्रभाव दिखायी देने लगे थे और इसमे सास्कृतिक विरासत की आत्मगत व्याख्या का जन्म हुआ और बुर्जुआ वस्तुनिष्ठवाद का विरोध सकीर्ण सनाधना से किया जाने लगा।

समाजवादी समुदाय के देशों मे क्राति के विकास को रोकनेवाली नकारात्मक परपराओं के साथ ही ऐसी प्रगतिशील प्रवृत्तिया तथा कारक भी थे जिन्होंने सास्कृतिक विरासत के स्वागीकरण को बढ़ावा दिया।

वे अक्सर बहुत विशिष्ट भी होते थे। मिसाल के लिए, बुल्गारियाई जनगण ने सास्कृतिक विरासत को काफी जल्दी आत्मसात कर लिया, ... बुल्गारियाई बुद्धिजीवियो द्वारा शताब्दियो मे निर्मित प्रगतिशील

क्रांतिकारी परंपराओ ने सास्कृतिक क्राति के क्रम पर बहुत प्रभाव ...ा। इनमे से अधिसख्य बुद्धिजीवी तुर्कों के शासन से लेकर जनतात्रिक ...रो से आये थे।

यह साफ जाहिर है कि सास्कृतिक विरासत के स्वागीकरण की ...या की ये तथा कई अन्य विशेषताएं खुद सास्कृतिक क्रातियो के ...णों की ही अभिव्यक्तिया हैं। वे इस तथ्य से निर्धारित होती है ... सास्कृतिक क्रातिया ऐसे देशो मे होती हैं, जो अपने इतिहास की ...शिष्टताओं तथा मूलत' भिन्न अतर्राष्ट्रीय दशाओ के कारण किसी न ...ी रूप मे एक दूसरे से भिन्न होते है।

बेशक, समाजवादी क्राति की प्रकृति और क्रम (क्रमश सास्कृतिक ...त) हमेशा अनेक वस्तुगत व आत्मगत कारको के विशेष सहसबध ... निर्भर करते है।

हमारी दृष्टि से इन कारको मे मुख्य निम्नाकित है

... विश्व के शक्ति-सतुलन मे समाजवाद और पूजीवाद का सापेक्ष ...,

... साम्राज्यवादी युग मे पूजीवाद के आर्थिक व राजनीतिक (अत , ...तिक भी) विकास की असमानता का नियम, जो अत्यत विकसित ...वादी देशो (इनका विकास-स्तर भी विभिन्न होता है) और ... विकसित पूजीवादी देशो (इनका विकास-स्तर विभिन्न होता है) ...स्तित्व मे खास तौर से अभिव्यक्त होता है ;

... समाजवादी क्राति सपन्न करते हुए एक देश के अदर सघर्ष करते ...वर्गों की शक्तियो के बीच वास्तविक सबध (सर्वहारा तथा उसके ... वर्गों के आर्थिक, राजनीतिक व सास्कृतिक स्तर, उसकी चेतना, ...न, एकता और युद्ध की भावना का स्तर तथा उसके वर्ग-विरोधियो ...आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक विकास के स्तर, जनसाधारण ...नकी विचारधारा के प्रभाव तथा उनकी भ्रष्टता की सीमा, आदि, ...),

... उस देश विशेष मे सर्वहारा के हरावल यानी कम्युनिस्ट पार्टी के ...कलाप, उसकी मार्क्सवादी-लेनिनवादी सैद्धातिक परिपक्वता तथा ...हारिक अनुभव, उसकी जन-प्रकृति, उसके अतर्राष्ट्रीय सपर्कों ...ी तथा सिद्धातनिष्ठता,

उस राज्य विशेष मे सामाजिक-राजनीतिक तथा आर्थिक सरचना की प्रकृति, विशिष्ट राजनीतिक तथा सास्कृतिक संस्थानों का अस्तित्व तथा अन्य राष्ट्रो के साथ उसके सबध,

जिन देशो मे समाजवाद की विजय हो चुकी है, उनके साथ सबधो की प्रकृति तथा रूप, समाज के सास्कृतिक जीवन के समाजवादी रूपातरण के दौरान इन देशो द्वारा प्राप्त अनुभव का इस्तेमाल करने की क्षमता ;

विशिष्ट राजनीतिक और सास्कृतिक परपराओं तथा तदनुरूप राजनीतिक और सास्कृतिक सस्थाओं का अस्तित्व और अन्य राष्ट्रो के साथ विचाराधीन राष्ट्र के सबधो की विशेषता तथा विकास की कोटि ;

जातीय लक्षणो की दृष्टि से सास्कृतिक विरासत की प्रकृति, उसका परिमाण, अतर्राष्ट्रीय सबध, जनता के बीच उसका फैलाव और राष्ट्रीय बुद्धिजीवी सवर्ग का अस्तित्व, आदि।

इन सभी प्रवृत्तियो का सास्कृतिक क्राति की प्रक्रियाओ पर असर पडना लाजिमी है। उनमे से कुछ उनकी पूर्ति को तीव्र और सुविधाजनक बनाती हैं, और अन्य उसको मंद या बाधित करती हैं। चूकि विभिन्न देशो में ये सभी कारक ऐतिहासिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं मे भिन्न-भिन्न तरीको से व्यक्त तथा क्रियाशील होते हैं, इसलिए प्रत्येक देश की सास्कृतिक क्राति निम्नाकित मामलो में उसकी अपनी विशिष्ट क्राति होती है·

(क) समाजवाद की दिशा मे समाज की सस्कृति को रूपातरित करने की विधि मे,

(ख) जनता के जीवन की समाजवादी सास्कृतिक पुनर्रचना करनेवाले सांस्कृतिक संस्थानों को संगठित करनेवाले रूपों की विशिष्टता मे ;

(ग) समाजवादी सस्कृति को विकसित करने की दरों मे।

समाजवादी समुदाय के विभिन्न देशो मे सास्कृतिक विरासत के विशिष्ट स्वागीकरण का अध्ययन करते समय उपरोक्त कारको को ᐧ ᐧ नही किया जा सकता है ; सास्कृतिक विरासत को अवाम में लाने की प्रक्रिया को वे सभी एक निश्चित सीमा तक प्रभा- ᐧ हैं।

इस तरह, समाजवादी सस्कृति के विकास मे विशिष्ट लक्षण अनेक जनगण के लिए सर्वनिष्ठ नियमो के साथ कसकर गुथे हुए है, और ये नियम विशिष्ट लक्षणों मे व्यक्त होते हैं। यही कारण है कि समाजवादी सस्कृति के विकास मे सर्वनिष्ठ लक्षणो को घटाकर आकना तथा विशिष्ट तत्वों की अवहेलना करना दोनो ही का अर्थ वस्तुत सास्कृतिक क्राति के सिद्धात का सशोधन है और इसका अवश्यभावी परिणाम सास्कृतिक विरासत के मूल्याकन मे राष्ट्रवादी अतिवाद होता है।

इस सिलसिले मे इस बात पर ज़ोर देना महत्वपूर्ण है कि समाजवादी देशो मे सास्कृतिक क्रातिया अपनी दशाओ के मामले मे एक दूसरे से कितनी ही भिन्न क्यो न हो, वे सामान्य रूप मे, यानी वस्तुगत सार मे, अंतर्राष्ट्रीय घटना होती हैं। रूस मे महान समाजवादी क्राति के बारे मे लेनिन का जो कहना था वह उन पर भी पूर्णत लागू होता है "रूस मे सर्वहारा का अधिनायकत्व कुछ विशेषताओ मे अनिवार्यत भिन्न ही होगा लेकिन आधार शक्तिया – और सामाजिक अर्थ-व्यवस्था के आधार रूप – रूस मे वैसे ही है जैसे कि किसी पूजीवादी देश मे, इससे उनकी विशिष्टताए महज़ कम महत्व की बातो पर ही लागू हो सकती हैं।"*

इसमे सदेह नही कि लेनिन के दिमाग मे, खास तौर से यहा, सास्कृतिक क्राति का समस्त जनगण के लिए सर्वनिष्ठ सास्कृतिक विरासत के स्वागीकरण जैसा एक नियम था। उन्होंने लिखा "हमे पूजीवाद से वह सब ले लेना चाहिए जो मूल्यवान है, उसके सारे विज्ञान और सस्कृति को ले लेना चाहिए, ताकि हमारी जीन पूर्ण और अनिम हो सके।"**

यह शब्द सास्कृतिक क्राति के सिद्धात तथा व्यवहार मे विभिन्न विरूपणो की आलोचना के लिए, सास्कृतिक विरासत के प्रति लेनिन-विरोधी, नास्तिवादी रवैये, जिसका, दुर्भाग्यवश, मार्क्सवादियो को

---

* ब्ला० इ० लेनिन, 'अर्थव्यवस्था सर्वहारा के अधिनायकत्व के युग मे' १९१९।

** ब्ला० इ० लेनिन, 'सोवियत सत्ता की उपलब्धिया और कठिनाइया' १९१९

आज भी सामना करना पड़ता है, के खिलाफ संघर्ष के लिए विशेष महत्वपूर्ण है।

समाजवादी देशो में सातत्य के कुछ "विषमस्तरीय पक्षो" पर विचार करने के बाद अब हम "समस्तरीय सातत्य" के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्षो पर विचार करेगे। इसका अस्तित्व मे आना विश्व समाजवादी प्रणाली की रचना तथा विकास के साथ और समाजवादी समुदाय के देशो की संस्कृतियो के बीच अतर्क्रिया के साथ संबधित है।

एक बहुजातीय राज्य के अंदर समाजवादी संस्कृतियो की अतर्क्रिया का उद्गमन विश्व कम्युनिस्ट सांस्कृतिक क्रांति की पहली अवस्था का तर्कसम्मत परिणाम है, जबकि दूसरी अवस्था में सातत्य का परास अपरिमित रूप से विस्तृत हो जाता है। इसमें, पहले, एक राज्य के बजाय कई और, नियमतः, बहुजातीय राज्यो की संस्कृतियों की अतर्क्रिया और, दूसरे, राष्ट्रों के समाजवादी समुदाय की रचना करनेवाले समाजवादी जनगण की संस्कृतियो का विकास और अतर्क्रिया भी शामिल होती हैं। गुणात्मक दृष्टि से एक नये प्रकार के सहयोग का जन्म होता है जो समाजवादी अतर्राष्ट्रवाद तथा समाजवादी पारस्परिक सहायता पर, कम्युनिस्ट समाज की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति की रचना के उद्देश्य से किये जानेवाले प्रयत्नो को एकजुट करने के लिए समाजवादी राष्ट्रो के समान सप्रयासो पर आधारित है।

इन दशाओ मे सास्कृतिक विरासत के स्वांगीकरण में तथा उन प्रक्रियाओ के बीच, जो विश्व संस्कृति के इतिहास मे पहले हो चुकी हैं, आधारभूत अतर क्या है?

जब हम समाजवादपूर्व समाजों मे विश्व संस्कृति की बाते करते हैं तो हमारा तात्पर्य, निस्सदेह, सास्कृतिक मूल्यो के पारस्परिक विनिमय से होता है। जनगण के बीच सास्कृतिक सपर्कों के बगैर, विश्व के छोटे-बड़े समस्त जनगण के सास्कृतिक मूल्यो से अपनी संस्कृतियो की पारस्परिक अभिवृद्धि के बगैर विश्व संस्कृति का विकास असभव होता। जनगण के बीच सास्कृतिक सबध जितनी तीव्रता से फैलते और गहराते हैं, विभिन्न जनगण की संस्कृतियो का पारस्परिक प्रभाव और पारस्परिक अभिवृद्धि जितनी विविधतापूर्ण होती है, विश्व संस्कृति की निधि भी उतनी ही समृद्धतर तथा उसका विकास उतना ही तीव्रतर होता है।

पूंजीवाद के युग मे संस्कृतियो का पारस्परिक प्रभाव सारी दुनिया
छा जाता है। मार्क्स और एंगेल्स के अनुसार ठीक यही वह समय
जब "पुराने स्थानीय तथा राष्ट्रीय अकेलेपन व आत्मनिर्भरता के
न पर हर दिशा मे राष्ट्रो की अतर्क्रिया और सार्विक निर्भरता का
लेवाला हो जाता है .. अलग-अलग राष्ट्रो की बौद्धिक रचनाए सार्विक
त्ति बन जाती है।"*

हमारे जमाने मे यह विशेष स्पष्ट है कि जनगण की आत्मिक संस्कृति
तब ओजस्वी नही हो सकती, जब तक यह मनुष्यजाति की उप-
ब्धियो पर निर्भर नही होती। यही कारण है कि सर्वाधिक विविधतापूर्ण
तीय संस्कृतियो का ऐतिहासिक अनुभव प्रत्येक जनगण की आत्मिक
कृति मे गुथा हुआ है। बेशक, इसका यह अर्थ नही है कि जातीय
कृति विभिन्न जनगण की संस्कृतियो से उधार लिए हुए घटको का
संकलनवादी मिश्रण है। यह मुख्य रूप से एक विशेष जनगण के
न को प्रतिबिंबित करती है और जातीय परपराओ मे गहराई से
मूल है। साथ ही, प्रत्येक राष्ट्रीय संस्कृति अन्य जनगण की संस्कृति-
के साथ भी संबधित है, क्योकि प्रत्येक राष्ट्र अकेले ही अस्तित्व
ही होता, बल्कि लाखो जीवत सूत्रो द्वारा अन्य के साथ जुड़ा होता

राष्ट्रीय संस्कृतियो के पारस्परिक प्रभाव का विस्तार, इसका
र्ण स्थानीय प्रक्रिया से विश्व ऐतिहासिक प्रक्रिया मे परिवर्तन विश्व
ति के विकास का एक परमोच्च कारक है। इस घटना को राष्ट्रीय
तियो के मात्र एक आकिक जोड़ से सर्वथा भिन्न बनानेवाला कारक
ा पारस्परिक प्रभाव है।

परतु जैसा कि उपरोक्त से स्पष्ट है, विगत काल मे सांस्कृतिक
ो का विनिमय, पहले, उन दशाओ मे होता था जब अवाम संस्कृति
विलग थे और, दूसरे, यह वर्गीय तथा अन्य, कमोबेश, सकीर्ण
नेक रूपो मे हुआ करता था। इससे मनुष्यजाति के सांस्कृतिक
स मे न सिर्फ विस्वरता पैदा हुई, बल्कि इससे विभिन्न सामाजिक
ो मे तथा क्षेत्रीय संरचनाओ मे शत्रुतापूर्ण सबध भी पैदा हुए और

---

* कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' १८४८

जनगण के अन्यसक्रामण के हर रूप तथा सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रगति के मार्ग पर विभिन्न बाधाओं से मुक्त होते हैं।

अपने असमान आर्थिक और राजनीतिक विकास के नियम वाले पूजीवाद के विपरीत, समाजवादी जगत् की प्रगति नियोजित व सानुपातिक विकास पर आधारित होती है। इससे विशेष समाजवादी राज्यो मे अलग-अलग जातियो की अर्थव्यवस्था व सस्कृतियो के बीच ही नही, बल्कि समाजवादी समुदाय के देशो व जनगण की सस्कृतियो के बीच भी अनिवार्यत: अभिसरण की प्रवृत्ति पैदा होती है और एक ही सामान्य मानवीय, कम्युनिस्ट सस्कृति की रचनार्थ एक केंद्र के रूप मे सारे समाजवादी देशो मे सर्वनिष्ठ, एक सस्कृति की रचना का रुझान पैदा होता है। वर्गीय और जातीय विरोधो का उन्मूलन करके, मनुष्यजाति द्वारा सचित सास्कृतिक सपदा को समाज के हर सदस्य की पहुच मे लाकर, प्रत्येक व्यक्ति के लिए सस्कृति के स्वागीकरण की सभावनाए तथा इसकी रचना के लिए आवश्यक आधारो की रचना करके कम्युनिज्म विभिन्न लोगो तथा जातीय समूहो के बीच वास्तविक असमानता को मिटाता है और उनके सास्कृतिक स्तर को सचमुच ही एक दूसरे के निकट ले आता है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सास्कृतिक क्रातिया विश्व की क्रातिकारी प्रगति का एक महत्वपूर्ण पक्ष है और समाजवाद के निर्माण मे जुटे देशो का एक सर्वनिष्ठ गुण हैं। विभिन्न देशो की अपनी विशिष्टताएं कुछ भी क्यो न हो, वहा इन क्रातियो के खास तरीके तथा रूप कितने ही भिन्न क्यो न हों, इसकी मुख्य अतर्वस्तु सभी जनगण के लिए समान होती है।

सास्कृतिक क्रातियो के आम प्रकारो से खास तौर से यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यजाति के शताब्दियो पुराने सास्कृतिक विकास के दौरान सचित हर प्रगतिशील तत्व के आलोचनात्मक, रचनात्मक स्वागीकरण के बगैर और बुर्जुआ सस्कृति की प्रतिक्रियावादी विरासत के विरुद्ध अविचल सघर्ष के और पूजीवादी सस्कृति से कम्युनिस्ट सस्कृति मे क्रातिकारी सक्रमण असभव है।

समाजवादी समुदाय के देशो मे सास्कृतिक क्रातियो के विकास के समान लाक्षणिक गुण इस क्रातिकारी प्रक्रिया की आम अतर्वस्तु मे,

आने की यह प्रक्रिया अब एक वस्तुगत नियम बन गयी है।

इस ऐतिहासिक प्रवृत्ति की एक अत्यत सुस्पष्ट अभिव्यक्ति समस्त सामाजिक क्षेत्रो को समाविष्ट करनेवाली अतर्राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया पर आधारित बिरादराना जनगण की सस्कृतियो की पारस्परिक अभिवृद्धि है। समाजवादी राष्ट्रो के बिरादराना समुदाय मे अलग-अलग राष्ट्रो के आत्मिक जीवन के फल सबकी सामाजिक सपत्ति बन जाते हैं।

१९७६-१९८० की अवधि मे ५,००० से भी अधिक सोवियत व बुल्गारियाई अभिनेताओ ने पारस्परिक कला प्रदर्शन किये, दोनो देशो के ४१ थियेटरो, २४ सग्रहालयो, १२ कला अध्ययन मडलियो, ७ उच्च कला-शैक्षिक सस्थानो तथा ५ पुस्तकालयो के बीच सीधे सबध हैं।

हगरी मे रूसी और सोवियत लेखको की ८०-९० नयी पुस्तके हर वर्ष प्रकाशित हो रही हैं, सभी प्रमुख सोवियत उपन्यास तथा कहानिया हगरियाई भाषा मे अनूदित हो चुकी हैं। उसके प्रत्युत्तर मे सोवियत सघ मे १५० हगरियाई लेखको की ६०० पुस्तके प्रकाशित की गयी और उनकी कुल तीन करोड प्रतिया छापी गयी। शान्दोर पेतेफ़ी की रचनाए सोवियत जनगण की भाषाओ मे ५० बार प्रकाशित हुई और उनकी कुल १५,००,००० प्रतिया छापी गयी।

१९८१ मे जर्मन जनवादी गणतत्र के वाइमार नगर मे मास्को सोव्रेमेन्निक थियेटर की प्रधान प्रोड्यूसर गलीना वोल्चेक ने चेख़ोव की कृति 'चेरी की बगिया' का निर्देशन किया।

निम्नाकित पुस्तके प्रकाशित हुईं प्रमुख सोवियत-बुल्गारियाई अध्ययन 'प्रतिबिबन का लेनिनीय सिद्धात और आधुनिक विज्ञान' तीन खडो मे, सोवियत-चेकोस्लोवाकी रचना 'मनुष्य, विज्ञान, टेक्नोलाजी' और सात समाजवादी देशो – बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, जर्मन जनवादी गणतत्र, हगरी, मगोलिया, पोलैड तथा सोवियत सघ – के लेखको द्वारा लिखित पुस्तक 'समाजवादी समाज के विकास की द्वद्वात्मकता'।

अखबारो मे ऐसे अनेक तथ्य लगातार प्रकाशित होते रहते हैं और उन्हे अनतकाल तक लगातार प्रस्तुत किया जा सकता है।

कला के माहिरो का सयुक्त कार्य अधिकाधिक बडे पैमाने पर किया जा रहा है। इनमे फिल्मो की शूटिंग, सयुक्त प्रकाशनो की तैयारी तथा अतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियो का आयोजन शामिल हैं। रेडियो और टेलीविजन कार्यक्रमो का विनिमय, इटरविजन प्रणाली मे सहयोग, अतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओ, आदि की सयुक्त तैयारियो का काम बढ रहा है। समाजवादी देशो के सास्कृतिक सस्थानो के बीच सीधे सपर्क सुदृढ हो रहे है।

सोवियत सघ समाजवादी समुदाय के देशो के वास्ते हजारो युवा विशेषज्ञो को प्रशिक्षण प्रदान करता है और सोवियत विद्यार्थियो, प्रशिक्षार्थियो तथा स्नातकोत्तर छात्रो की लगातार बढती हुई सख्या को इन देशो द्वारा प्रशिक्षित किया जा रहा है। विशेषज्ञो का विनिमय व्यापक पैमाने पर हो रहा है।

समाजवादी देशो की विज्ञान अकादमिया तथा अनुसधान सस्थान कई प्रमुख समस्याओ पर तालमेल के साथ काम करते है और विज्ञान व टेक्नोलाजी की कई समस्याओ को मिलकर हल कर रहे हैं। अकेले १९८१ मे ही समाजवादी समुदाय के देशो के वैज्ञानिको तथा डिजाइनरो ने मिलजुलकर १,५०० किस्म के नये यत्रो और यात्रिक विधियो, १,३०० से अधिक किस्म की नयी सामग्री, उत्पादो व पदार्थों की रचना की। इसी साल १,२०० तकनीकी प्रक्रियाओ के डिजाइन बने तथा उन्हें सुधारा गया और पर्यावरण की रक्षा पर ७५० विषयवस्तुओ से सबधित अनुसधान कार्य पूरा किया गया। जल विद्युत स्टेशनो को सुधारने तथा उन्हें उपयोग मे लाने और परमाणु बिजलीघरो की विद्युत-उत्पादन क्षमताओ को बढाने मे उल्लेखनीय योगदान किया गया। विशाल ताप बिजलीघरो तथा द्रुत न्यूट्रोन रिएक्टरो के निर्माण पर सयुक्त कार्य जारी रहा।

इटरकोस्मोस कार्यक्रम के अतर्गत सयुक्त अतरिक्ष अन्वेषण योजना का अनवरत कार्यान्वयन विज्ञान व टेक्नोलाजी मे समाजवादी देशो के सहयोग का एक और विशद उदाहरण है। सोवियत सघ के अतरिक्षना-विको के साथ बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, पोलैड, जर्मन जनवादी गणतत्र, हगरी, क्यूबा, मगोलिया, रूमानिया और वियतनाम के अतरिक्षनाविको की सयुक्त उडानो के बाद अब समाजवादी राष्ट्रो

समाजवादी समुदाय के राष्ट्रों ने सांस्कृतिक सहयोग का अनमोल अनुभव संचित कर लिया है और रूपों की विविधता तथा बढ़ती हुई कुशलता इस अनुभव की विशेषता है। कला तथा विज्ञान के कर्मियों की बैठकें, सर्वोत्तम प्रदर्शन करनेवाली कला-मंडलियों का विनिमय आदि नियमित हो गये हैं। इसके अलावा समान स्मृति-दिवसों तथा राष्ट्रीय घटनाओं को मनाने के लिए विशेष दिवस समारोह, विशेष विषयों की प्रदर्शनियां भी आम हैं, जो अपनी प्रभावकारिता तथा व्यापकता के कारण ऐसे पूर्ण कार्यों में परिणत हो जाती हैं जिनका समाजवादी समुदाय के राष्ट्रों के आत्मिक जीवन में बहुत प्रभाव पड़ता है और वे बिरादराना जनगण की संस्कृतियों को एक दूसरे के निकटतर लाने में सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

हाल के वर्षों में समाजवादी देशों के संस्कृति मंत्रियों की मुलाकातें पारंपरिक बन गयी हैं। इन मुलाकातों के दौरान मंत्रीगण एक दूसरे को उपलब्ध सफलताओं से अवगत कराते हैं तथा सांस्कृतिक विकास की फौरी समस्याओं पर विचार-विनिमय करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी जीवन का व्यवहार यह दर्शाता है कि ऐसी मुलाकातें प्राप्त अनुभव के सामान्यीकरण, क्रियाकलाप के पूर्वपरीक्षित रूपों के दृढ़ीकरण और हर प्रकार के सांस्कृतिक संपर्कों और विनिमयों को और अधिक सुधारने के लिए अधिकाधिक कारगर बनती जा रही हैं।

हाल ही में, समाजवादी देशों की व्यावसायिक यूनियनों की अंतर्क्रिया भी बहुत गहन हो गयी है। मसलन, लेखक संगठनों के सहयोग में उनके नेताओं, साहित्यिक पत्रिकाओं और अखबारों के प्रधान संपादकों की बैठकें, अनुवादकों के मिश्रित आयोगों के काम तथा साहित्यिक प्रक्रिया के महत्वपूर्ण मामलों पर विचार-विमर्श इस अंतर्क्रिया में शामिल हैं।

इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि ये सांस्कृतिक संपर्क और विनिमय अब दीर्घकालिक समझौतों के आधार पर विकसित हो रहे हैं। कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की हाल की कांग्रेसों के निर्णयों के अनुपालन में १९८१-१९८५ की अवधि के लिए स्वीकृत सांस्कृतिक सहयोग की योजनाएं तथा संपन्न समझौते इस विस्तार कार्य में विशेष योगदान कर रहे हैं।

कला के माहिरो का सयुक्त कार्य अधिकाधिक बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इनमे फिल्मो की शूटिंग, सयुक्त प्रकाशनो की तैयारी तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियो का आयोजन शामिल है। रेडियो और टेलीविजन कार्यक्रमो का विनिमय, इटरविजन प्रणाली मे सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओ, आदि की सयुक्त तैयारियो का काम बढ रहा है। समाजवादी देशो के सास्कृतिक सस्थानो के बीच सीधे सपर्क शुरू हो रहे है।

सोवियत सघ समाजवादी समुदाय के देशो के वास्ते हजारो युवा विशेषज्ञो को प्रशिक्षण प्रदान करता है और सोवियत विद्यार्थियो, प्रशिक्षार्थियो तथा स्नातकोत्तर छात्रो की लगातार बढती हुई सख्या को इन देशो द्वारा प्रशिक्षित किया जा रहा है। विशेषज्ञो का विनिमय व्यापक पैमाने पर हो रहा है।

समाजवादी देशो की विज्ञान अकादमिया तथा अनुसधान सस्थान कई प्रमुख समस्याओ पर तालमेल के साथ काम करते है और विज्ञान व टेक्नोलाजी की कई समस्याओ को मिलकर हल कर रहे है। अकेले १९८१ मे ही समाजवादी समुदाय के देशो के वैज्ञानिको तथा डिजाइनरो ने मिलजुलकर १,५०० किस्म के नये यत्रो और यात्रिक विधियो, १,३०० से अधिक किस्म की नयी सामग्री, उत्पादो व पदार्थो की रचना की। इसी साल १,२०० तकनीकी प्रक्रियाओ के डिजाइन बने तथा उन्हे सुधारा गया और पर्यावरण की रक्षा पर ७५० विषयवस्तुओ से सबधित अनुसधान कार्य पूरा किया गया। जल विद्युत स्टेशनो को सुधारने तथा उन्हे उपयोग मे लाने और परमाणु बिजलीघरो की विद्युत-उत्पादन क्षमताओ को बढाने मे उल्लेखनीय योगदान किया गया। विशाल ताप बिजलीघरो तथा द्रुत न्यूट्रोन रिएक्टरो के निर्माण पर सयुक्त कार्य जारी रहा।

इटरकोस्मोस कार्यक्रम के अतर्गत सयुक्त अतरिक्ष अन्वेषण योजना का अनवरत कार्यान्वयन विज्ञान व टेक्नोलाजी मे समाजवादी देशो के सहयोग का एक और विशद उदाहरण है। सोवियत सघ के अतरिक्षना-विको के साथ बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, पोलैड, जर्मन जनवादी गणतत्र, हगरी, क्यूबा, मगोलिया, रूमानिया और वियतनाम के अतरिक्षनाविको की सयुक्त उडानो के बाद अब समाजवादी राष्ट्रो

की प्रभावशाली सफलताओं को सारी दुनिया देख चुकी है। ससार में शातिपूर्ण उद्देश्यों की खातिर अतरिक्ष अनुसधान के वास्ते अतर्राष्ट्रीय कर्मीदलों का गठन व प्रशिक्षण प्रारभ करनेवाले ससार के पहले देश ये ही थे।

समाजवादी समुदाय के देशों की सस्कृतियों के दृढीकरण की प्रक्रियाए मनुष्यजाति की सस्कृति के विकास मे गुणात्मक दृष्टि से एक नयी अवस्था की द्योतक हैं। आज भावी कम्युनिस्ट सस्कृति के गुण व परपराए एक नहीं, अनेक देशों मे बन रही हैं।

इस क्रियाकलाप का मुख्य परिणाम समाजवादी देशो की राष्ट्रीय सस्कृतियो की अनवरत पारस्परिक अभिवृद्धि है। मिसाल के लिए, सास्कृतिक सबधो के हगरियाई सस्थान के अध्यक्ष रुडोल्फ रोनाई लिखते हैं: "अविवादास्पद रूप से कहा जा सकता है कि पुश्किन व लेव तोलस्तोय, ख़्रीस्तो बोतेव तथा आन्ना ज़ेगेर्स की कृतिया हमारी सस्कृति का अभिन्न अग बन गयी हैं।"

इस प्रकार पारस्परिक सास्कृतिक सबधो तथा प्रभावो के एक ऐसे नये पक्ष का आविर्भाव हो गया है जो इतिहास को ज्ञात नहीं था। यह उन राष्ट्रो के सबधो का लाक्षणिक गुण है जिन्होंने समाजवादी रास्ता अपनाया है।

समान विश्व दृष्टिकोण तथा वैचारिक-राजनीतिक व सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र मे सहमति के आधार पर प्रगतिमान समाजवादी समुदाय के देशो की सस्कृतियो का यह पारस्परिक प्रभाव ऐतिहासिक दृष्टि से उच्चतर सामाजिक अवस्था पर अतर्राष्ट्रीय सर्वहारा सस्कृति का एक सगत विकास है। विशेष महत्व का तथ्य यह है कि समाजवादी देशो की सस्कृतियो का अतर्राष्ट्रीयकरण राष्ट्रीय सस्कृतियो की सफलताओं तथा उनके फलने-फूलने की क्रिया से अविभाज्य भी है। यह विरोधी अतर्विरोधो तथा टकरावो से, किसी एक राष्ट्रीय सस्कृति द्वारा दूसरे की सस्कृति पर किसी भी तरह की हिसा व ज़ोर-ज़बरदस्ती से मुक्त है, जो पूजीवादी समाज मे सस्कृतियो के अतर्राष्ट्रीयकरण की लाक्षणिकता होती हैं।

इस तरह, समाजवादी समुदाय के देशों की नयी परिस्थितियों मे सस्कृति एक नितात नये तरीके से विकसित हो रही है। इस समुदाय

की आत्मिक क्षमता की निरतर वृद्धि बहुत विस्तृत और सामजस्यपूर्ण विविधता पर आधारित है। और समाजवादी देशो के बीच आर्थिक और राजनीतिक सबध जितने दृढतर होते है, उतनी ही व्यापकता से और उचित समय पर प्राप्त अनुभव का उपयोग होता है और समाजवादी देशो की सस्कृतियो के बीच बिरादराना सबध उतने ही बहुमुखी होते जाते हैं, समाजवाद के रास्ते पर चलनेवाले देशो का विकास स्तर जितनी तीव्रता से बढता है, उतनी ही तेजी से उनकी सस्कृतियो को कम्युनिस्ट सस्कृति मे विकसित करने के आधारो की रचना होती है।

बेशक, सारी मानवजाति के लिए एक अविभक्त सस्कृति की रचना एक लबी और अतर्विरोधी प्रक्रिया है जो एक देश मे समाजवादी क्राति की विजय के बाद से ही शुरू हुई, परतु जो उस देश मे तथा कई अन्य देशो मे तक समाजवादी सस्कृति की स्थापना होने के बाद भी, किसी हालत मे, समाप्त नही होती है।

यह प्रक्रिया घनिष्ठता से अतर्ग्रथित अवस्थाओ की एक शृखला से बनी होती है, इनमे से प्रत्येक अवस्था दूसरी से विकसित हो रही है। आज इसका स्थूल अनुमान लगाना भी असभव है कि समाज के आत्मिक जीवन मे यह क्राति कब तक जारी रहेगी या इसे किन अवस्थाओ से होकर गुजरना पडेगा। परतु समाजवादी सस्कृति के विकास के सामाजिक ऐतिहासिक व्यवहार का सामान्यीकरण करते हुए निम्नाकित बाते निश्चित रूप मे कही जा सकती है

पहली, विकास की आम प्रवृत्ति सामान्य मानव सस्कृति मे विश्व सस्कृति के क्रातिकारी रूपातरण मे निहित है। दूसरी इस वस्तुगत नियम के कार्यान्वयन की पहली दो अवस्थाओं को स्पष्टत देखा जा सकता है (१) एक देश मे सास्कृतिक क्राति की विजय (२) समाजवादी समुदाय के देशो मे सास्कृतिक क्राति की विजय।

जाहिर है कि इस समस्या को न तो पहली अवस्था मे हल किया जा सकता है, न दूसरी मे, क्योकि (क) वे लोगो के एक समूह तक सीमित है, जबकि अन्य जनगण समाजवादी सास्कृतिक रूपातरण के क्षेत्र से बाहर रहते है; (ख) समाजवाद के अतर्गत अलग-अलग समाजवादी राज्यो मे स्थानीय, सपबद्ध विभाजन अभी भी शेष रहते है, (ग) स्वाधीन राष्ट्रो की एक प्रणाली के रूप मे विश्व समाजवादी

दूसरे पर निश्चित प्रभाव भी डालती है।

इन दो संस्कृतियो की इस अतर्क्रिया का सार क्या है? इसकी द्वद्वात्मकता क्या है? इस अतर्क्रिया मे सास्कृतिक विरासत क्या भूमिका अदा करती है?

दो प्रणालियो की सस्कृतियो के बीच द्वद्वात्मक अतर्क्रिया के सार का विश्लेषण करने से पहले हमे कुछ शब्द "अतर्क्रिया" पद के बारे मे कहने चाहिए। हम अतर्क्रिया के सामान्यत स्वीकृत दार्शनिक अर्थ को लेकर चलते हैं कि यह घटनाओ के सबधन का वह सार्विक रूप है जो उनके पारस्परिक परिवर्तन मे विद्यमान होता है। इसके अलावा यह द्वद्वात्मक होता है, यानी अतर्विरोधी अतर्क्रिया। इस अर्थ मे दो खेमो की अतर्क्रिया के, दो अतर्विरोधी सामाजिक प्रणालियो के बारे मे यह ध्यान रखते हुए बाते करना अधिक समीचीन होगा कि सामाजिक विकास की मौजूदा अवस्था मे इन खेमो का सहअस्तित्व एक प्रकार के ऐसे वर्ग-सघर्ष के रूप मे सामने आता है, जिसके दौरान पूजीवाद और कम्युनिज्म की नियतियो का विश्वव्यापी पैमाने पर फैसला हो रहा है।

कम्युनिस्ट पार्टियो का अतिम लक्ष्य – वह लक्ष्य जिसे कम्युनिस्टो ने कभी नही छुपाया – उत्पादन के साधनो पर से निजी स्वामित्व के समस्त रूपो का और, इसके साथ ही साथ, इनसे उत्पन्न होनेवाले सामाजिक व जातीय असमानता के उन सबधो का भी उन्मूलन करना है जो दुनिया मे अतर्विरोधी सरचनाओं के सपूर्ण इतिहास मे प्रमुख रूप से प्रभावी रहे हैं। जो नयी सामाजिक सरचना पूजीवाद का स्थान लेने आ रही है और जिसकी स्थापना के लिए कम्युनिस्टों का जीवन समर्पित है, वह "उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व के एक रूप तथा समाज के समस्त सदस्यों की पूर्ण सामाजिक समानता वाली एक वर्गहीन सामाजिक प्रणाली है; इसके अतर्गत जनगण के सर्वतोमुखी विकास के साथ ही विज्ञान व टेक्नोलाजी की अनवरत प्रगति के द्वारा उत्पादक शक्तियों का विकास होता जायेगा; सहकारी सपदा के सारे स्रोत अधिक प्रचुरता से प्रवाहित होगे और महान सिद्धात 'प्रत्येक से उसकी योग्यतानुसार प्रत्येक को आवश्यकतानुसार' लागू कर दिया जायेगा। कम्युनिज्म स्वतत्र, सामाजिक रूप से सचेत मेहनतकशों का

एक अत्यत सुसंगठित समाज है जिसमें सार्वजनिक स्वशासन की स्थापना होगी, यह ऐसा समाज है जिसमें समाज की भलाई के लिए श्रम प्रत्येक की प्रमुख महत्वपूर्ण आवश्यकता, समस्त लोगों द्वारा मान्य जरूरत बन जायेगा और प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता जनगण के अधिकतम हित में लगायी जायेगी।"*

समाज की नयी, कम्युनिस्ट सरचना की इस परिभाषा से साफ जाहिर है कि कम्युनिज्म के अतर्गत वर्गों का अस्तित्व नहीं होगा, शहर व देहात के बीच सामाजिक-आर्थिक, सास्कृतिक तथा दैनिक जीवन की दशाओ के अतर गायब हो जायेगे तथा मानसिक और शारीरिक श्रम को जनता के उत्पादक कार्यकलाप में आगिक रूप से एकाकार कर दिया जायेगा, सारी सामाजिक अर्थव्यवस्था के नियोजित सगठन की उच्चतम अवस्था उपलब्ध हो जायेगी और श्रम-शक्ति के साधनो को समाज के सदस्यो की बढ़ती हुई जरूरतो को पूरा करने के लिए सर्वाधिक कारगर और विवेकपूर्ण ढग से इस्तेमाल मे लाया जायेगा। कम्युनिज्म के अतर्गत उत्पादन के साधनो तथा काम की दशाओ और वितरण के साथ सभी जनगण के बराबरी मे सबध होगे। फलत, समाज मे उनकी स्थिति समान होगी और वे सामाजिक मामलो के प्रबध मे सक्रिय सहभागी होगे। व्यक्ति और समाज के बीच सामाजिक व व्यक्तिगत हितो की एकता पर आधारित सामजस्यपूर्ण सबधो की स्थापना होगी। यह एक ऐसी प्रणाली होगी, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति की योग्यताए, प्रतिभाए और रचनात्मक क्षमताए फलेगी-फूलेगी और पूर्णत उद्घाटित होगी, या, दूसरे शब्दो मे, नयी कम्युनिस्ट सस्कृति विजयी होगी।

कम्युनिस्टो का लक्ष्य यही समाज है।

इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए किये जानेवाले कार्यों का सैद्धातिक आधार मार्क्सवाद-लेनिनवाद है और इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण अश वैज्ञानिक कम्युनिज्म का सिद्धात है। इसी कारण से मार्क्सवाद-लेनिनवाद समाजवादी सस्कृति का वैचारिक मूलाधार है, उसके विश्व दर्शन की बुनियाद और अन्तर्वस्तु है।

सोवियत कम्युनिस्ट सोवियत सघ मे सास्कृतिक विकास की सारी

---

* 'सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम', १९६१।

प्रक्रियाओ को कम्युनिस्ट रचनात्मकता के महान लक्ष्य के अधीनस्थ रखते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि समाजवाद कम्युनिस्ट सरचना की केवल पहली अवस्था भर है।

कम्युनिस्ट निर्माण के उद्देश्य की सेवा, कम्युनिज्म के निर्माण मे जुटे लोगो के रचनात्मक क्रियाकलाप मे सहायता ही वे मुख्य मागे हैं जो सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी सस्कृति के, खास तौर पर, साहित्य और कला के सामने पेश करती है "साहित्य और कला का ऊचा रास्ता जनगण के जीवन के साथ अपने सबधो के दृढीकरण से, समाजवादी वास्तविकता की समृद्धि तथा बहुमुखी गुणवत्ता के सच्चे तथा अत्यत कलात्मक वर्णन से, हर नये के और जो वस्तुत कम्युनिस्ट है उसके प्रेरित और सुस्पष्ट चित्रण से और उस सबके विरोपन से होता हुआ जाता है जो समाज की प्रगति को रोकते हैं।"*

इस सदर्भ मे आधुनिक साम्राज्यवादी पूजीपति वर्ग तथा उसके सिद्धातशास्त्रियो का लक्ष्य और सामान्य कूटयोजना बिल्कुल उल्टी है वे पूजीवादी जगत् मे विद्यमान सामाजिक व्यवस्था को हर सभव उपाय से और किसी भी कीमत पर बनाये रखने के लिए कटिबद्ध है।

तदनुसार, यदि मामले पर गहराई से विचार किया जाये तो आधुनिक जगत् का प्रश्न होगा या तो पूजीवाद या कम्युनिज्म। अत, निजी सपत्ति और मनुष्य के शोषण पर आधारित समाज के "ब्रेन ट्रस्ट" के सिद्धातकारो द्वारा मौजूदा अतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के मूलसार को छुपाने के वास्ते कोई भी पर्दा इस्तेमाल क्यो न किया जाये और सामाजिक प्रगति के खिलाफ सघर्ष को छुपाने के लिए किन्ही भी वैचारिक मठो का उपयोग क्यो न किया जाये, आगे चलकर, मौजूदा बुर्जुआ जगत् में, उसकी सस्कृति सहित, जो कुछ भी होता है वह सब उसके मूल उद्देश्य के अधीन होता है और उसका यह उद्देश्य है उस समाज की ओर मनुष्यजाति की प्रगति को रोकना जिसका आदर्श वाक्य स्वतत्रता, समानता, भ्रातृत्व, शाति, मैत्री और समस्त जनगण की खुशहाली है।

इस सिलसिले मे यह बात बरबस याद आ जाती है कि जब बुर्जुआ

---

* वही।

वर्ग उदीयमान था तब इसके सिद्धातकार सामतविरोधी क्रातियो के नेता थे और लोगो से आह्वान करते थे कि वे स्वतत्रता, समानता और भ्रातृत्व के लिए सघर्ष करे। लेकिन हुआ यह कि पश्चिम यूरोपीय देशो मे बुर्जुआ क्रातियो की जीत होते ही ये नारे भी गायब हो गये। स्वतत्रता की अपील वस्तुत: अन्य लोगों के श्रम का शोषण करने की स्वतत्रता साबित हुई और समानता करोडपति तथा बेरोजगार की सदेहास्पद "सभावनाओं की समानता" बन गयी तथा "भ्रातृत्व" का क्रातिकारी आदर्श प्रतियोगिताओं की लड़ाई मे धोखाधड़ी तथा प्रतिस्पर्द्धा के रूप मे साकार हुआ।

२०वी सदी मे – पूजीवाद (जो साम्राज्यवाद की अवस्था मे पहुच गया था) से नयी, कम्युनिस्ट सभ्यता मे रूपातरण के युग मे – बुर्जुआ विचारधारा मे तीव्र परिवर्तन हुआ और, तदनुसार, बुर्जुआ संस्कृति मे भी बदलाव हो गया। पूजीवादी समाज, जो अब जनवाद से मुह मोडकर तेजी से प्रतिक्रियावादी बनता जा रहा था, में होनेवाली असली प्रक्रियाओ के अनुरूप अनुक्रिया करते हुए बुर्जुआ सिद्धातकारों को जीवन और सास्कृतिक मूल्यो का एक सर्वाधिक निर्णायक पुनर्मूल्याकन करना पडा था। उन्होंने सामाजिक प्रगति के विचार का परित्याग कर दिया। पूजीवाद के सकट को मनुष्यजाति का सकट मानते हुए और बुर्जुआ सभ्यता के विघटन को सपूर्ण मानव सभ्यता का विघटन मानते हुए वे पूजीवाद के स्थायित्व को "सिद्ध" करने और उसकी बुनियाद को जहा तक सभव हो "सहारा" देने के लिए जीतोड कोशिश करते हैं।

बुर्जुआ संस्कृति का आज जो पतन हो रहा है उसका मुख्य कारण यही है। इस सस्कृति को कम्युनिस्ट-विरोधी विचारधारा से अधिकाधिक प्रभावित किया जा रहा है।

राजनीतिक विचारधारा के क्षेत्र मे इसके फलस्वरूप २०वी सदी मे फ़ासिज्म का और उससे सबधित नस्लवादी, भूराजनीतिक तथा नव-माल्थसवादी सकल्पनाओ और व्यवहारों का जन्म हुआ।

यह हम पहले ही बता चुके है कि साम्राज्यवाद के युग मे कला मे कैसे दुखद परिवर्तन हुए हैं।

दार्शनिक क्षेत्र मे यह भौतिकवाद व अनीश्वरवाद से प्रत्ययवाद व

रहस्यवाद की ओर, उपयोगितावादी और अतःप्रज्ञावादी खोज की ओर परिवर्तन है।

नैतिक क्षेत्र मे भयावह कायाकल्प हो रहे हैं। "हौलनाक दृश्यो-वाली" ढेरो फिल्मों को देखने, ढेरो "कॉमिको" तथा अश्लील साहित्य को पढने के बाद लोग, मुख्यत. युवजन, अपराध जगत् के खतरनाक शिकजे मे आसानी से फस जाते हैं। फलत, अपराधो की सख्या तेजी से बढती है, नशीली दवाओ का सेवन बेइतहा बढ जाता है और वेश्यागमन खूब फलता-फूलता है।

बेशक, पश्चिमी सभ्यता के इस कुरूपण के और, खास तौर से, इसकी बढती हुई अनैतिकता के कारणो को केवल सिनेमा, टेलीविजन, अश्लील साहित्य, आदि मे देखना और इन प्रक्रियाओ को जन-सचार साधनो को चलाने तथा ऐसे गदे धधे से अकूत मुनाफा कमानेवाले व्यापारियो की हरकतो मे ही खोजना निपट भोलापन होगा।

मार्क्सवादियों का विश्वास है कि पूजीवादी जगत् के सास्कृतिक पतन के कारण इससे कही अधिक गहराई मे निहित है।

मरणशील सामाजिक प्रणाली – और इतिहास मे ऐसा हमेशा होता रहा है – अपनी "स्वतत्र इच्छा" से कभी जाना नही चाहती। यही कारण है कि बुरी तरह से भयग्रस्त साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग किसी भी साधन से श्रमजीवी जनो को सचेत राजनीतिक क्रियाकलाप से हटाने, उनके विचारो को विषाक्त करने और उनकी भावनाओ को कुद करने के लिए प्रयत्नशील है।

और अगर एक कलाकार, लेखक, सिनेमा प्रोड्यूसर या सगीतकार इस तथ्य के प्रति जागरुक है तो भी इस स्थिति मे कोई बदलाव नही होता। वस्तुगत रूप से, अपनी इच्छा-अनिच्छा से निरपेक्ष होकर जो प्रोड्यूसर एक चालू अश्लील फिल्म बनाता है, वह एक निश्चित (और इससे भी अधिक, खूब लाभदायी) कार्य पूरा करता है।

अतः, आधुनिक बुर्जुआ सस्कृति के विरूपण और कई मामलो मे पतन का एक सुनिश्चित वर्गीय आधार है आज पूजीवादी समाज मे ऐसी सामाजिक शक्तिया हैं जिनके लिए प्रगतिशील सास्कृतिक विरासत का बहिष्कार करना, सस्कृति को दुर्बल बनाना और उसे जनता के खिलाफ इस्तेमाल करना लाभदायी धधा है।

पश्चिम में आत्मिक जीवन को जो गंभीर रोग लग गया है, उसका मुख्य और गहरा कारण यही है। इस रोग की बहुत लंबे समय से अवहेलना की गयी है और इस विकृति के अनगिनत स्थलांतरण हो रहे हैं जो उसे संस्कृति के जीवित शरीर में गहरे तथा और-और गहरे पैठाते जा रहे हैं और उसे जन्म दे रहे हैं जिसे हम अक्सर मिथ्या-संस्कृति कहते हैं, लेकिन उसे प्रतिसंस्कृति कहना अधिक युक्तियुक्त होगा।

आधुनिक विज्ञान की सारी उपलब्धियां, मुख्यतः जन-संचार साधन (जिन्हे इस मामले मे जन-सचार के मिथ्या-सूचना साधन कहना ज्यादा सही होगा) इसी प्रतिसंस्कृति की सेवा कर रहे हैं।

स्पष्ट है कि इस प्रतिसंस्कृति का, जो आज के बुर्जुआ समाज मे अधिकाधिक फैल रही है, सैद्धांतिक-राजनीतिक आधार, कुल मिलाकर, कम्युनिस्ट-विरोधी विचारधारा है जो बुर्जुआ वर्ग की नीति तथा कानून के हर क्षेत्र मे और कुछ हद तक हर प्रकार के आत्मिक क्रियाकलाप मे, जिसमे नीतिशास्त्र, कला, विज्ञान, दर्शन तथा शिक्षा भी शामिल है, परिव्याप्त हो जाती है।

चूंकि ये दो विश्व प्रणालियां महज सहअस्तित्व में नहीं हैं, बल्कि एक दूसरे से अंतर्क्रिया भी करती हैं, चूंकि पूंजीवाद और समाजवाद की नियतियां अंततः उनकी आर्थिक और राजनीतिक प्रतियोगिता से निर्धारित होंगी, अतः, ये प्रक्रियाएं दो विरोधी विचारधाराओं के – कम्युनिज्म और कम्युनिज्म-विरोध – संघर्ष के साथ घनिष्ठता से अंतर्ग्रथित हैं। यही कारण है कि कम्युनिस्ट-विरोधी विचारक भिन्न-भिन्न सामाजिक प्रणालियों वाले राज्यों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को कम्युनिज्म के विरुद्ध संघर्ष के लिए, विविध प्रकार की वैचारिक तोड़-फोड़ों के लिए, समाजवादी जगत् के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं और सांस्कृतिक संपर्कों तक को अपनी खुफिया एजेंसियों की कार्यवाहियों के लिए प्रयुक्त कर रहे हैं।

बुर्जुआ संस्कृति के विश्वव्यापी लक्ष्यों की साम्राज्यिक इस नीति को निश्चय ही पश्चिम के प्रभावी वर्गों के "ब्रेन ट्रस्टों" द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के कुछ ही समय बाद पचासोत्तरी व साठोत्तरी दशकों में शाब्दिक जामा पहनाया गया।

समसन, चार्ल्स टॉमसन और वाल्टर लेव्स की *Cultural Relations*

and U. S. Foreign Policy (१९६३) पुस्तक मे दावा किया जाता है कि "आज अन्तर्राष्ट्रीय मामलो को चलाने के लिए एक व्यावहारिक विधि के रूप मे युद्ध का महत्व घट जाने से राष्ट्रपारीय सास्कृतिक सबध ऐसे दो क्षेत्रो मे से एक बन गये है (दूसरा क्षेत्र आर्थिक सबधो का है–लेखक) जिनमे कम्युनिस्ट देशो के साथ आवश्यक शातिपूर्ण प्रतियोगिता चलायी जा सकती है।" इसलिए यह निष्कर्ष निकला कि इस राष्ट्रपारीय क्रियाकलाप को "अमरीकी विदेशनीति के मूलभूत लक्ष्यो की प्राप्ति की सभावनाओ के साथ जोडना जरूरी है।

टॉमसन और लेव्म आगे कहते हैं "कम्युनिस्ट देशो के साथ सबधो मे सास्कृतिक क्रियाकलाप की भूमिका का अनन्य महत्व है, क्योकि लौहपट को बेधने का लगभग एकमात्र व्यावहारिक साधन वे ही हैं। हम जितना ज्यादा ऐसा कर सकेगे, उतना अधिक सोवियत बल तथा दुर्बलताओ के बारे मे जान सकेगे और हमारे पास सोवियत चितन तथा सोवियत नीतियो मे यथार्थवादी तथा सयतकारी धाराओ को प्रविष्ट कराने के उतने ही अधिक अच्छे अवसर होगे।"

इस प्रकार समाजवादी देशो के प्रति अमरीका की "राष्ट्रपारीय" सास्कृतिक नीति को निरुपित करने के बाद इन लेखको ने यह आवश्यक समझा कि उन कार्यों पर विचार किया जाये जो, उनकी राय मे, सोवियत सघ के साथ सास्कृतिक सपर्कों को कायम करने मे अमरीकी सरकार को करने है। उन्होंने लिखा "सोवियत सघ के प्रति अमरीका की नीति के दो प्राथमिक उद्देश्य हैं। पहले तो, हम सोवियत नीति का सामना करने और उसके विनाशक पक्षो का प्रतिकार करने तथा जनवाद पर उनके हमलो के खिलाफ अपनी तथा स्वतत्र जगत् की प्रतिरक्षा को सुदृढ बनाने की कोशिश करते है। दूसरे हम सोवियत दर्शन तथा नीति मे ऐसे और अधिक फेरबदल करवाने की कोशिश करते है जिनसे उनके साथ सामजस्यपूर्ण सहयोग सभव हो सके।

"सास्कृतिक सबध इन दोनो उद्देश्यो मे योगदान करते है। वे आक्रमण के खिलाफ अधिक यथार्थवादी आधार प्रदान करते है और साथ ही सोवियत जनगण के साथ सीधे सपर्क बनाने मे सहायता करते हैं।"

यदि हम इस लफ्फाज़ी पर चढे हुए कच्चे मुलम्मे को खुरच फे

and U. S. Foreign Policy (१९६३) पुस्तक मे दावा किया जाता है कि "आज अन्तर्राष्ट्रीय मामलो को चलाने के लिए एक व्यावहारिक विधि के रूप मे युद्ध का महत्व घट जाने से राष्ट्रपारीय सास्कृतिक सबध ऐसे दो क्षेत्रो मे से एक बन गये हैं (दूसरा क्षेत्र आर्थिक सबधो का है – लेखक) जिनमे कम्युनिस्ट देशो के साथ आवश्यक शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता चलायी जा सकती है।" इसलिए यह निष्कर्ष निकला कि इस राष्ट्रपारीय क्रियाकलाप को "अमरीकी विदेशनीति के मूलभूत लक्ष्यों की प्राप्ति की सभावनाओ के साथ जोडना जरूरी है।"

टॉमसन और लेव्म आगे कहते हैं "कम्युनिस्ट देशो के साथ सबधो मे सास्कृतिक क्रियाकलाप की भूमिका का अनन्य महत्व है, क्योकि लौहपट को बेधने का लगभग एकमात्र व्यावहारिक साधन वे ही हैं। हम जितना ज्यादा ऐसा कर सकेंगे, उतना अधिक सोवियत बल तथा दुर्बलताओं के बारे मे जान सकेंगे और हमारे पास सोवियत चिंतन तथा सोवियत नीतियो मे यथार्थवादी तथा सयतकारी धाराओ को प्रविष्ट कराने के उतने ही अधिक अच्छे अवसर होंगे।"

इस प्रकार समाजवादी देशो के प्रति अमरीका की "राष्ट्रपारीय" सास्कृतिक नीति को निरूपित करने के बाद इन लेखको ने यह आवश्यक समझा कि उन कार्यों पर विचार किया जाये जो, उनकी राय मे, सोवियत सघ के साथ सास्कृतिक सपर्कों को कायम करने मे अमरीकी सरकार को करने हैं। उन्होंने लिखा "सोवियत सघ के प्रति अमरीका की नीति के दो प्राथमिक उद्देश्य है। पहले तो, हम सोवियत नीति का सामना करने और उसके विनाशक पक्षो का प्रतिकार करने तथा जनवाद पर उनके हमलो के खिलाफ अपनी तथा स्वतत्र जगत् की प्रतिरक्षा को सुदृढ बनाने की कोशिश करते है। दूसरे हम सोवियत दर्शन तथा नीति मे ऐसे और अधिक फेरबदल करवाने की कोशिश करते हैं जिनसे उनके साथ सामजस्यपूर्ण सहयोग सभव हो सके।

"सास्कृतिक सबध इन दोनो उद्देश्यो मे योगदान करते हैं। वे आक्रमण के खिलाफ अधिक यथार्थवादी आधार प्रदान करते हैं और साथ ही सोवियत जनगण के साथ सीधे सपर्क बनाने मे सहायता करते हैं।"

यदि हम इस लफ्फाज़ी पर चढे हुए कच्चे मुलम्मे को खुरच फेंके

तथा "लाल आक्रमण के खतरे" को, जो कथित रूप मे "जनवाद" तथा "स्वतत्र जगत्" पर मंडरा रहा है, अलग कर दे तो इन शब्दो का वास्तविक सार स्पष्ट हो जायेगा।

अपने सिद्धातीकरण के निष्कर्ष रूप में टॉमसन और लेव्स ने व्यावहारिक सिफारिशे पेश की हैं। उन्होंने अमरीकी सरकार को सुभाया कि वह

(१) सास्कृतिक सपर्कों के केद्रीय महत्व को मान्यता दे;

(२) सास्कृतिक सबधों को बनाये रखने के लिए सुदृढ सरकारी सगठन की स्थापना की जरूरत को मान्यता दे;

(३) इस दिशा के अनुरूप सरकारी और गैर-सरकारी सगठनो के साथ कारगर सबधो की स्थापना करे;

(४) इस बात को माने कि सास्कृतिक क्रियाकलाप का लक्ष्य एकतरफा कार्यवाही के बजाय अन्य देशो के साथ वास्तविक सहयोग होना चाहिए;

(५) एक कारगर सास्कृतिक संबंध कार्यक्रम की सुचिंतित योजना बनाये तथा लचीले ढग से उस पर अमल करे;

(६) यह मानकर चले कि सास्कृतिक संबध कार्यक्रम अमरीकी जनता के बीच समझबूझकर विश्व समुदाय की चेतना तथा उसके प्रति प्रतिबद्धता का निश्चय ही विकास करे;

(७) ऐसे नये सपर्कों के अनवरत अनुसधान तथा खोजबीन की आवश्यकता को मान्यता दे जो सास्कृतिक सबधों के अंतस्थल मे निहित होते है,

(८) इस कार्यक्रम को अविचल भाव से अधिकाधिक पैमाने पर लागू करे,

(९) यह पूर्वकल्पना करे कि कार्यक्रम अतर्वस्तु तथा व्यक्तियो दोनो ही मामलो मे प्रथम कोटि का हो।

इन सिफारिशो के अंतिम लक्ष्य को निरूपित करते हुए इन लेखकगण ने लिखा "इसलिए अमरीका के विदेश संबधो के सचालन मे सास्कृतिक सबधो का प्रमुख महत्व होना चाहिए। वे ... एक ऐसे विश्व समुदाय की रचना मे सहायता करते है जिसमे स्वतत्र सस्थाए जीवित रह ... है।" यहा पक्तियो को विकुचित किया गया है। अमरीकी प्रचार

की भाषा मे इसका अर्थ है : अमरीकी साम्राज्यवाद के तत्वावधान मे विश्व समुदाय तथा उसकी स्वतत्र सस्थाओ, यानी स्वतत्र उद्यम-सस्थानो, को बनाये रखना लक्ष्य है और सास्कृतिक सबध इसकी प्राप्ति के साधन हैं।

अमरीका मे इसी काल मे प्रकाशित एक अन्य पुस्तक है *The Idea of Invaders* ('हमलावरो का विचार'), इसके लेखक हैं जॉर्ज एन० गॉर्डन, इर्विंग फॉल्क तथा विलियम होडुप। इसमे तथा उपरोक्त पुस्तक में कुछ समानताए हैं। टॉमसन और लेव्स की ही तरह इसके लेखकगण भी कम्युनिस्ट-विरोधी रुख अपनाते है, लेकिन पहले के लेखको के विपरीत उनमे आशावाद की बहुत कमी है। वे साफ-साफ लिखते है कि अमरीकी प्रचार मे एक ऐसे सकारात्मक आदर्श का, एक "राष्ट्रीय लक्ष्य" का अभाव है, जिसे जनसाधरण का समर्थन मिल सके। अमरीकी जीवन पद्धति के बारे मे विभिन्न देशो के सास्कृतिक क्षेत्र के व्यक्तित्वो के निदात्मक बयानो का हवाला देते हुए गॉर्डन, फॉल्क और होडुप सास्कृतिक सबधो के विस्तार मे एक और पक्ष देखते हैं: "यदि आज हमारे बारे मे बुरे विचार रखनेवाले लाखो लाख विदेशियो की निगाहो के सामने अमरीका की 'छवि' सुधारनी है तो हमारे लिए लाज़िमी है कि हम, एक राष्ट्र के रूप मे, इन लाखो लाख लोगों के रवैये पर ध्यान दे और उनकी बातो को सहानुभूतिपूर्वक सुने।

"सयुक्त राज्य अमरीका को एक 'अमरीकी कान' की जरूरत है–एक सरकारी या निजी एजेसी जो, यदि ससाधनो के मामले मे नही तो, कम से कम, काम के उत्साह तथा कार्यवाही के विस्तार मे उन प्रयत्नो के समकक्ष हो जो अमरीका की मौजूदा आवाज़े पेश कर रही हैं। उसका लक्ष्य विदेशो से उस सबका आयात करना होगा जो विदेशी सस्कृति, शिक्षा और राजनीतिक जीवन मे उपयोगी हो "

यह पुस्तक, जैसा कि इसके लेखको का कहना है, "हमारी सारी वर्तमान सभ्यता को बचाने से सबधित है।" जाहिर है कि वर्तमान सभ्यता से उनका तात्पर्य बुर्जुआ सभ्यता से है और वे, जिनके का सहारा लेते हुए, सास्कृतिक सबधो के विस्तार मे "बचाव" की एक सभावना देखते है।

आज के साम्राज्यवादी विभाग ठीक इसी दिशा में काम कर रहे हैं। वे न सिर्फ विभिन्न "आवाजों" (वॉयस ऑफ़ अमेरिका, फ्रीडम और फ्री यूरोप रेडियो आदि), प्रकाशन गृहों और सिने-कारखानों (जिनके उत्पादों को अमरीका की केंद्रीय गुप्तचर एजेंसी तथा अन्य ऐसी ही विशेष सेवाओं के जरिये सोवियत संघ व अन्य समाजवादी देशों को चोरी से भेजा जाता है) का ही इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं, बल्कि कुछ संस्कृति कर्मियों – लेखकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, आदि, जिनमें तथाकथित "भिन्न मतावलंबी" भी शामिल हैं – को भी प्रयुक्त कर रहे हैं। इस कार्यवाही, जो आजकल बहुत बढ़ गयी है और जिसे विदेशों से सघन वित्तीय मदद मिल रही है, का उद्देश्य समाजवाद के आधारों के खिलाफ भीतरघात करना, पूंजीवाद की प्रतिष्ठा बढ़ाना और समाजवादी जीवन पद्धति के सिद्धांत व व्यवहार को किसी भी कीमत पर अवमानित करना है।

बेशक, सभी और, मुख्यत, समाजवादी देशो के कम्युनिस्टो को समाजवादी व्यवस्था, उसके सिद्धातो, विचारधारा तथा नैतिकता के विरुद्ध इन भीतरघाती हरकतो पर हमेशा नज़र रखनी चाहिए। साम्राज्यवादी प्रचार का विराट सगठन राजनीति से जनसाधारण का ध्यान हटाने के लिए व्यक्तित्व को भ्रष्ट कर देता है।

यह नितात स्पष्ट है कि दुनिया मे इस वक्त जो समझौताहीन वर्ग-सघर्ष जारी है, उसमे विचारधाराओ का शातिपूर्ण सहअस्तित्व और, तदनुसार, समाजवादी और बुर्जुआ सास्कृतियो का "शातिपूर्ण सश्लेषण" नही हो सकता है, क्योकि उनके वैचारिक सार और सामाजिक कार्य दो विपरीत ध्रुवो पर हैं। यही कारण है कि सोवियत कम्युनिस्टो तथा अन्य बिरादराना पार्टियो के सदस्यो ने आधुनिक समाज मे "सस्कृति को विचारधारा से विलग करने" के आह्वानो की तीव्र आलोचना की है।

लेनिन ने सिखाया है कि वर्ग-विरोधो से ग्रस्त किसी भी समाज मे वर्गेतर विचारधारा तथा, उसके फलस्वरूप, कोई वर्गेतर सस्कृति न तो है, न हो सकती है। "**एकमात्र विकल्प** – बुर्जुआ या समाजवादी विचारधारा है," उन्होने लिखा। "कोई मध्यमार्ग नही है... इसलिए समाजवादी विचारधारा के महत्व को किसी भी तरह से कम करने,

इससे रत्तमात्र भी विचलित होने का अर्थ है बुर्जुआ विचारधारा को मजबूत बनाना।"* आज–दो विरोधी प्रणालियों के संघर्ष के युग मे–उनके ये शब्द पहले किसी भी समय से अधिक संगत हो गये हैं वे कम्युनिस्ट-विरोधियों तथा दक्षिणपथी संशोधनवादियों द्वारा प्रस्तुत तथा संस्कृति के वर्गीय चरित्र के सिद्धांत के खिलाफ लक्षित विभिन्न संकल्पनाओं का पर्दाफाश करने के लिए विशेष महत्व के हो गये है

इस संदर्भ में "संस्कृति को विचारधारा से विलग करने" के आह्वान पर विशेष विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है। यह सिद्धांत राजनीतिक तथा आत्मिक संस्कृतियों के संपर्क के निषेध पर, उनकी अवियोज्यता के निषेध पर आधारित है।

एक आस्ट्रियाई दक्षिणपंथी संशोधनवादी तथा "संस्कृति को विचारधारा से विलग करने" के सिद्धांत के उत्साही समर्थक एर्नेस्ट फिशर ने अपने समय में दावा की कि विचारधारा "वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण नहीं, बल्कि विश्व का मिथ्या ज्ञान है।" उन्होंने एलान किया कि इसमे वस्तुगत सत्य का एक कण भी नहीं है, यह दुनिया को महज ऐसे तरीके से पेश करने का प्रयास करती जैसे कि "सत्तासीन" लोग इसे देखना चाहते हैं। इस स्थिति से बोलते हुए उन्होंने विचारधारा के भवन से बाहर खुले में आने तथा मार्क्सवादी और बुर्जुआ सांस्कृतिक कर्मियों के बीच वैचारिक बाधाओं से मुक्त सहयोग की स्थापना का आह्वान किया।

कुछ अन्य संशोधनवादी (आर० गरौदी, एम० मार्कोविच, एम० मूथा, आदि) भी इसी स्थिति से बाते करते हैं। विचारधारा को कुछ सामाजिक समूहों द्वारा विरूपित वास्तविकता के चित्रण के रूप में पेश करते हुए वे पहले बुर्जुआ विचारधारा को (जो दुनिया की तस्वीर को शोषक वर्गों के अनुरूप बनाने के लिए सचमुच विरूपित करती है) और फिर समाजवादी वैज्ञानिक विचारधारा को इसी रूप में देखते है

इसके ये वक्तव्य "विचारधारा के अंत" की कम्युनिस्ट-विरोधी घोषणाओं को दोहराते है। इस संकल्पना के एक प्रतिपादक डेनिएल बेल अपने इस दावे में बेलाग कहते है कि "विचारधारा के अंत"

---

* व्ला० इ० लेनिन 'क्या करें', १९०२।

उनका तात्पर्य "मार्क्सवादी विचारधारा के अंत" से है, जबकि उनके शिष्य, घोर कम्युनिस्ट-विरोधी इर्विंग क्रिस्टोल उनकी बात का "विस्तारण" करते हुए कहते हैं कि "विचारधारा के अंत" से श्री बेल का तात्पर्य, सर्वोपरि रूप से, समाजवादी आदर्श का पतन प्रतीत होता है।

दूसरे, "संस्कृति को विचारधारा से विलग करने" के सिद्धांत द्वारा दक्षिणपंथी संशोधनवादी अंततः समाजवादी और बुर्जुआ संस्कृतियों के "शांतिपूर्ण संश्लेषण" का आग्रह करते हुए खुले कम्युनिस्ट-विरोधियों से जा मिलते हैं।*

इस मामले पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी रवैया नितांत स्पष्ट है : विरोधी सामाजिक प्रणालियों का शांतिपूर्ण सहअस्तित्व विचारधाराओं के बीच संघर्ष तक नहीं पहुंचता है। इसके विपरीत, पूंजीवाद के साथ अपनी प्रतियोगिता में समाजवाद की आर्थिक व राजनीतिक सफलताएं जितनी ज्यादा होती हैं, वैचारिक संघर्ष उतना ही तीव्र और दुस्साध्य होता जाता है। जहां मार्क्सवाद-लेनिनवाद समाजवादी संस्कृति का सैद्धांतिक आधार है, उसकी अंतर्वस्तु है और कम्युनिस्ट-विरोध साम्राज्यवादी बुर्जुआ संस्कृति का "वैचारिक केंद्रक" है, वहां ऐसी दो संस्कृतियों का कोई भी "शांतिपूर्ण संश्लेषण", "एकीकरण" नहीं हो सकता है।

संस्कृति को राजनीति के बाहर घोषित करने तथा, इस तरह, समाजवादी व बुर्जुआ संस्कृतियों के बीच "मेल कराने" और समाजवादी संस्कृति की क्रांतिकारी अंतर्वस्तु को कमजोर बनाने एवं आज की बुर्जुआ संस्कृति में प्रचलित प्रतिक्रियावादी विचारों से उसका गला घोंटने का प्रयत्न करनेवालों का विरोध करते हुए मार्क्सवादी-लेनिनवादी इन दो संस्कृतियों के संबंधों को केवल वैचारिक संघर्ष तक ही सीमित नहीं करते हैं।

---

* और दिलचस्प [illegible] कुछ बुर्जुआ समाजशास्त्रियों को (आर० [illegible] ए० [illegible] तथा अन्य) [illegible] वैचारिक संघर्ष में सक्रिय रूप से हाथ बंटाते हैं। [illegible] के [illegible] करने के साथ ही [illegible] कि "संस्कृति की विचारधारा [illegible] सकती है। [illegible] के समाजवादी संस्कृति के खिलाफ अपने संघर्ष [illegible] संस्कृति व वैचारिक [illegible] के [illegible] रूप से [illegible] हैं।

इससे पहले, सातत्य के "विषमस्तरीय पक्षो" का और, खास तौर से, सास्कृतिक विरासत की समस्या के लेनिन के समाधान का विश्लेषण करते समय हमने जोर देते हुए कहा था कि उन्होने उसमे मनुष्यजाति के लिए सर्वनिष्ठ तथा प्रभावी वर्गों की विचारधारा द्वारा उसमे समाविष्ट तत्वो के बीच सुस्पष्ट भेद करने की माग की थी। विज्ञान मे इसका अर्थ था पदार्थ की इस या उस गति के रूपो के लिए लाक्षणिक नियमो के ज्ञान का उपयोग और प्रत्ययवाद तथा अधिभूतवाद की भावना मे किये गये अवैज्ञानिक सामान्यीकरणो को उससे पृथक करना। यही वजह थी कि लेनिन ने सोवियत वैज्ञानिको से द्वद्वात्मक भौतिकवाद की स्थिति को अपनाने और यह समझने के लिए कहा कि "बुर्जुआ विचारो के प्रचड अभियान के, बुर्जुआ विश्व दृष्टिकोण की पुनःस्थापना के खिलाफ सघर्ष मे कोई भी प्राकृतिक विज्ञान और भौतिकवाद (यहा विगत काल के प्रकृतिवादियो के लाक्षणिक "स्वतःस्फूर्त भौतिकवाद" से तात्पर्य है – ले०) तब तक खडा नही हो सकता, जब तक कि वह ठोस दार्शनिक आधार पर टिका न हो।" *

परतु सोवियत वैज्ञानिको और दार्शनिको से आधुनिक प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ दर्शन तथा समाजविज्ञान के खिलाफ लडाई चलाने ** का आग्रह करने के साथ ही लेनिन ने यह भी लिखा कि "विगत काल के (तथा वर्तमान काल के) उन बुर्जुआ दार्शनिको के साथ सश्रय बनाने मे करने*** की कोई जरूरत नही है जो कुछ हद तक कम्युनिस्टो के मित्र हो सकते है, मसलन, धर्म के विरुद्ध सघर्ष मे। १६२२ मे लिखे अपने लेख 'जुझारू भौतिकवाद का महत्व' मे लेनिन ने एगेल्स का उन्होने लोगो के बीच सामूहिक वितरण के लिए १८वी सदी के अतिम वर्षों के जुझारू अनीश्वरवादी साहित्य का अनुवाद करने का सुझाव दिया था, हवाला दिया और लिखा "हमने अभी तक ऐसा नही किया है, यह हमारे लिए शर्म की बात है। **** उसी लेख मे उन्होने सोवियत

दार्शनिकों को "हेगेलवादी द्वंद्ववाद के मित्र"* बनने की सलाह दी है तथा "प्रमुख रूप से प्रभावी धार्मिक पुराणपंथियों के खिलाफ संघर्ष" के लिए ड्रेव्सवादियों के साथ एक 'संश्रय' बनाने का आह्वान किया था।**

लेनिन ने ऐसी ही द्वंद्वात्मकता से गुजरे हुए जमाने की कला के प्रति रुख के बारे में भी प्रश्न पेश किया है; जनता के बीच समाजवादी चेतना जगानेवाली नयी, क्रांतिकारी कला के अंकुरों का हार्दिक स्वागत करने के साथ ही उन्होंने यह मांग की कि अतीत काल के कलाकारों की सारी सर्वोत्तम कृतियां जनता की संपत्ति बनें। उन्होंने सोवियत कलाकर्मियों से कहा कि वे विश्व की यथार्थवादी कला की परंपराओं पर भरोसा करें।

विगत काल की कलात्मक विरासत के संबंध में लेनिन द्वारा निरूपित इन आधारभूत सिद्धांतों का सीधा सिलसिला समसामयिक बुर्जुआ समाज की सांस्कृतिक उपलब्धियों को आत्मसात करने का उनका सिद्धांत है।

अपने अनेकानेक भाषणों में लेनिन ने "बड़े पैमाने के पूंजीवाद की बनायी हुई इंजीनियरी तथा संस्कृति की उपलब्धियों"*** को अधिकतम संभव सीमा तक इस्तेमाल करने की जरूरत पर जोर दिया और मांग की कि "पूंजीवाद द्वारा छोड़ी हुई सारी संस्कृति को"**** ग्रहण किया जाये, आदि।

लेनिन के प्रारंभ ही से उपरोक्त नियमों को लागू कर दिया।

इस प्रकार, विदेशों की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के गहरे अध्ययन तथा सोवियत रूस में विश्व अनुभव के उपयोग पर बल देते हुए लेनिन ने लगातार यह मांग की कि वैज्ञानिकगण विज्ञान व टेक्नोलाजी में उन्नत विदेशी अनुभव पर अधिक ध्यान दें और समाजवाद के निर्माणार्थ

---

* वही।

** वही। आर्थर ड्रेव्स (१८६५-१९३५) – जर्मन दार्शनिक जो धर्मशास्त्र में पौराणिक विचार-पद्धति के अनुयायी थे।

*** व्ला० इ० लेनिन, '"वामपंथी" बचकानापन और निम्न-पूंजीवादी मनोवृत्ति', १९१८।

उसका अधिकतम उपयोग करे। मसलन, कुछ रेलवे अधिकारियो द्वारा पश्चिमी रेलवे मे प्रारभ किये जानेवाले नये तरीको के महत्व को घटाने की बात का पता लगने पर लेनिन ने ग० त्र्जिजानोव्स्की को लिखा: "सबसे पहला काम उन वैज्ञानिको को 'पकडना' है जो आलसी और पडिताऊ होने के कारण विदेशी अनुभव हासिल करने से चूक गये है।" *

श्रम के वैज्ञानिक सगठन से सबधित टेलर प्रणाली की सारी सकारात्मक बातो के प्रति लेनिन का हवाला समसामयिक विदेशी वैज्ञानिक अनुभव के व्यावहारिक स्वांगीकरण का एक विशद उदाहरण था। जैसा कि लेनिन ने कहा था यह प्रणाली उस काल के पूजीवाद की सर्वोत्तम प्रणाली थी, जिसमे बुर्जुआ शोषण के साथ परिष्कृत क्रूरता थी (क्योकि इसका मकसद श्रम के सघनीकरण तथा उत्पादन के साधनो के विवेकपूर्ण उपयोग के द्वारा अधिकतम बेशीमूल्य हासिल करने के लिए उच्चतम सभव श्रम-उत्पादकता की उपलब्धि था) तथा सिलसिलेवार कई महत्वपूर्ण समाधानो को, जैसे कार्य-प्रक्रिया मे श्रमिक की यात्रिक गतियो का विश्लेषण, सतही तथा भौडी गतियो का निराकरण, सही कार्य-पद्धतियो का विकास तथा पूजीकरण व नियत्रण की इष्टतम प्रणाली का समारभ, आदि, को मिलाया गया था। लेनिन ने लिखा: "सोवियत जनतत्र के लिए लाज़िमी है कि वह इस क्षेत्र मे विज्ञान व टक्नोलाजी की सारी मूल्यवान उपलब्धियो को हर कीमत पर अपनाये। समाजवाद के निर्माण की सभावना सोवियत सत्ता तथा प्रशासन के सोवियत सगठन को पूजीवाद की आधुनिकतम उपलब्धियो के साथ मिलाने पर निर्भर है।" **

आज की पश्चिमी कला मे ऐसा बहुत सा अनुभव निहित है जिसका सोवियत सास्कृतिक कर्मियो को अध्ययन करना चाहिए। निराशावाद तथा व्यापक हताशा सोवियत कला के लिए परकीय है, परन्तु प्रसिद्ध कला माहिरो से यह सीखना उपयोगी और आवश्यक है कि "प्रत्येक अनुक्रम के साथ" कैसे सोचा जाता है।

---

* *

उसका अधिकतम उपयोग करें। मसलन, कुछ रेलवे अधिकारियों द्वारा पश्चिमी रेलवे में प्रारंभ किये जानेवाले नये तरीकों के महत्व को घटाने की बात का पता लगने पर लेनिन ने ग० कृजिजानोव्स्की को लिखा: "सबसे पहला काम उन वैज्ञानिकों को 'पकड़ना' है जो आलसी और पड़िताऊ होने के कारण विदेशी अनुभव हासिल करने से चूक गये हैं।"*

श्रम के वैज्ञानिक संगठन से संबंधित टेलर प्रणाली की सारी सकारात्मक बातों के प्रति लेनिन का हवाला समसामयिक विदेशी वैज्ञानिक अनुभव के व्यावहारिक स्वांगीकरण का एक विशद उदाहरण था। जैसा कि लेनिन ने कहा था यह प्रणाली उस काल के पूंजीवाद की सर्वोत्तम प्रणाली थी, जिसमें बुर्जुआ शोषण के साथ परिष्कृत क्रूरता को (क्योंकि इसका मकसद श्रम के सघनीकरण तथा उत्पादन के साधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के द्वारा अधिकतम बेशीमूल्य हासिल करने के लिए उच्चतम संभव श्रम-उत्पादकता की उपलब्धि था) तथा सिलसिलेवार कई महत्वपूर्ण समाधानों को, जैसे कार्य-प्रक्रिया में श्रमिक की यांत्रिक गतियों का विश्लेषण, सतही तथा भौंडी गतियों का निराकरण, सही कार्य-पद्धतियों का विकास तथा पूंजीकरण व नियंत्रण की इष्टतम प्रणाली का समारंभ, आदि, को मिलाया गया था। लेनिन ने लिखा: "सोवियत जनतंत्र के लिए लाजिमी है कि वह इस क्षेत्र में विज्ञान व टक्नोलाजी की सारी मूल्यवान उपलब्धियों को हर कीमत पर अपनाये। समाजवाद के निर्माण की संभावना सोवियत सत्ता तथा प्रशासन के सोवियत संगठन को पूंजीवाद की आधुनिकतम उपलब्धियों के साथ मिलाने पर निर्भर है।"**

आज की पश्चिमी कला में ऐसा बहुत सा अनुभव निहित है जिनका सोवियत सांस्कृतिक कर्मियों को अध्ययन करना चाहिए। निराशावाद तथा कामद हताशा सोवियत कला के लिए परकीय हैं, परंतु प्रसिद्ध कला माहिरों से यह सीखना उपयोगी और आवश्यक है कि "प्रत्येक अनुक्रम के साथ" कैसे सोचा जाता है।

---

* ब्ला० इ० लेनिन, 'ग० म० कृजिजानोव्स्की को', २७ दिसंबर, १६२२।

** ब्ला० इ० लेनिन, 'सोवियत सत्ता के तात्कालिक कार्यभार', १६१८।

इस तरह कम्युनिस्ट, एक ओर, बुर्जुआ सस्कृति के सारे प्रतिक्रियावादी तत्वों के खिलाफ सघर्ष की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित करते हुए वैचारिक अन्तर्वस्तु तथा सामाजिक कार्यों के सदर्भ में समाजवादी और बुर्जुआ सस्कृतियों के प्रतियोग पर बल देते है। लेकिन, जैसा कि ऊपर कही गयी बातों से स्पष्ट है (क) कम्युनिस्ट "सस्कृति" तथा "विचारधारा" की सकल्पनाओं को अभिन्न नहीं मानते और (ख) "बुर्जुआ सस्कृति" तथा "बुर्जुआ समाज की सस्कृति" की सकल्पनाओं को अभिन्न नहीं मानते। अत, दूसरी ओर, यह तार्किक निष्कर्ष निकला आधुनिक बुर्जुआ सस्कृति की प्रतिक्रियावादी अंतर्वस्तु के खिलाफ सघर्ष इस सस्कृति की विचारधारा की प्रतिक्रियावादी प्रकृति के बावजूद उसके अध्ययन के आलोचनात्मक उपयोग को बहिष्कृत नहीं, बल्कि उसकी पूर्वापेक्षा करता है।

यहा सातत्य के अत्यत महत्वपूर्ण "समस्तरीय" पक्ष सामने आते है अल्पविकसित देशो सहित सभी देशो की सामाजिक प्रणालियों की प्रकृति पर ध्यान दिये बिना प्रत्येक जनगण द्वारा सस्कृति के क्षेत्र मे उपलब्ध परिणामो को इस्तेमाल करने की सभावना और आवश्यकता। दूसरा प्रश्न यह है कि एक विशेष देश के आर्थिक और सास्कृतिक विकास का स्तर इन उपलब्धियो के उपयोग को किस हद तक सभव बनाता है और वहा के प्रबल प्रभावी उत्पादन-सबध उनके उपयोग को कौन सी दिशा प्रदान करते है। परतु इसके कारण सामाजिक प्रगति की विभिन्न अवस्थाओं पर पहुचे हुए लोगो द्वारा विज्ञान व टेक्नोलाजी की सपूर्ण उपलब्धियों को इस्तेमाल करने की संभावना खत्म नहीं हो जाती। जो भी हो, यह एक समाज के लिए, सामाजिक विकास की उच्चतम अवस्थाओ मे पहुचने के लिए प्रयत्नशील जनगण के लिए नितांत वास्तविक तथा महत्वपूर्ण है।

यही कारण है कि कम्युनिस्ट मौजूदा हालतों मे दक्षिणपंथी सशोधनवादी रवैये का विरोध करते हुए भी बुर्जुआ समाज की आज की सस्कृति के प्रति सनाग्रही रवैये का विरोध करते हैं, जो इस प्रश्न पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के मूल नियमो के वामपथी अवसरवादी सशोधन का एक प्रत्यक्ष परिणाम है।

समसामयिक बुर्जुआ समाज की सस्कृति के साथ सबध पर लेनिन

के विचारों में मार्गदर्शन पाकर सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों के कम्युनिस्ट पूजीवादी देशों के साथ सांस्कृतिक संपर्कों को व्यापक रूप से सुदृढ़ व विकसित करने का प्रयास करते हैं। इससे भी अधिक, वे अपने वास्ते अत्यंत प्रगतिशील और मानवीय लक्ष्य निश्चित करते हैं। यह पूंजीवादी देशों की सांस्कृतिक उपलब्धियों को केवल कम्युनिज्म के निर्माणार्थ इस्तेमाल में लाना ही नहीं, बल्कि अन्य देशों की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रगति तथा जनगण के बीच पारस्परिक समझ और मैत्री को सभी संभव तरीकों से बढ़ावा देना भी है।

विभिन्न जनगण की अपनी भिन्न-भिन्न सामाजिक-राजनीतिक प्रणालियों के बावजूद आज उनके बीच सांस्कृतिक संबंधों का विकास और दृढ़ीकरण परम महत्व का हो गया है, क्योंकि आज सारी प्रगतिशील मानवजाति शांति के लिए संघर्ष कर रही है और विश्व इतिहास के दौरान मानवजाति द्वारा संचित सांस्कृतिक मूल्यों को नाभिकीय युद्ध में नष्ट होने से बचाने के वास्ते सारे प्रगतिशील सांस्कृतिक कर्मियों के प्रयत्नों की एकता जरूरी हो गयी है।

अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक संबंधों के उत्तम मिशन की ऐसी समझ के अनुसार समाजवादी देशों ने पूंजीवादी देशों के साथ सांस्कृतिक विनिमय के आधारभूत नियमों का निरूपण किया है प्रभुसत्ता का पारस्परिक सम्मान, समानता और अन्योन्यता, पारस्परिक लाभ, आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना और सार्विकता।

राष्ट्रों के बीच, जिनमें समाजवादी समुदाय और पूंजीवादी जगत् के देश भी शामिल हैं, सांस्कृतिक संबंधों की बढ़ती हुई भूमिका और परिमाण आज की एक सुस्पष्ट प्रकृति है।

हाल के वर्षों में सोवियत संघ विदेशों के साथ अपने सांस्कृतिक संबंधों को अधिकाधिक बढ़ाता रहा है। वह लोकोपकारी क्षेत्र में १२० से भी अधिक देशों के साथ संपर्क कायम किये हुए है और इनमें से अधिकांश सांस्कृतिक संबंधों पर अंतर्सरकारी समझौतों के आधार पर कायम किये गये हैं।

हर वर्ष बीसियों सोवियत कलाकार मंडलियां विदेशों के दौरों पर जाती हैं। स्पष्ट है कि यह प्रक्रिया एकपक्षीय नहीं है। विदेशी थियेटर कंपनियां, गीत व नृत्य मंडलियां तथा एकल कलाकार हर साल १०० . .

से भी अधिक सोवियत नगरों में अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं, इस तरह वे सोवियत जनता को विश्व कला की उपलब्धियों से अवगत कराते है।

सोवियत रेडियो और टेलीविजन १२० से भी अधिक देशो के अपने सहयोगी संगठनों के साथ सहयोग करते हैं। सोवियत सिने-कलाकार अपने विदेशी सहयोगियों के साथ व्यापक रूप से व्यापारिक व व्यावसायिक संबंध बनाये रखते हैं। इस सहयोग की कृपा से सोवियत सिने-पटों पर हर साल सैकडो विदेशी फिल्में दिखलायी जाती हैं। संयुक्त रूप से फिल्म बनाना, विदेशी फिल्मोत्सव व मास्को और ताशकंद में अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों का आयोजन एक परंपरा बन गया है।

सोवियत थियेटरों के वर्तमान कला-भंडारों मे समसामयिक विदेशी लेखकों के लिखे हुए सैकडो नाटक शामिल हैं।

यह सुज्ञात है कि सोवियत संघ मे संसार भर में सबसे ज्यादा पुस्तके पढ़ी जाती है दुनिया में प्रकाशित होनेवाली हर चौथी पुस्तक सोवियत पुस्तक होती है। अकेले १९८० मे कुल ८०,००० पुस्तक-पुस्तिकाए (२ अरब प्रतिया) प्रकाशित की गयी। इनमें विदेशी लेखको की पुस्तको की एक खासी बडी संख्या है। सोवियत सत्ताकाल के दौरान सोवियत संघ मे डेढ सौ से भी अधिक देशो के लेखकों की पुस्तके प्रकाशित की गयी और अक्सर उनके अपने देशो के मुकाबले कहीं अधिक बडे संस्करणो मे छापी गयी। १९७४ और १९७८ की अवधि मे ही ४५ अंग्रेज़ी लेखको की ८७ पुस्तकें सोवियत जनगण की भाषाओं में प्रकाशित हुईं, जिनकी कुल ६० लाख प्रतिया छपी। १९७५-१९७९ के दौरान आधुनिक जर्मन लेखको की पुस्तके १०६ मरतबा तथा कुल ४० लाख प्रतियो मे प्रकाशित हुईं। १९८१-१९८२ मे २० आधुनिक अमरीकी लेखको की रचनाओ का प्रकाशन हुआ।

१९८० मे प्रगति प्रकाशन ने ५३६ विदेशी लेखको की पुस्तकें प्रकाशित की और उनकी कुल ५० लाख प्रतिया छपी और खुदोजेस्त्वेन्नाया लितेरातूरा प्रकाशन ने १०१ विदेशी पुस्तको की डेढ करोड प्रतिया छापी।

सोवियत संघ नियमित पुस्तक प्रदर्शनियो और मेलो का आयोजन .. है। उसने अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष का प्रयोजन किया जिसकी

विरोधी प्रकृति के भीतरघाती प्रकाशन हैं। यह साफ जाहिर है कि ऐसी प्रकृति के उत्पादों का न तो सस्कृति से कोई वास्ता है, न मानवतावाद से और वे जनगण के बीच पारस्परिक समझ को कतई बढावा नही देते तथा हेलसिकी समझौते की किसी भी धारा के अनुरूप नही है।

इस सिलसिले मे यह नोट किया जाना चाहिए कि कुछ पश्चिमी प्रकाशक तथा कला जगत् के प्रमुख लोग बिल्कुल भिन्न सिद्धातो पर चलते हैं। वे अनेक प्रतिभावान सोवियत लेखको के मामले मे चुप्पी साध लेते हैं, परतु उन "भिन्न मतावलबी" लेखको की रचनाओ का व्यापक प्रचार करते हैं जो सोवियत विरोधवाद की हरकतो मे लगे हैं और सोवियत जनगण की भावनाओ और विचारो को व्यक्त नही करते। यहा तक कि 'न्यूयार्क टाइम्स' अखबार को भी हाल ही मे मास्को के प्रकाशन अधिकारियो के बयान की सत्यता को स्वीकार करना पड़ा कि सोवियत सघ मे अनेक अमरीकी पुस्तको को मुक्त रूप से खरीदा जा सकता है जब कि अमरीकी जनता की सोवियत लेखको तक ऐसी पहुच नही है। हा, अगर वे "भिन्न मतावलबी" लेखको की रचनाए हो तो बात दूसरी है।

यूनेस्को के अनुसार समाजवादी देशो के टेलीविजन सगठन पश्चिम के जितने कार्यक्रमो को प्रसारित करते हैं, वे पश्चिम द्वारा पूर्वी कार्यक्रमो के प्रसारण की तुलना मे चार गुने अधिक हैं। फिल्मो तथा रगमचीय कार्यक्रमो के पारस्परिक प्रदर्शनो का अतर तो और भी विकट है।

वाशिंगटन के आदेश पर अतर्राष्ट्रीय सास्कृतिक सहयोग को घटानेवाली प्रतिक्रियावादी शक्तियो के विपरीत सोवियत सघ तथा समाजवादी समुदाय के अन्य देश यह मानते है कि सास्कृतिक सबध अतर्राष्ट्रीय सबधो की प्रणाली मे, शब्द के विस्तृत अर्थ मे, वस्तुत एक ठोस और अविभाज्य तत्व बन गये हैं।

ठीक इन्ही आधारो से काम करते हुए समाजवादी देशो ने शिक्षा, विज्ञान व सस्कृति के मामलो पर सयुक्त राष्ट्र महासम्मेलन (यूनेस्को, १६८०) के २१वे अधिवेशन मे सास्कृतिक व वैज्ञानिक सहयोग के और अधिक विकास पर एक प्रस्ताव का प्रारूप पेश किया। अमरीका तथा नाटो के उसके सहयोगियो के विरोध के बावजूद स्वीकृत इस प्रस्ताव मे इस बात को मान्यता दी गयी है कि राष्ट्रीय सस्कृतियो

की अभिवृद्धि, विश्व की सांस्कृतिक विरासत को अधिक गहन बनाने और समस्त जनगण के समान हितों में ज्ञान तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों के विनिमयार्थ समानता के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग किया जाना चाहिए।

इन सिद्धांतों के आधार पर चलते हुए सम्मेलन ने यूनेस्को के सभी सदस्यों (१५३ राज्यों) से अपील की कि वे "जनगण के बीच शांति, मैत्री और पारस्परिक समझ को सुदृढ़ बनाने के एक साधन के रूप में समान और परस्पर लाभदायी सांस्कृतिक व वैज्ञानिक सहयोग को विस्तृत बनाने की बाधाओं को दूर करने के लिए ज़ोरदार प्रयत्न करें।" इस प्रस्ताव के अनुसार सम्मेलन ने १९८१-१९८३ के लिए एक सांस्कृतिक कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान की जिसमें "कलात्मक व बौद्धिक रचनात्मकता को उद्दीपन प्रदान करने", "मनुष्यजाति की सांस्कृतिक व प्राकृतिक विरासत की सुरक्षा व संरक्षण को बढ़ावा देने" से संबधित कई धाराएं हैं तथा सिलसिलेवार कई महत्वपूर्ण उपाय दिये गये हैं (सांस्कृतिक नीतियों पर द्वितीय अंतर्सरकारी सम्मेलन, पुस्तकों पर विश्व कांग्रेस, मनुष्यजाति की सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा व संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय अभियान, आदि)।

विश्लेषण की व्यावहारिक प्रणालियों का अंतर्राष्ट्रीय संस्थान (लक्सेमबर्ग, आस्ट्रिया) ऐसे सांस्कृतिक व वैज्ञानिक संपर्कों की कारगरता तथा पारस्परिक लाभ का एक विशद उदाहरण है। एक महत्वपूर्ण ग्रंथ '२०३० तक के लिए विश्व विद्युत इंजीनियरी की संभावनाएं' १९८१ में सात साल के ऐसे काम के बाद प्रकाशित हुआ, जिसमें सोवियत संघ, अमरीका, ब्रिटेन, फ़्रांस, बुल्गारिया तथा अन्य देशों के विशेषज्ञों ने भाग लिया। यह अनुसंधान कार्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्र में आधी शताब्दी की अवधि तक का प्रामाणिक पूर्वानुमान है और विश्व वैज्ञानिक समुदाय ने इसकी बहुत सराहना की है। संस्थान के निदेशक प्रोफ़ेसर रोजर लेविएन (अमरीका) के अनुसार, वैज्ञानिकों के अंतर्राष्ट्रीय दल के संयुक्त प्रयत्नों से उस समस्या के समाधान में बहुत सुविधाएं हो जाती हैं जो संपूर्ण मानवजाति के लिए ज़्यादा महत्वपूर्ण है और यह राष्ट्रीय विद्युत कार्यक्रमों के ब्यौरे तय करने में सहायक होगा।

दुब्ना (सोवियत संघ) स्थित नाभिकीय अनुसंधान के संयुक्त

सस्थान का काम अनेक देशों के वैज्ञानिकों के सयुक्त क्रियाकलाप का एक और उदाहरण है।

थियेटर, सिनेमा, टेलीविजन, आदि मे विभिन्न देशों की कला-मडलियो तथा सास्कृतिक कर्मियो के सयुक्त कार्य सुज्ञात हैं।

यह पूछा जा सकता है कि अमरीका ने सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशों के साथ अपने सास्कृतिक, वैज्ञानिक, खेलकूद तथा अन्य सबंधो को इस तथ्य की अवहेलना करते हुए घटाना क्यो उचित समझा, जब कि ऐसे सपर्कों से समाजवादी व पूजीवादी दोनों ही प्रकार के देशो को लाभ होता है ? अमरीकी प्रशासन की उस नकारात्मक स्थिति की जड़े कहां हैं, जो रोनाल्ड रीगन के राष्ट्रपति चुने जाने के बाद और भी खराब हो गयी है और जिसने कई अन्य पश्चिम यूरोप के देशो के साथ सोवियत सघ के सास्कृतिक सबधो के विकास मे, निस्सदेह, पेचीदगी पैदा कर दी है ?

जैसा कि हम समझते हैं, सोवियत सघ तथा समाजवादी समुदाय के अन्य देशो के प्रति पश्चिमी देशो के शासक अवलो की सास्कृतिक नीति के पीछे निहित कारण बहुत गहराई मे हैं पूजीवादी जगत् और समाजवादी राष्ट्रों के बीच सास्कृतिक सबध ज्यो ज्यो अधिक विस्तृत व दृढ होते हैं, त्यो त्यो इन दो सस्कृतियो के बीच प्रतिपुष्टि में बढ़ती होती जाती है, यानी समाजवादी सस्कृति अपनी उन्नत विचारधारा तथा नैतिकता के कारण, अपने विज्ञान, कला व शिक्षा के आत्मिक क्रियाकलाप के समस्त क्षेत्रो की सफलता के कारण सारी दुनिया के जनसाधारण की भावनाओ मे अधिकाधिक घर करती जाती है। सुप्रसिद्ध पुस्तक *Brighter Than a Thousand Suns* ('सहस्र सूर्यों से भी अधिक तेजस्वी') के लेखक आर० युक ने सोवियत समाजवादी जनतत्र सघ की स्थापना की ५०वी जयती के अवसर पर लिखा कि उनकी राय मे रूसी क्राति की सर्वाधिक असाधारण उपलब्धि उन निधियो की खोज और विकास है जो साधारण मानव के रचनात्मक क्रियाकलाप के मूलाधार मे निहित होती है। इस खोज के परिणाम अभी शुरू भर हो रहे हैं, उन्होंने आगे लिखा, और सोवियत सघ द्वारा उद्‌घाटित सस्कृति और बौद्धिक शक्तियो के विशाल आगार को केवल सोवियत सघ पर ही नही, सपूर्ण विश्व पर प्रभाव डालना चाहिए और वह

बाद के वर्षों ने इस भविष्यवाणी को पूर्णतः सही सिद्ध कर दिया। तदनुसार, सोवियत सस्कृति, जिसका आदर्श वाक्य (और व्यवहार) "सब कुछ मनुष्य के नाम पर, सब कुछ मनुष्य के लिए" है, सपूर्ण ससार मे और, खास तौर से, पूजीवादी जगत् मे संस्कृति को अमानवीय बनाने की बढती हुई प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में अधिकाधिक लोगों के मन और मस्तिष्क को प्रभावित करती जा रही है।

यह प्रभाव उन देशो मे विशेष रूप से प्रबल है जो उपनिवेशी दासता से हाल ही मे मुक्त हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अपनी राष्ट्रीय जनवादी क्रांतियो की किसी भी विशिष्टता के बावजूद वे सब सोवियत सघ की सास्कृतिक क्राति पर भरोसा कर सकते हैं, जिसका एक अवयव रूसी साम्राज्य के अदर भूतपूर्व उपनिवेशी जनगण की सस्कृतियो का द्रुत विकास था।

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विकासमान राष्ट्रो के लिए सांस्कृतिक विरासत के प्रति रुख का प्रश्न अत्यत फौरी सवाल है। इस मामले पर सही स्थिति अपनाने के लिए जरूरी है कि दो मूलत भिन्न कारको को ध्यान मे रखा जाये।

उनमे से एक नवस्वाधीन देशो के आंतरिक विकास की विशिष्टता है। उनके कुछ अचल, जो यूरोपीय या उत्तर अमरीकी उपनिवेशवादियो द्वारा दीर्घकाल तक उत्पीडित थे, पूर्णत अलगाववादी सकल्पनाए पेश करते है। यूरोपीय और अमरीकी उपनिवेशवादियो के प्रति अपने जनगण की स्वाभाविक घृणा का नाजायज लाभ उठाते हुए वे "गैर-यूरोपीय" और "गैर-अमरीकी" सास्कृतिक विकास का नारा लगाते है। अधिक गहराई मे विचार करने पर ये नारे या तो अभिजातवर्गीय सेनाओ के पूर्व-पूजीवादी सबधो को बनाये रखने के मूलत प्रतिगामी इरादो को व्यक्त करते है, या नवजात पूजीपति वर्ग के एक महत्वपूर्ण हिस्से द्वारा औद्योगीकृत पूजीवादी देशो के शक्तिशाली प्रतियोगियो के खिलाफ सघर्ष मे पूरी आजादी प्राप्त करने के प्रयासो को व्यक्त करते है।

दोनो ही स्थितियो मे जोर "विदेशी प्रभाव" से छुटकारा पाकर "राष्ट्रीय परम्पराओ को पुनर्जीवित करने" पर दिया जाता है। विकास [illegible] ढूंढने की दीर्घकालिक [illegible] के लिए "राष्ट्रीय परम्पराओ" के पुनर्जीवन और सरक्षण का अर्थ धर्मनिष्ठ परम्पराओ के सरक्षण से

होता है। वे सांस्कृतिक निर्माण के क्षेत्र के सारे कार्यों को इसी आधार से नियमित करते हैं: शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन, धर्मनिरपेक्ष शिक्षा की समाप्ति और अनिवार्य धार्मिक शिक्षा, "पवित्र पुस्तको" तथा प्राचीन मृत भाषाओ का अध्ययन, आदि। इसी के अनुसार, साहित्य व कला का उद्देश्य पौराणिक ग्रथो के मानको की नकल पर धार्मिक कृतियों की रचना बन जाता है; आधुनिक धर्मनिरपेक्ष कला को उसके धर्मविरोधी रुख के कारण तथा सामाजिक-आर्थिक रूपातरण के उसके आह्वान के कारण "भ्रष्टकारी" घोषित कर दिया जाता है।

विकासमान देशो मे दक्षिणपथी पार्टियो के नेतागण भी सांस्कृतिक विरासत के प्रति अपने रवैये को प्रतिक्रियावादी सिद्धातो पर आधारित करते हैं। जनता की देशभक्ति की भावनाओ, राष्ट्रीय परपराओ के प्रति उनके सम्मान का दुरुपयोग करते हुए वे पुरानी घिसी-पिटी परपराओ को पुनर्जीवित करने का आह्वान करते हैं, यानी वे वास्तविक सस्कृति को जनता की पहुच मे आने से रोकते हैं और इस प्रकार सामाजिक रूपातरणो को भी रोकते हैं और सांस्कृतिक उन्नति को भी।

बाह्य कारण सास्कृतिक विरासत के उपयोग को प्रभावित करनेवाला अन्य कारक है।

विश्व घटनाक्रम के कारण औद्योगीकृत पूजीवादी देशो को अफ्रीका और एशिया में दसियो स्वाधीन राज्यो की रचना को मजबूरन स्वीकार करना पड़ा, लेकिन वे उन्हे अपने ही आर्थिक, राजनीतिक तथा विचारधारात्मक नियत्रण मे रखना चाहते हैं। यह तथ्य उन देशो के स्वाधीन सास्कृतिक विकास की प्रक्रियाओ को रोकने की उनकी कोशिशो मे नजर आता है।

साम्राज्यवादी सिद्धातशास्त्री नवोदित एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रो द्वारा अपने द्रुत विकास को सुनिश्चित बनाने के उनके प्रयत्नो पर क्षुब्ध हैं, वे समाजवादी जगत् के, मुख्यत सोवियत सघ के, विचारो तथा व्यवहारो के प्रभाव को द्रुत सामाजिक-राजनीतिक तथा सास्कृतिक उन्नति के लिए इन, जैसा वे उन्हे कहते हैं, "तलछट समाजो" के प्रयत्नो का कारण बतलाते हैं।

आधुनिक साम्राज्यवादी विचारक विकासमान देशो के उपनिवेश-विरोधी प्रयासो का प्रतिकार वैचारिक नव-उपनिवेशवाद के ल . .

रूपों से करने की कोशिश करते हैं। वे इसे इन देशों में अपनी आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों को बरकरार रखने के एक तरीके के रूप में देखते हैं। अमरीकी राजनीतिज्ञ तथा समाजवैज्ञानिक सामाजिक प्रगति तथा विकास के स्वाधीन गैर-पूंजीवादी रास्ते के बारने विकासमान देशों के संघर्ष में बाधा डालने को उनके प्रति अमरीकी नीति का प्रमुख लक्ष्य मानते हैं।

विकासमान देशों मे अमरीकी जीवन पद्धति के "फ़ायदों" की वकालत करनेवाले लोग उन पर यह ख्याल लादने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाते हैं कि विदेशी इजारेदारियों की संस्कृति ही एकमात्र ऐसी संस्कृति है जो बौद्धिकों के पास होनी चाहिए। और वे स्वाधीनता तथा प्रगति के नाम पर राष्ट्रीय सास्कृतिक विरासत के उपयोग के लिए स्थानीय बुद्धिजीवियों के प्रयासों पर प्रांतीयतावाद का बिल्ला चिपका देते हैं। तदनुसार, वे यह मानते हैं कि परंपरा के मुताबिक धर्म विकासमान राष्ट्रों के जीवन मे सबलतम तत्व है और उसे आधुनिक जनतांत्रिक सस्थानों के आधार के रूप मे, "औद्योगीकरण के भौतिकतावादी अतिरेक" को रोकनेवाले ब्रेक के रूप में तथा कम्युनिज़्म के खिलाफ़ प्रतिरक्षा के रूप मे ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार आंतरिक और बाह्य प्रतिक्रियावादी अततः एकजुट हो जाते हैं, पूर्वोक्त "राष्ट्रीय सस्कृति के पुनर्जीवन" के नाम पर "धार्मिक परपराओ" को समर्थन देते हैं और पश्चोक्त "जनतांत्रिक विचारो को मन मे पैठाने" के नाम पर "पूर्व की धार्मिक परपराओं को कमज़ोर न करने की" पुकार लगाते हैं, यानी कुल मिलाकर, नव-उपनिवेशवादियों के लिए मुनाफ़े की व्यवस्था को बनाये रखने का आह्वान करते हैं।

पूर्व व पश्चिम की सस्कृतियों के "सश्लेषण", एक धार्मिक आधार पर उनके एकीकरण तथा अमीर व गरीब, सामाजिक दृष्टि से ऊच व नीच; सबको सुलभ व सबके लिए समान "अविभक्त विश्व सस्कृति" की रचना के विचार विकासमान देशों में सामाजिक प्रगति के विरुद्ध आतरिक और बाह्य प्रतिक्रियावादियों के संयुक्त संघर्ष में उनके समान स्वार्थों का सहज अनुक्रम बन गये हैं।

ऐसे सिद्धातो के प्रतिपादकों ने – आधुनिक साम्राज्यवाद के अनेक

विचारक, मसलन, व्यक्तित्ववादियों ने – काफ़ी समय से यह खोज की है कि पूर्वी धर्म मूलत. "व्यक्तित्ववादी" हैं। इसलिए वे नव-उपनिवेशवाद को "एक ही व्यक्तित्ववादी धर्म" के द्वारा आध्यात्मिक तरीके से सहारा देने की कोशिश करते हैं। जैसा कि व्यक्तित्ववादियो के नेता फ़्लेवेलिंग कहते हैं, "इन मनोदशाओं के बीच एक दुखद और प्रतीयमानतः अगम्य बाधा है... निष्क्रियता की जजीरो मे जकडा हुआ पूर्व हर वस्तु मे पूर्ण सतुलन की, अविचलित और अविचल सामजस्य की खोज कर रहा है; पश्चिम असममितिक ढग से आगे बढता हुआ प्रगति कर रहा है, विकसित हो रहा है।" परतु, इसके बावजूद, पूर्व की निर्जीवता तथा यूरोपीय प्रगति के बीच एक सबध जोडा जा सकता है। फ्लेवेलिंग लिखते हैं कि यह सबध धर्म पर आधारित होना चाहिए। "ईश्वर के सभाव्यतः एक पुत्र रूप मे मनुष्य की सामान्य मान्यता से सस्कृतियो का टकराव संस्कृतियो का मेल बन जाना चाहिए।" वे कहते हैं कि इस धार्मिक सिद्धात मे प्रत्येक मनुष्य के लिए, चाहे वह अमीर हो या गरीब, बुद्धिमान हो या अबोध, काला, सफ़ेद और पीला हो या लाल, एक अपील है, इसलिए इसे एक ही व्यक्तित्ववादी धर्म के तथा सारी मानवजाति के लिए सर्वनिष्ठ एक ही सस्कृति के वास्ते एक आधार के रूप मे लेना चाहिए।

विलियम फ़ॉस्ट भी इसी धारा मे बोलते है। पूर्व तथा पश्चिम के बीच अतरो को दूर कर सकनेवाले और मनुष्यजाति को एक ही सत्व मे एकीकृत करने मे समर्थ किसी नये धर्म के एकीकरणकारी कार्य पर आधारित "एक ही एकीकृत आत्मिक सस्कृति" की रचना की वकालत करते हुए वे पश्चिम को उसके मौजूदा सकट से और पूर्व को उसकी मौजूदा तकलीफ़ों से बचाने की बात करते हैं। उनका ख्याल है कि ऐसे धर्म की खोज मानवजाति का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्य है।

विकासमान देशों की प्रगतिशील शक्तिया इस प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण के एक सर्वथा विरोधी विचार से इसका प्रतिकार करती हैं पारपरिक संस्कृति का गर्व करने योग्य महान विरासत के रूप मे सम्मान करते हुए वे धार्मिक विश्वास के बजाय स्वतत्रता और समानता पर, शिक्षा और ज्ञानोदय पर तथा वैज्ञानिक सत्य पर आधारित सामान्य मनुष्य की सस्कृति का समर्थन करती हैं।

विकासमान देशों मे कम्युनिस्ट तथा अन्य सभी प्रगतिशील पार्टियां, एक तरफ, यह मानती हैं कि अपनी ही सांस्कृतिक विरासत की उपलब्धियों तथा उसकी प्रगतिशील अंतर्वस्तु के सहारे के बगैर सांस्कृतिक निर्माण की उपलब्धि असंभव है और, दूसरी तरफ़, वे उन्नत पूंजीवादी देशों की संस्कृति मे निहित सारे प्रगतिशील तत्वों के पूर्ण उपयोग को आवश्यक समझती हैं।

समाजवादी देशों ने अपने सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के दौरान जो अनुभव प्राप्त किया है, वह नव-स्वाधीन देशों मे संस्कृति के विकास के लिए खास तौर से महत्वपूर्ण है। यह अनुभव विकासमान देशों के वास्ते परम महत्व का केवल इसीलिए नहीं है कि समाजवादी संस्कृति मनुष्यजाति के आत्मिक जीवन के विकास की गुणात्मक दृष्टि से नयी अवस्था है, बल्कि इसलिए भी है कि अनेक समाजवादी देशों ने समाजवादी संस्कृति के शिखर की तरफ अपना प्रयाण लगभग उन्हीं स्तरों से शुरू किया था जिस स्तर पर आज अपनी राष्ट्रीय जनवादी क्रांतियां संपन्न करनेवाले देश खड़े हैं।

इसलिए यह स्वाभाविक है कि एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के जिन देशों ने उपनिवेशवाद का जुआ उतार फेंका है, उनके लिए समाजवाद के विचार बहुत महत्वपूर्ण हो गये हैं। सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों में नवीन सांस्कृतिक निर्माण का अनुभव उनके वास्ते विशेष महत्त्वपूर्ण है।

विकासमान राष्ट्रों के हितों की पूर्ति करते हुए समाजवादी जगत् उन्हें सबसे अधिक सक्रिय सांस्कृतिक सहायता देकर अपने अंतर्राष्ट्रीय कर्तव्य को पूरा करता है। पूंजीवादी देशों की सरकारें अल्पविकसित देशों को दी जानेवाली अपनी "सहायता" को सिलसिलेवार ऐसी कई आर्थिक और राजनीतिक शर्तों से जोड़ देती है जो उनके लिए अपमानजनक तथा पूंजीवादी देशों की इजारेदारियों के लिए लाभदायक होती है, इसके विपरीत, सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों द्वारा विकासमान देशों को दी जानेवाली सहायता का उद्देश्य सचमुच केवल मदद, तरीका बिरादराना और निस्वार्थ होता है।

सोवियत संघ द्वारा विकासमान देशों को दी जा रही उक्त सहायता का विशेष महत्त्व है।

सोवियत सघ उनके राष्ट्रीय बुद्धिजीवियो के प्रशिक्षण, उनकी शिक्षा-प्रणाली तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य-रक्षा की सेवाओ के निर्माण तथा उनके विज्ञान व कला के विकास मे विराट सहायता दे रहा है। उसने सैकडो सांस्कृतिक परियोजनाओ के निर्माण मे उन्हे सहायता दी है। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देशो के शैक्षिक सस्थानो, वैज्ञानिक केंद्रो तथा सांस्कृतिक सस्थाओं मे कार्य करनेवाले सोवियत विशेषज्ञो – अध्यापको, डॉक्टरो, इजीनियरो, वैज्ञानिको, आदि – की सख्या लगातार बढ रही है। सोवियत विशेषज्ञो ने इनमे से कई देशो की उच्च व माध्यमिक शिक्षा मे आमूलचूल सुधार करने मे सहायता दी है।

एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देशो मे सोवियत सहायता से जो शैक्षिक सस्थान स्थापित किये गये हैं, वे निरक्षरता को खत्म करने तथा राष्ट्रीय बुद्धिजीवियो के प्रशिक्षण मे बहुत कारगर सिद्ध हुए हैं। इनके अलावा सोवियत सघ के उच्च शिक्षा सस्थानो, जिनमे पैट्रिस लुमुम्बा मैत्री विश्वविद्यालय भी है, तथा तकनीकी स्कूलो मे विकासमान देशो के अनेक विद्यार्थी सोवियत सघ के खर्च पर शिक्षण प्राप्त करते हैं।

१९८०-१९८१ के शिक्षा वर्ष मे अकेले मास्को मे ही १४५ देशो के १०,००० विद्यार्थी, स्नातकोत्तर तथा कई अन्य पाठ्यक्रमो का अध्ययन कर रहे थे।

उपरोक्त का समाहार करते हुए हम तीन अत्यत महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

१. आधुनिक जगत् मे क्रियाशील एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रगतिशील प्रवृत्ति समाजवादी समुदाय के देशो और विकासमान देशो तथा पूजीवादी राष्ट्रो के बीच सांस्कृतिक सबधों का बढ़ता हुआ परिमाण और भूमिका है।

संस्कृति के सारे क्षेत्रो – विज्ञान, कला, शिक्षा, आदि – मे ऐसे सपर्कों के विस्तार से बेहतर पारस्परिक समझ पर पहुचना और सयुक्त प्रयत्नो से शाति और सामाजिक प्रगति के नाम पर सस्कृति का निर्माण करना सभव हो जाता है।

सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो के कम्युनिस्टो की

उनके कार्यक्रमों के दस्तावेजों में स्पष्टता से निरूपित है। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है: "पार्टी वैज्ञानिक व सांस्कृतिक उपलब्धियो के विनिमयार्थ तथा जनगण के बीच पारस्परिक समझ और मैत्री के लिए समाजवादी प्रणाली के देशों के साथ व अन्य सभी देशों के साथ सोवियत सघ के सांस्कृतिक संबंधों को विस्तृत बनाना आवश्यक मानती है।"

२. सोवियत समुदाय के राष्ट्र विदेशी संस्कृति के सभी मूल्यवान व प्रगतिशील तत्वो का **अधिकतम उपयोग करने** के लिए प्रयास करते हैं।

यदि यह याद रखा जाये कि सातत्य केवल स्वीकारात्मक ही नहीं निषेधात्मक भी होता है, यानी केवल पहले के उपलब्ध परिणामो के आलोचनात्मक उपयोग ही से नही, बल्कि पुराने के मुकाबले नये निष्कर्षों को, प्रतिगामी सिद्धांतों के मुकाबले प्रगतिशील सिद्धातो को खड़ा करने, आदि से भी सपन्न होता है, तो उपरोक्त बात बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी।

३. दो सस्कृतियों की अंतर्क्रिया मे प्रतिपुष्टि भी होती है: समाजवादी सस्कृति आधुनिक बुर्जुआ संस्कृति के सभी मूल्यवान व प्रगतिशील तत्वो का सिर्फ स्वागीकरण, आलोचनात्मक मूल्याकन तथा परिष्करण ही नही करती, बल्कि यह, **अपनी बारी में, स्वयं भी अन्य जनगण की संस्कृतियों के विकास को प्रभावित करती है।** "कला और साहित्य की सर्वोत्तम रचनाए केवल सोवियत क्लासिकी कला के खजाने को ही नही, बल्कि मनुष्यजाति की प्रगतिशील संस्कृति को भी समृद्ध बनाती हैं।"*

औद्योगीकृत पूंजीवादी देशो और, खास तौर से, विकासमान देशो मे अपने ऊंचे मानवतावादी आदर्शों वाली सोवियत संस्कृति में लाखो लाख लोगो के लिए प्रबल आकर्षक शक्ति है।

सारी दुनिया के जनगण के मन-मस्तिष्क पर उन्नत समाजवादी सस्कृति का प्रभाव कम्युनिज्म के निर्माण के समस्त क्षेत्रो में सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो की उपलब्धियो के सीधे अनुपात में लगातार बढ रहा है।

---

* सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की २३वीं कांग्रेस के दस्तावेजों से।

निष्कर्ष

सोवियत रूस मे सास्कृतिक क्राति के पहले ही कदमो के प्रति अतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया शत्रुतापूर्ण थी। पूजीवाद की सफाई पेश करनेवाले लोग बोल्शेविकों को बदनाम करने के लिए हद से बाहर निकल गये। "तुमने मनुष्य के अंदर जानवर को जगा दिया है, तुम विश्व सभ्यता को नष्ट कर रहे हो," वे सब दुनिया भर मे चीख-पुकार मचा रहे थे।

यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि रूसी समाजवादी क्राति और उसकी सांस्कृतिक नीति की बदनामी करनेवालों का नेतृत्व उन वर्गों के सदस्य कर रहे थे जिनके प्रभुत्व को इस क्राति ने खत्म कर दिया था।

उनमे से एक निकोलाई बेर्द्यायेव के लिखे शब्द यहा प्रस्तुत हैं। "सामाजिक दर्शन मे अपने विरोधियो " को सबोधित करते हुए उन्होने समाजवादी क्राति के फलस्वरूप सस्कृति के अवश्यभावी विनाश की भविष्यवाणी को अपनी ही "सस्कृति की दार्शनिक सकल्पना" से "सिद्धाततः साबित" करने की कोशिश की। उन्होने घोषणा की कि चूंकि "अपने उद्गम और मिशन मे सस्कृति धार्मिक है," इसलिए उसके विकास की प्रक्रिया मे "क्रातियो के साथ उभयनिष्ठ कुछ नही है।" उन्होने भविष्य कथन किया कि नीचे के स्तर से सास्कृतिक सकट का समाधान "निरर्थक" है, क्योकि "विज्ञान या कला या दर्शन मे से किसी को भी जनवादी तरीके से नही बनाया जा सकता है" और "सस्कृति के अभिजातवर्गीय स्रोतो के बद होने का अर्थ है सारे स्रोतो का लुप्त हो जाना।" अपनी पुस्तक 'असमानता का दर्शन' (१६२३, बर्लिन) मे उन्होने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि क्रातिकारी तत्व सारतः सस्कृति का शत्रु है, सस्कृति-विरोधी है। ...

एक सोपानक्रमिक सातत्य के बगैर, गुणात्मक असमानता के बगैर अकल्पनीय है," और सोवियत नेताओं को संबोधित करते हुए उन्होंने दावा किया "आप एक नयी संस्कृति की रचना नहीं कर सकते, क्योंकि सामान्यतः ऐसी नयी संस्कृति की रचना करना असंभव है जिसका अतीत काल की संस्कृति के साथ कोई सातत्य न हो। ऐसी नयी क्रांतिकारी संस्कृति की रचना का विचार विशेषण-विशेष्य का अन्तर्विरोध है। जिस नये की आप रचना करना चाहते हैं, उसे संस्कृति नहीं कहा जा सकता है। आप एक क्रांतिकारी सर्वहारा संस्कृति की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, जिसे आपका मसीहा वर्ग-दुनिया में ला रहा है। परंतु अब तक किसी सर्वहारा संस्कृति के प्रकट होने के कोई चिह्न नहीं हैं, ऐसी संस्कृति की संभावना का कोई संकेत नहीं है। क्योंकि सर्वहारा उस संस्कृति का स्वांगीकरण करता जा रहा है जिसे वह पूर्णतः बुर्जुआ वर्ग से उधार लेता है। उसने समाजवाद भी बुर्जुआ वर्ग से ही ग्रहण किया है। संस्कृति ऊपर से नीचे की तरफ फैलती है। 'सर्वहारा का रवैया' और 'सर्वहारा की चेतना' संस्कृति के लिए मूलतः हानिकारक हैं। स्वयं को 'सर्वहारा' समझने की जुझारू जागरूकता का अर्थ है संपूर्ण परंपरा और पवित्रता का, अतीत काल के साथ सारे संपर्कों का तथा सारे सातत्य का निषेध; इसका मतलब है अपने पूर्वजों से किनारा कर लेना और अपनी उत्पत्ति के बारे में अनजान होना। ऐसी भावनात्मक अवस्था में न तो कोई संस्कृति से प्यार कर सकता है, न उसकी रचना कर सकता है और न ही किसी सांस्कृतिक मूल्य को अपना समझ, उसे संजोकर रख सकता है। एक मजदूर सांस्कृतिक जीवन में तभी भाग ले सकता है, जब वह यह जाने कि वह 'सर्वहारा' है। समाजवाद दुनिया को कोई नयी प्रकार की संस्कृति नहीं देता है।"

एक और निराशावादी भविष्यवाणी याद आती है: "विज्ञान, कला और साहित्य गर्म-घर के पौधे हैं, जिन्हें ऊष्मा, सम्मान और सेवा की जरूरत होती है। रूसी साम्राज्यीय प्रणाली के पतन से ऐसे सारे शरणस्थल तहस-नहस हो गये जहां ऐसी चीजें जिंदा रह सकती थीं। सारे मनुष्यों को बुर्जुआ और सर्वहारा में विभाजित करनेवाला जो उजड्ड मार्क्सवादी दर्शन सारे सामाजिक जीवन को मूर्खतापूर्ण रूप से 'वर्ग-युद्ध' के रूप में देखता है उसे सामूहिक मानसिक जीवन

के लिए आवश्यक पूर्वाधारो का कोई ज्ञान नही है।" * इन पक्तियो के लेखक, महान वैज्ञानिक कल्पलेखक एच० जी० वेल्स हैं, जिन्हे, अफसोस, मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सिर-पैर कुछ पता न था।

इन लबे उद्धरणो को पेश करने के दो लक्ष्य हैं पहला, सोवियत सघ मे सास्कृतिक क्राति के दुश्मनो के **सैद्धांतिक** तर्कों को पर्याप्त पूर्णता से तथा उनके अपने शब्दो मे प्रस्तुत करना और, दूसरा, यह दर्शाना कि उनकी भविष्यवाणियो के पूर्ण **व्यावहारिक** दिवालियेपन के सर्वाधिक विशद उदाहरण शायद यही हैं।

बेशक, शोषक वर्गों का उन्मूलन करनेवाली समाजवादी क्राति ने समाज की ऊपरी अभिजाततत्रीय सस्तर की वर्गीय कडियो के सातत्य को तोड दिया, उन कड़ियो को तोड दिया जो जनसाधारण **के विरुद्ध** कई शताब्दियो मे बनायी गयी थी। परतु इन कडियो को नष्ट करने मे समाजवादी क्राति अपनी सास्कृतिक नीति मे उन अथाह गहरे, अधिक मानवीय तथा दृढतर सपर्कों पर भरोसा करती है जो सपूर्ण मानव इतिहास मे अस्तित्वमान थे और सारी सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया का आधार हैं, समाजवादी क्राति भरोसा करती है समस्त भौतिक और आत्मिक मूल्यो के वास्तविक सर्जक – जनसाधारण – के क्रियाकलाप पर।

सत्य की कसौटी व्यवहार है।

सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो के व्यवहार से, सस्कृति के विकास के ऐतिहासिक अनुभव से सस्कृति के भौतिकवादी समाज-विज्ञान की वैज्ञानिक प्रकृति की शानदार ढग से पुष्टि हो गयी है अपनी अतर्वस्तु तथा सामाजिक कार्यों मे गुणात्मक दृष्टि से नयी समाजवादी संस्कृति का निर्माण हो गया है और वह मौलिक आर्थिक व राजनीतिक रूपातरणो के आधार पर सफलतापूर्वक विकसित हो रही है। यह एक ऐसी सस्कृति है जिसने पिछली पीढ़ियो की सस्कृति से सब मूल्यवान तत्वो को आत्मसात कर लिया है। यह एक ऐसी सस्कृति है जो वैदूर्यायेव तथा अन्यो के वचन-कुवचनो के बावजूद एक नयी सस्कृति ही नही है, बल्कि अतुलनीय रूप से ऊची भी है।

यहा तक कि हमारे वैचारिक विरोधियो को भी, बशर्ते उनमे

---

* एच० जी० वेल्स, 'छायाओ तले रूस', १९२०।

एक मोनोतरक्रमिक सातत्य के बगैर, गुणात्मक असमानता के बगैर
अकल्पनीय है." और सोवियत नेताओं को सबोधित करते हुए उन्होंने
दावा किया "आप एक नयी सस्कृति की रचना नहीं कर सकते
क्योंकि सामान्यत ऐसी नयी सस्कृति की रचना करना असभव है जिसका
अतीत काल की सस्कृति के साथ कोई सातत्य न हो। ऐसी नयी क्रांति
कारी सस्कृति की रचना का विचार विशेषण-विशेष्य का अन्तर्विरोध
है। जिस नये की आप रचना करना चाहते हैं, उसे सस्कृति नही कहा
जा सकता है। आप एक क्रान्तिकारी सर्वहारा सस्कृति की बड़ी-बड़ी
बातें करते हैं, जिसे आपका मसीहा वर्ग-दुनिया मे ला रहा है। परन्तु
अब तक किसी सर्वहारा सस्कृति के प्रकट होने के कोई चिह्न नही है
ऐसी सस्कृति की सभावना का कोई सकेत नही है। क्योंकि सर्वहारा
उस सस्कृति का स्वांगीकरण करता जा रहा है जिसे वह पूर्णत बुर्जुआ वर्ग
से उधार लेता है। उसने समाजवाद भी बुर्जुआ वर्ग से ही ग्रहण किया
है। सस्कृति ऊपर से नीचे की तरफ फैलती है। 'सर्वहारा का रवैया'
और 'सर्वहारा की चेतना' सस्कृति के लिए मूलत हानिकारक है।
स्वयं को 'सर्वहारा' समझने की जुझारू जागरूकता का अर्थ है सपूर्ण
सपदा और पवित्रता का, अतीत काल के साथ सारे सपर्कों का तथा
... है अपने पूर्वजों से किनारा कर

लेखकों में विश्वविख्यात लोगों के नाम भी शामिल हैं जान रीड
एर्सकीन काल्डवेल और रॉकवेल केन्ट (अमरीका), रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मुल्कराज आनन्द तथा क्रिशन चन्दर (भारत), लिओन फौस्तवैंग
(जर्मनी), जॉर्ज बर्नार्ड शॉ तथा जान बॉयनटन प्रीस्टले (इग्लैंड)
सीन ओ'कैसी (आयरलैंड), मार्टिन एंडरसन नेक्से तथा हैन्स श्चेर्फि
(डेन्मार्क), आर्तर लुदक्वीस्त (स्वीडेन), स्तेफान ज्विग (आस्ट्रिया)
केन्ज़ाबुरो ओए तथा मिनोरू किहारा (जापान), कैथरीन सुसान्ना
प्रिचार्ड (आस्ट्रेलिया) और इगूगी वा थियोगे (कीनिया)।

उस पुस्तक को पढने पर कौन-सी चीज सबसे पहले ध्यान आकृष्ट
करती है?

पहली – उस प्रक्रिया के मौलिक कारणों और मूल्यांकन
का सर्वसम्मत स्पष्टीकरण जिसने भूतपूर्व रूसी साम्राज्य के
सास्कृतिक जीवन मे ऐसे असाधारण परिवर्तन कर दिये। हमारे
युग के एक महानतम लेखक चार्ल्स पर्सी स्नो (ग्रेट ब्रिटेन) ने अपने
बयान मे रूस की अक्तूबर समाजवादी क्रांति को २० वी सदी की ऐसी
निर्धारक घटना बताया है जिसने समस्त जनगण की, चाहे वे सोवियत
सघ मे रहते हो या अन्य देशो मे, नियति को प्रभावित किया।*

यह स्वाभाविक था कि अक्तूबर क्रांति के बाद सोवियत सघ मे
जारी प्रक्रियाओ के मूल सार का चित्रण करने मे प्रत्येक लेखक ने उन्ही
पक्षो को देखा जो नयी सस्कृति के विकास मे उसको सबसे ज्यादा
दिलचस्प लगी और उसने जो देखा उसकी व्याख्या अपने ही नजरिये
से की। इसके साथ ही इस ग्रथ का प्रमुख विचार यह है कि समाज-
वादी सस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, मूलभूत गुण इसमे अतर्निहित
मानवतावाद है।

सस्कृति और मानवतावाद। सभवत ऐसी और कोई सकल्पनाए
नहीं हैं जो इतनी घनिष्ठता से जुडी हो।

एक ओर, मनुष्य सस्कृति का मूलतत्व है, उसका ऐसा मूलभूत
सिद्धात है जिसके बिना सस्कृति न तो पैदा हो सकती है, न अस्तित्व
मे रह सकती है और न विकसित हो सकती है। यह मनुष्य ही है जो

---

* वही

सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रियाओ का विषयी है, सस्कृति के विविध रूपो *तथा अभिव्यक्तियों सहित उसका जनक है।* *सत्व व चेतना* के समस्त क्षेत्रों में, सास्कृतिक विरासत में मूर्त विगत तथा सांस्कृतिक मूल्यों के विभौतिकीकरण पर आधारित वर्तमान में, मनुष्य के क्रियाकलाप के बगैर, यानी मानवजाति के इतिहास की संपदा को जीवित व्यक्तित्वो की आतरिक दौलत मे बदलनेवाले कारक के बगैर, *स्वांगीकरण* की सार्विक प्रक्रिया तथा वास्तविकता व स्वयं मनुष्य के रूपातरण मे उसे साकार किये बगैर न तो भौतिक सस्कृति हो सकती है, न आत्मिक।

दूसरी ओर, एक "प्रतिपुष्टि" भी है, एक विचित्र अंतर्निर्भरता भी है· मनुष्य सास्कृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया का विषयी भी है और *विषय भी, क्योंकि समाज जिसकी रचना करता है*, उसे चंद व्यक्तियों की नही, बल्कि समस्त मनुष्यो की सेवा के काम आना ही चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को मनुष्यजाति द्वारा रचित सास्कृतिक विरासत को उपयोग मे लाने और अपनी सपूर्ण रचनात्मक क्षमताओ के साथ उसके *और अधिक विकास मे योग देने का अवसर* (*अमूर्त नही*, वास्तविक अवसर) मिलना ही चाहिए। यह समाजवादी सस्कृति का असली अर्थ और उसका ऊचा मानवीय आदर्श है।

परतु यह विश्व इतिहास का एक विरोधाभास है कि *संस्कृति और मानवतावाद, जो इतनी घनिष्ठता से सबधित प्रतीत होते हैं* कि एक दूसरे के बगैर उनके अस्तित्व की कल्पना ही नही की जा सकती है, वास्तविक प्रगति मे एक दूसरे से विसबद्ध हो जाते हैं।

उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के कारण सस्कृति से *मनुष्य का अलगाव अतर्विरोधी सरचनाओ के, जो उस स्वामित्व के* प्रभुत्व के द्वारा विकसित होती थी, सपूर्ण इतिहास मे कभी दूर नहीं किया जा सका। श्रम-विभाजन के परस्पर विरोधी रूपो के अतर्गत सामाजिक उत्पादन की प्रगति लोगो को बौद्धिक व नैतिक रूप से पगु बना देती थी, श्रमिको को उनके श्रम के फलों से और कभी-कभी सर्वाधिक सामान्य अधिकारो से भी वचित कर देती थी।

जैसा कि हम जानते है, जिस काल मे पूजीवाद अपनी जड़ें जमा रहा था, उस काल के क्रातिकारी बुर्जुआ विचारक इस अतर्विरोध को [illegible] मे जान गये थे। पुनर्जागरण काल के मानवतावादी कर्मियों

ने सामती समाज के सामाजिक सबधो को अमानवीय कहकर उनकी घोर निंदा की थी और "मानवाधिकारो की पुनस्स्थापना" का नारा बुलद किया था। वे ईमानदारी से विश्वास करते थे कि सामतवाद के पतन से पृथ्वी मे न्याय की स्थापना होगी, कि मनुष्य अपने प्राकृतिक अधिकार प्राप्त कर लेगा और आखिरकार निर्बाध रूप से रहने और रचना करने मे समर्थ हो जायेगा। परतु जैसा कि हम जानते है, "मनुष्य को फिर मनुष्य बनाने" का यह भावपूर्ण आह्वान वास्तविक रूप मे वस्तुगत आधार से रहित था और इसीलिए यूटोपियाई था।

पूजीवाद के विकास के साथ ही साथ यह अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि मानवतावाद से सस्कृति के अलगाव को निजी सपत्ति के सबधो के दायरे मे दूर नही किया जा सकता है। यही नही, पूजीवादी समाज का विकास दर्शाता है कि यह अतर्विरोध और भी अधिक गहरा होता जाता है। फलत पूजीवाद के अतर्गत सस्कृति के विषयी के रूप मे मनुष्य को रचना के उल्लास से अधिकाधिक बडे पैमाने पर वचित किया जाने लगा है। आत्मिक प्रगति अधिकाश मानवजाति को नुकसान पहुचाकर हासिल की जा रही है, श्रम का विरोधात्मक विभाजन श्रमिको को स्वाधीन क्रियाकलाप से वचित कर देता है, उसे गैर-रचनात्मक, विशुद्ध यात्रिक कार्यों मे परिणत कर देता है। श्रम-प्रक्रियाओ का विभेदीकरण तथा सकीर्ण विशेषीकरण मनुष्य को जीवन भर के लिए गुलाम बनाकर एक खास तरह के बौनेपन को जन्म देता है, जो उसे मशीन का एक उपाग बना देता है, उसके सर्वतोमुखी विकास को रोक देता है तथा उसकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को गिरा देता है।

रचनात्मक क्रियाकलाप तथा सस्कृति से मनुष्य के अलगाव की प्रक्रिया वैज्ञानिक व तकनीकी क्राति तथा पूजीवादी उत्पादन के स्वचालन के अतर्गत और भी तेज हो गयी। तकनीकी दृष्टि से भरोसेमद आज्ञाकारी रोबट एक पूजीपति के लिए "आदर्श" श्रमिक और गणना, मरम्मत तथा नियत्रण की स्व-समायोजनार्थ कार्यक्रमित इलैक्ट्रानिक प्रणाली "आदर्श" टेक्नीशियन और इजीनियर बन जाती है।

साथ ही, सस्कृति से मनुष्य के बढते हुए अलगाव के कारण वह सस्कृति का विषय कम रह जाता है और प्रतिसस्कृति का विषय मात्र बन जाता है।

साम्राज्यवाद के अन्तर्गत आत्मिक संस्कृति का संकट, जो सामाजिक जीवन के सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में होनेवाले परिवर्तनों का प्रतिबिंब है, कुछ ऐसे बुर्जुआ सिद्धांतशास्त्रियों को भी आतंकित कर देता है जो अपने दार्शनिक व सामाजिक-राजनीतिक विचारों में कतई प्रगतिशील नहीं होते। परन्तु साम्राज्यवाद के युग में सांस्कृतिक विकास की वास्तविक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करने में असमर्थ (और चालू हालत से निकलने का रास्ता पाने में और भी ज्यादा अक्षम) वे भविष्य के वस्तुत निराशावादी मूल्यांकन पर जा पहुंचते हैं और वर्तमान के विकल्प रूप में उन अवस्थाओं में लौटने का सुझाव देते हैं जो पहले ही गुजर चुकी हैं।

मसलन, ओस्वाल्ड स्पेंगलर ने अपनी पुस्तक *The Decline of Europe* ('यूरोप की अवनति') में सिलसिलेवार कई भविष्यसूचक पूर्वानुमान लगाये हैं और, खास तौर से, यह भविष्यवाणी की है कि "सामूहिक प्रसार" के कारण संस्कृति की मौत बस आने ही वाली है।

हम देखते हैं कि बेद्र्यायेव के अलावा अन्य पुस्तकों में भी इन सिद्धांतों को घुमा-फिराकर पुन नयी तरह से पेश किया गया है, मसलन, पितिरिम सोरोकिन* ने ठीक स्पेंगलर की ही तरह "आधुनिक सभ्यता" की अवश्यभावी मृत्यु की भविष्यवाणी की, बशर्ते कि वह गुजरे हुए जमाने को वापस न लौटे और समाज या मनुष्य के लिए किसी भी सेवा से पूर्णत मुक्त (और इसीलिए अमानवीकृत) एक परिष्कृत संस्कृति की रचना में "जनता की बुद्धि" और "विशिष्ट वर्गीय भावना" के बीच टकराव से सफलतापूर्वक निकल न आये।

हम बुर्जुआ समाज की नवीनतम उपज – "आम संस्कृति" – के बारे में पहले ही लिख चुके हैं और यह दिखला चुके हैं कि संस्कृति को थोथा बनाते हुए यह उसकी मानवतावादी अंतर्वस्तु को दुर्बल बनाती

---

* पितिरिम सोरोकिन (१८८९-१९६८) – एक बुर्जुआ समाजवैज्ञानिक (जो १९२२ में रूस छोड़कर चले गये थे), हार्वर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर, केंद्राभिसरण-सिद्धांत के एक संस्थापक। निम्नांकित पुस्तकों के लेखक *The Crisis of Our Age*, १९४१, *S.O.*[illegible]*ng of Our Crisis*, १९५१, *Sociological Theories of Today*

है और केवल कलात्मक रुचियों तथा सौंदर्यबोध की आवश्यकताओं को ही नहीं, बल्कि सारी संस्कृति को ही पीछे की तरफ ले जाती है।

पुनर्जागरण काल के क्लासिकी मानवतावाद से संस्कृति के अमानवीकरण के सिद्धांत व व्यवहार तक – ऐसा है बुर्जुआ मानवतावाद का क्रमविकास।

इस तरह, वैचारिक स्तर तथा सामाजिक कार्यों में प्रतिक्रियावादी अमानवीकृत संस्कृति साम्राज्यवाद की उपज है और बुर्जुआ समाज में इसका विरोध (१) श्रमिक वर्ग की संस्कृति द्वारा होता है जो बुर्जुआ समाज में समाजवादी संस्कृति का एक तत्व है और (२) उन प्रगतिशील जनवादी शक्तियों द्वारा रचित संस्कृति से होता है जो साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग की संस्कृति में अंतर्निहित प्रतिगामी प्रवृत्तियों के खिलाफ (कभी-कभी दुविधापूर्ण और असंगत ढंग से) साम्राज्यवाद-विरोधी, जातिवाद-विरोधी, फासिज्म-विरोधी स्थितियों से यानी उन स्थितियों से जूझती हैं जो मानवतावाद तथा सामाजिक प्रगति व मानवतावादी संस्कृति की खातिर सचेत होकर लड़नेवाली शक्तियों के निकट तक पहुंचती हैं।

समाजवादी संस्कृति अपने उद्भव और विकास के साथ ही सर्वहारा संस्कृति की परंपराएं विरासत में प्राप्त करती है और संस्कृति के सारे लोकतांत्रिक व्यक्तित्वों के प्रयत्नों को एकजुट करने और प्रत्येक जातीय संस्कृति के सदियों पुराने इतिहास के समस्त मूल्यवान तत्वों को उपयोग में लाने के प्रयास में बुर्जुआ समाज तथा बुर्जुआ समाज के पहले के समाज में निहित (जैसा कि हम देख चुके हैं) सारे प्रगतिशील तत्वों को आत्मसात करती है।

समाजवाद-पूर्व सामाजिक संरचनाओं के अंतर्गत जन्मे मानवतावादी विचारों को विरासत में ग्रहण करते हुए नयी संस्कृति अपने ही मानवतावादी आदर्शों की रचना करती है, जो पहले के मानवतावाद के सभी रूपों से बहुत भिन्न होते हैं और सबसे महत्वपूर्ण अंतर उसकी सच्ची मानवतावादी अंतर्वस्तु का होता है, क्योंकि कम्युनिज्म के अंतर्गत मनुष्य का क्रमविकास, जैसा कि मार्क्स ने कहा है, समाज का ही अपना ध्येय बन जाता है।

परंतु भौतिकवादी होने के नाते कम्युनिस्ट यह जानते हैं कि यदि

आदर्शों को साकार करने के भौतिक आधार न हो, या यदि वे स्वय मानव-सत्व मे आमूल परिवर्तन पर आधारित न हो, तो सर्वाधिक श्रेष्ठ आदर्श भी धरे रह जाते हैं या नष्ट हो जाते हैं। श्रमजीवियों के आत्मिक विकास पर लागू बदिशे, निजी स्वामित्व, अंतर्विरोधी श्रम-विभाजन, प्रभुत्व व अधीनता के सबधो के कारण सस्कृति से उनके अलगाव, आदि, सब को दूर हटाना केवल चेतना के क्षेत्र मे नही हो सकता है।

कम्युनिस्ट सस्कृति की रचना, इस आदर्श वाक्य, कि "हर चीज मनुष्य के लिए, हर चीज मनुष्य की खातिर," मे व्यक्त उसके मानववादी आदर्श को सामाजिक सबधो की सारी समग्रता के क्रातिकारी रूपातरण के दौरान ही साकार बनाया जा सकता है। यही समाज की आत्मिक जिदगी के रूपातरण के आधार का काम देता है। इस रूपातरण के दौरान प्रत्येक व्यक्ति आत्मिक दृष्टि से समृद्ध ऐसा व्यक्तित्व बन जाता है जो नियोजन के अनुसार सगठित उत्पादन मे सचेत सहभागिता, समाज के मामलो का प्रबंध और आत्मिक सस्कृति का विकास करने मे सक्षम होता है।

प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण सामाजिक व्यष्टि बनाना, एक सामजस्य-पूर्ण व्यक्तित्व बनाना ही इन रूपातरणों का अतिम ध्येय है।

कम्युनिज्म के इस मानवतावादी आदर्श की सभाव्यता मुख्यत उत्पादन के साधनो के सामाजिक स्वामित्व से उत्पन्न वस्तुगत सभावनाओ पर आधारित है। यही मानवीय क्रियाकलापो के अन्यसक्रामित रूपों से "मानवीकृत मनुष्य" मे, मनुष्य से अलगाये हुए आत्मिक उत्पादनों के रूपो से सस्कृति मे जनसाधारण की प्रत्यक्ष सहभागिता मे सक्रमण का आधार है।

बुर्जुआ मानवतावाद के विपरीत कम्युनिस्ट मानवतावाद तथा उसके आदर्श की सभाव्यता सामूहिकता के साथ उसके आगिक सबध मे भी निहित है, जो मनुष्य के विकास की एक सबसे बडी शर्त है। अपने शत्रु – मेहनतकशो – के खिलाफ समान हितों से एकजुट शोषक वर्गों के लाक्षणिक काल्पनिक "समूहवाद" के, जो आर्थिक, राजनीतिक तथा वैचारिक प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए होता है (और वस्तुत [illegible] मात्र एक स्थानापन्न होता है, क्योंकि शोषक वर्ग

हमेशा अपने प्रतिद्वद्वी के, एक पक्के शत्रु के रूप मे देखता है), विपरीत, समाजवाद श्रमजीवी जनो के समूहवाद को शोषण से मुक्त रखता है और उसे ऐसे समाज के सयुक्त निर्माण मे लगाता है जिसमे मनुष्य मनुष्य का दोस्त, साथी और बधु होता है। इन दशाओ के अतर्गत सस्कृति वस्तुत सारी जनता की सामान्य तथा व्यक्ति की विशेष रूप से एक आतरिक आवश्यकता बन जाती है।

उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि सस्कृति और मानवतावाद के बीच अतर्विरोध केवल समाजवाद के ही अतर्गत, केवल सास्कृतिक क्राति की प्रक्रिया मे ही धीरे-धीरे दूर किये जा रहे हैं।

सक्षेप मे, इस प्रक्रिया का मूलसार यह है कि क्राति **आत्मिक उत्पादन की प्रणाली में श्रमजीवियो की भूमिका तथा स्थान को आमूलतः** बदल देती है और, तदनुसार, पूर्वोक्त की सरचना मे आधारभूत परिवर्तन कर देती है सास्कृतिक मूल्यो की रचना मे जनसाधारण की सामान्य रूप से तथा व्यक्ति की विशेष रूप से **प्रत्यक्ष, सचेत व सोद्देश्य** सहभागिता अधिकाधिक बढने लगती है।

इस प्रक्रिया के उदाहरण-रूप मे कुछ तथ्य प्रस्तुत हैं। सोवियत सघ मे पिछले अनेक वर्षों से सामाजिक आधार पर सास्कृतिक सस्थानो की तीव्र वृद्धि होती रही है, मसलन, पुस्तकालयो तथा सग्रहालयो, सगीत स्कूलो, पुस्तको की दूकानो, जनता के थियेटरो, शौकिया फिल्म स्टुडियो, आदि की। उत्साही लोगो की मेहनत के फलस्वरूप कार्यशील विभिन्न सास्कृतिक सस्थानो की तीव्र वृद्धि ने, अपनी बारी मे, एक अन्य प्रकार की सास्कृतिक क्रिया को जन्म दिया, यानी सोवियत सघ मे सभी जगह ऐसे सार्वजनिक व्यवसायो के स्कूल, विश्वविद्यालय तथा अकादमिया बन गयी जो सामाजिक आधार पर काम करती हैं तथा जहा लोग आवश्यक ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

शौकिया स्टुडियो हजारो अभिनेताओ, कलाकारो, आदि को प्रशिक्षण देते हैं और डिज़ाइन ब्यूरो, आविष्कारक मडलिया, आदि (यह भी सामाजिक सिद्धात पर चलायी जाती हैं) युवा वैज्ञानिको तथा इजीनियरो को प्रशिक्षण देती हैं। ऐसे युवा वैज्ञानिको ने केवल १६८० मे ही ४० लाख से अधिक आविष्कार व कार्यों मे सुधार के सुझाव पेश किये और उन्हे उत्पादन मे प्रयुक्त किया गया।

इस प्रकार से समाजवाद संस्कृति के प्रति मनुष्य के सक्रिय
को जन्म देता है, यह, खास तौर से, इस तथ्य से जाहिर होत
कि यह पाठक, श्रोता तथा दर्शक की "रूपाकृति" ही बदल देता
अब, वस्तुत, सहरचना बहुत हद तक संस्कृति की लाक्षणिक विशे
बन गयी है।

विकसित समाजवाद के अंतर्गत यह प्रक्रिया विशेष बड़े पैमाने
होने लगी है। अब समाज में आत्मिक उत्पादन के सारे तत्वों का
दूसरे से अलगाव खत्म होने लगा है, वे समस्त जनता के लिए सुल
होकर एक नया गुण अर्जित करने लगे हैं।

इसके अलावा, संस्कृति और जनगण के बीच युगो पुराने अन्त
रोध के दूर होने का एक विशद उदाहरण यह है कि सांस्कृतिक मूल्य
के वितरण की प्रकृति और रूप आमूलत बदलने लगे हैं।

पूंजीवाद के अंतर्गत सांस्कृतिक मूल्य वर्ग के सिद्धांत पर वितरित
होते हैं और पण्य का और, यही नहीं, किसी "चीज का सा" रूप
धारण कर लेते हैं। जबकि समाजवाद मे ऐसा नही होता, वहां लोग
सक्रिय, स्वाधीन ऐतिहासिक रचनात्मकता मे सहभागी होते हैं और वे
सांस्कृतिक मूल्यो की बढ़ती हुई मात्राओ का निपटान कर सकते हैं।

यह सोवियत संघ में सार्वजनिक शिक्षा की सफलता से प्रमाणित
हो जाता है। आज इस देश मे, जो क्रांति से पहले ७५ प्रतिशत निरक्षरो
का देश था, युवजन के लिए सार्विक अनिवार्य और नि शुल्क माध्यमिक
शिक्षा लागू कर दी गयी है और सैकडो उच्च शिक्षा संस्थान तथा हजारो
तकनीकी स्कूलों की स्थापना की गयी है। इसके फलस्वरूप श्रमशक्ति
का चार-पंचमांश माध्यमिक या उच्च शिक्षा प्राप्त है।

बेशक, केवल शिक्षा ही संस्कृति नहीं होती। लेकिन शिक्षा के बगैर
सोवियत विज्ञान, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओ, आदि की शानदार
सफलताए असंभव होनी (आज सोवियत संघ मे १४,००,००० वैज्ञानिक
और दुनिया के एक तिहाई डाक्टर हैं)।

सोवियत संघ में सांस्कृतिक क्रांति के प्रारंभ से ही नयी संस्कृति
का मानवतावाद सांस्कृतिक विरासत के स्वांगीकरण की प्रकृति में भी

लोगो को, "आध्यात्मिक जगत् के अभिजात के लोगो" को ही प्राप्त थी, लेकिन समाजवादी निर्माण के दौरान जनसाधारण को सास्कृतिक मूल्यो से परिचित कराया गया और वे धीरे-धीरे समाज द्वारा सदियो से सचित सारी आत्मिक सपदा के वारिस बन गये।

जैसा कि हम देख चुके हैं, आत्मिक उत्पादन की नयी विधि का अर्थ है मनुष्यजाति द्वारा रचित सस्कृति के स्वागीकरण की विधि मे, सास्कृतिक विरासत के प्रति रवैये के आधार सिद्धात के मामले मे भी तथा इस प्रक्रिया के परास, रूप तथा रफ्तार के मामले मे भी आमूल परिवर्तन हो जाना।

विकसित समाजवादी समाज मे सारे सास्कृतिक मूल्यो तथा सस्थाओ के जनवादीकरण की प्रक्रियाए मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच तथा शहरो व देहातो के बीच अतरो के धीरे-धीरे मिटने से तीव्रतर हो जाती है। ये प्रक्रियाए वैज्ञानिक व तकनीकी क्राति की प्रगति से भी तीव्रतर होती हैं। वैज्ञानिक व तकनीकी क्राति का एक परिणाम विभिन्न श्रम-प्रक्रियाओ का बढता हुआ बौद्धिकीकरण है।

कम्युनिज्म की सामान्य मानवीय सस्कृति का तात्पर्य जनगण के आत्मिक जीवन मे सारी असमानताओ को दूर करना है। सस्कृति को सभी जनगण की सस्कृति बनाने का सर्वोपरि अर्थ है उसे प्रत्येक मनुष्य की पहुच के अदर लाना। यही कारण है कि सस्कृति की सारी सपत्ति का सब श्रमजीवियो द्वारा स्वागीकरण कम्युनिस्ट सस्कृति के निर्माणार्थ परम व अपरिहार्य शर्त है।

इन सबको मिलाकर यह निचोड निकलता है कि समाजवाद के अतर्गत मानवतावाद तथा सस्कृति के बीच भेद धीरे-धीरे दूर होने भी लगा है।

इस सिलसिले मे यह गौर कीजिये कि समाजवाद सस्कृति के सारे कार्यों को मानवीयता प्रदान कर देता है।

पहला, समाजवाद सस्कृति के ज्ञानमीमासीय कार्यों मे परिवर्तन पैदा कर देता है, क्योकि प्रकृति और समाज के नियमो का सज्ञान एक ऐसी रचनात्मक प्रक्रिया मे बदल जाता है जिसमे ये नियम सचेत

और पूर्ण रूप से मनुष्य के लाभार्थ कारगर उपयोग में आने लगते हैं। तदनुसार, विज्ञान सामाजिक प्रगति को तीव्रता प्रदान करने का साधन बन जाता है और उसी दौरान कला में एक मूलतः नये प्रकार के ऐसे कलाकार की रचना होती जाती है, जो रचनात्मकता के आधार को गतिमान जगत् के सच्चे चित्रण मात्र में नहीं देखता, बल्कि एक नयी दुनिया के, जो कम्युनिज़्म के मानवतावादी आदर्शों को कार्यान्वित करती है, निर्माण में सक्रिय सहभागिता में भी देखता है।

दूसरा, *समाजवाद संस्कृति के वैचारिक कार्यों को आमूलतः बदल देता है।* अब संस्कृति जनसाधारण की काल्पनिक और परकीय चेतना के निर्माण की प्रक्रिया नहीं रह जाती है और उसका प्रमुख कार्य वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण को प्रत्येक मनुष्य की सचेत आस्था में बदलना हो जाता है।

तीसरा, संस्कृति के मानकीय तथा नियामक कार्यों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते हैं सामाजिक संस्कृति व्यवहार के नये मानकों नयी परंपराओं तथा रिवाजों की स्थापना करती है और, अतः एक ऐसे नये प्रकार के मनुष्य की रचना करती है जो श्रम, समष्टि व अपने साथियों तथा परिवार के प्रति अपने रवैये का निर्माण समूहवाद अंतर्राष्ट्रवाद और कम्युनिस्ट मानवतावाद के सिद्धांतों के अनुसार करता है।

*तदनुसार, संस्कृति के सामाजिक कार्य आमूलतः बदल जाते हैं। "पुराने ज़माने में मानव प्रतिभा, मनुष्य का मस्तिष्क किसी की टेक्नोलाजी तथा संस्कृति के फायदे देने के लिए तथा अन्यों को भौतिक आवश्यकता की वस्तुओं – शिक्षा तथा विकास – से वंचित करने के लिए ही रचना किया करता था। अब आगे से विज्ञान के सारे चमत्कार तथा संस्कृति की सारी उपलब्धियां संपूर्ण जनता की होंगी और मानव मस्तिष्क तथा सृजनशील प्रतिभा को फिर कभी भी उत्पीड़न और शोषण के लिए इस्तेमाल नहीं किया जायेगा।"**

---

* [illegible] 'रचनाएं', [illegible] ३ (१६) जनवरी, १९१८।

सोवियत संघ तथा समाजवादी समुदाय के अन्य देशों की संस्कृतियों में जारी इन क्रांतिकारी परिवर्तनों के अंतर्राष्ट्रीय महत्व को कम करके आंकना असंभव है। लेबनानी लेखक संघ के महासचिव अहमद सुवेइद ने १९८१ में आयोजित सोवियत लेखकों की सातवीं कांग्रेस में दिये गये अपने भाषण में उचित ही कहा कि "आपके देश में न्याय और स्वाधीनता की यशोवृद्धि के लिए एक नयी सभ्यता का निर्माण किया जा रहा है और उसकी भव्यता को इस बात में देखा जा सकता है कि यह अपने सारे समृद्ध, अनूठे मानववादी अनुभव को हवा और धूप की तरह सारी दुनिया को दे देती है।"

पूर्ववर्ती युगों की संस्कृति की सारी मानवीय अंतर्वस्तु को आत्मसात करती हुई कम्युनिस्ट संस्कृति मनुष्यजाति द्वारा रचित और रचनाधीन मूल्यों को निरपवाद रूप से समाज के सभी सदस्यों की पहुंच में लाती है। यह लोगों को सांस्कृतिक मूल्यों का सक्रिय, सचेत और प्रत्यक्ष रचयिता बना देती है, प्रत्येक व्यक्ति की आत्मिक आवश्यकताओं के निर्माण तथा उनकी सर्वतोमुखी पूर्ति को प्रोत्साहन देती है और अपने मूलसार में सामाजिक कार्यों तथा मानव-जाति की प्रगति में अपनी भूमिका के मामले में सचमुच मानवता-वादी है।

कम्युनिज्म मूल रूप में वास्तविकता में मूर्त सच्चा मानवतावाद होगा। नये जगत् का यह सच्चा मानवतावाद अपनी पहली अवस्था में – समाजवादी समाज में – काफी हद तक अभिव्यक्त होने भी लगा है। इस समाज में मनुष्य, उसकी भौतिक व आत्मिक आवश्यकताएं सामाजिक उत्पादन का सर्वोच्च लक्ष्य बन जाती हैं। इन सर्वाधिक जटिल समस्याओं को, जो पार्टी की सामाजिक नीति के व्यावहारिक काम बन गये हैं, सुलझाने में सांस्कृतिक विकास की बहुत बड़ी भूमिका है। मनुष्यजाति द्वारा रचित या रचनाधीन में से सभी सर्वोत्तम तथा प्रगतिशील तत्वों को ग्रहण करके समाजवादी संस्कृति मनुष्यों के आत्मिक जगत् को समृद्ध बनाती है, उनके जीवन को उज्ज्वल तथा रोचक बनाती है। यह हमारे काम, [illegible] सबसे महत् [illegible] की लेकर [illegible] में सहायता करती है।

नयी कम्युनिस्ट सस्कृति, विश्व संस्कृति के विकास में वस्तुगत रूप से आवश्यक, उच्चतम, अवस्था के रूप में उभरती हुई, वर्ग-समाज के आत्मिक उत्पादन मे निहित अतर्विरोधो को हटाती है। यह सामाजिक संबधों की निजी सपत्ति-प्रणाली द्वारा सस्कृति पर थोपे हुए एकागीपन तथा बदिशो का उन्मूलन करती है और, इस तरह, विश्व सस्कृति की उपलब्धियों को जनगण के हित मे इस्तेमाल करने, मेहनतकशो के समुदायो को धीरे-धीरे सस्कृति का प्रत्यक्ष रचयिता, ऐतिहासिक प्रक्रिया का सक्रिय सहभागी बनाने के लिए उचित दशाओं का निर्माण करती है।

इस वस्तु-स्थिति मे, समाजवादी राष्ट्रो मे जो सास्कृतिक क्राति संपन्न की जा रही है, वह **मनुष्यजाति के संपूर्ण आत्मिक जीवन मे उथल-पुथल की शुरूआत के रूप मे,** ऐसी सामान्य मानवीय सस्कृति की रचना मे पहले व निर्णायक कदमो के रूप में **वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय महत्व** उपार्जित कर लेती है, जो मात्र जनगण के हित मे विकसित होगी। और यदि सोवियत सास्कृतिक क्राति को अपने विकास की प्रमुख समस्याओं के समाधान के सच्चे रास्ते के रूप में देखनेवाले समाजवादी राष्ट्रों ने इस अनुभव पर भरोसा करके महान उपलब्धिया संपन्न की हैं, तो समाजवादी समुदाय के समस्त देशो का कुल सास्कृतिक अनुभव उस प्रमुख तत्व की सास्कृतिक अभिव्यक्ति है, जिसे भविष्य में समस्त जनगण अनिवार्यत देखेगे।

जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम आज साफ जाहिर हो चुका है, वह यह है कि समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान सपन्न सास्कृतिक क्राति जनगण की श्रम-क्रिया तथा आत्मिक आवश्यकताओ के बीच अंतर्विरोधों को मिटाकर उन्हे सस्कृति का प्रत्यक्ष रचयिता बना देती है और, इस प्रकार, "आम सस्कृति" के खिलाफ जनता की संस्कृति को पेश करती है।

यह प्रक्रिया शुरू हो चुकी है और जब समाजवादी सस्कृति कम्युनिस्ट सस्कृति मे विकसित होगी तो यह और भी तेज रफ्तार से प्रगति करेगी।

[illegible] समाज की सस्कृति विश्व सांस्कृतिक मूल्यों से सर्वोत्तम

ग्रहण करती है और अतीत के युगो की महान सास्कृतिक
रासत को प्रत्येक व्यक्ति की सपत्ति ही नही बनाती, बल्कि
क्ति को उस महान सास्कृतिक विरासत का रचयिता भी बनाती
जिसे भावी पीढिया सम्मान के साथ ग्रहण करेगी और प्रोमेथि-
द्वारा स्वर्ग से लायी हुई अग्नि की तरह उसे और आगे ले
गी।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिजाइन के बारे मे आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमे बडी प्रसन्नता होगी। कृपया हमे इस पते पर लिखिये

प्रगति प्रकाशन,
१७, जूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत सघ।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये

प्रगति प्रकाशन,
१७, जूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

प्रगति प्रकाशन

प्रकाशित हो चुकी

ओइजेर्मान त०, **द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और दर्शन का इतिहास**

Ойзерман Т Диалектический материализм и история философии

विख्यात सोवियत दर्शनशास्त्री, अकादमीशियन त० ओइज़ेर्मान ने अपनी इस पुस्तक मे दर्शनशास्त्र के इतिहास की पद्धति सबधी समस्याओं का विवेचन और विभिन्न ऐतिहासिक-दार्शनिक प्रणालियो की तुलना की है। काट, फिख़्ते और हेगेल की प्रणालियो का विशेषत विस्तृत विश्लेषण करके लेखक ने उनके प्रत्ययवाद का सार उद्घाटित किया है और बताया है कि वे दर्शन के ऐतिहासिक विकास का सीमित, अधूरा चित्र ही उपस्थित कर सके थे। पुस्तक मे ऐतिहासिक-दार्शनिक प्रक्रिया विषयक मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात का विस्तृत विवेचन किया गया है और दार्शनिक ज्ञान के विकास के द्वद्वात्मक पथ पर, द्वद्वात्मक भौतिकवाद के क्रातिकारी, ऐतिहासिक स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

यह पुस्तक विशेषज्ञो – दर्शनशास्त्रियो, समाजशास्त्रियो, इतिहासकारो और मानविकी विषयो के विद्यार्थियो तथा अध्यापको – के लिए लिखी गयी है।
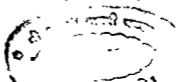
प्रगति प्रकाशन

प्रकाशित होनेवाली है

बोंगार्द-लेविन ग०, विगासिन अ०,
(सोवियत संघ मे प्राचीन भारतीय सभ्यता
Бонгард – Левин Г., Вигасин А. Образ И
древнеиндийской цивилизации в СССР.

दो माने-जाने सोवियत भारतविदो
पुस्तक मे विपुल तथ्यात्मक सामग्री के
है कि सोवियत संघ के लोग भारत
रुचि रखते हैं और भारत की प्राचीन
मे रूसी और सोवियत विद्वानों का
है। भारतीय संस्कृति के विकास
डालनेवाली मध्य एशिया मे सोवि
खोजो का विश्लेषण पाठको को
पुस्तक सचित्र है और अंत